

तृतीय सेमेस्टर  
Third Semester

आर्थिक विकास  
Economic Development

एम.ए.ई.सी. - 601  
M.A.E.C. - 601

विषय-सूची

खण्ड – 1 आर्थिक विकास- अवधारणा एवं मापन (Economic Development- Concept and Measurements)	पृष्ठ संख्या 1-71
इकाई 1- आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की अवधारणा (Concept of Economic Growth and Development)	1-12
इकाई 2- आर्थिक विकास का मापन (Measurement of Economic Development)	13-32
इकाई 3- अल्पविकसित देश- आशय एवं विशेषताएँ (Underdeveloped Country- Meaning and Characteristics)	33-46
इकाई 4- विकास के निर्धारक घटक एवं अवस्थाएँ (Determinant factors and Stages of Economic Development)	47-71
खण्ड – 2 आर्थिक विकास के सिद्धान्त (Theories of Economic Development)	पृष्ठ संख्या 72-138
इकाई 5- प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory)	72-83
इकाई 6- कार्ल मार्क्स सिद्धान्त (Karl Marx's Theory)	84-97
इकाई 7- शूम्पीटर सिद्धान्त (Schumpeterian Theory)	98-116
इकाई 8- सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास का सिद्धान्त (Theory of Balanced and Unbalanced Development)	117-138

खण्ड – 3 अल्प विकास के सिद्धान्त (Theories of Underdevelopment)	पृष्ठ संख्या 139-231
इकाई 9- हार्वे लीबन्स्टीन का सिद्धान्त (Theory of Harvey Leibenstein)	139-154
इकाई 10- नेल्सन का सिद्धान्त (Theory of Nelson)	155-164
इकाई 11- रोजेन्सटीन का सिद्धान्त (Theory of Rosenstein)	165-174
इकाई 12- सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद (Social and Technical Dualism)	175-188
इकाई 13- आर्थर लेविस का सिद्धान्त (Theory of Arthur Lewis)	189-202
इकाई 14- फाई एवं रेनिस का सिद्धान्त (Theory of Fei-Ranis)	203-215
इकाई 15- एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धान्त (Theory of H. Myint and Gunnar Myrdal)	216-231

### Suggested Readings:

1. Adelman, I. (1961) *Theories of Economic Growth and Development*, Stanford University Press, Stanford
2. Galbraith, J.K (1969) *Economic Development*, Oxford University Press, London
3. Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) *Handbook of Development Economics*, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
4. Kindleberger, C. P. (1977) *Economic Development*, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.
5. Kuznets, Simon (1969) *Economic Growth & Structure*, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
6. Meier, G. M. (1995) *Leading Issues in Economic Development*, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
7. Mishra and Puri (2006) *Economic of Growth and Development*, Himalaya Publishing House, New Delhi
8. Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) *Pioneers in Development*, Oxford University Press, New York.
9. Philip Arestis (1996) *Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market*, Edward Elgar Publishing Ltd, UK
10. Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) *Economics of Development and Planning*, Vishal Publishing Co., Jalandhar
11. Thirlwall, A P. (2003) *Growth and Development*, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York
12. Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) *Economic Development*, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
13. Vaidyanathan, A. (2005) *India's Economic Reforms and Development*, Academic Foundation, New Delhi .

---

## इकाई 1 - आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की अवधारणा (Concept of Economic Growth and Development)

---

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण
  - 1.3.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन
  - 1.3.2 आर्थिक विकास की परिभाषाएं
  - 1.3.3 आर्थिक विकास एवं वृद्धि का अन्तर
  - 1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति
    - 1.3.4.1 स्थैतिक अर्थशास्त्र
    - 1.3.4.2 गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक अर्थशास्त्र
    - 1.3.4.3 आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक है।
- 1.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 1.5 सारांश
- 1.6 शब्दावली
- 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास पाठ्यक्रम की यह प्रथम इकाई है, इस इकाई के अध्ययन के से आप आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि का आशय उनमें प्रमुख अंतर और आर्थिक विकास की प्रकृति को जान सकेंगे।

## 1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि:

- आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि से हमारा क्या तात्पर्य है।
- विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक विकास एवं वृद्धि को किस रूप में परिभाषित किया गया है।
- आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में प्रमुख अन्तर क्या है।
- स्थैतिक अर्थशास्त्र क्या है।
- प्रावैगिक अर्थशास्त्र क्या है।
- स्थैतिक अर्थशास्त्र एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र में क्या अन्तर है।

## 1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण

विकास का अर्थशास्त्र अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि आर्थिक विकास के अध्ययन ने वाणिज्यवादियों तथा एडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और केन्ज तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी, उनकी दिलचस्पी प्रमुख रूप से ऐसी समस्याओं में रही जिनकी प्रकृति विशेषतया स्थैतिक थी और जो अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पश्चिम यूरोपीय ढांचे से संबंध रखती थी। वर्तमान शताब्दी के पांचवे दशक में और विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर ध्यान देना शुरू किया। विकास के अर्थशास्त्र में उनकी दिलचस्पी राजनैतिक पुनरूत्थान की उस लहर के द्वारा और भी बढ़ी, जो दूसरे विश्व युद्ध के बाद एशिया तथा अफ्रीका के राष्ट्रों में फैल गई थी। इन देशों के नेता शीघ्रता से आर्थिक विकास को बढ़ावा देना चाहते थे और साथ ही विकसित राष्ट्र भी यह महसूस करने लगे थे कि **“किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक सम्पन्न स्थानों की समृद्धि के लिए खतरा है।”** इन दोनों बातों से अर्थशास्त्रियों की रुचि इस विषय में और सजग हुई। इस सन्दर्भ में मायर तथा बाल्डविन ने कहा है कि **‘राष्ट्रों के धन के अध्ययन की अपेक्षा राष्ट्रों की दरिद्रता के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है।’** इस क्रम में अल्पविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की रुचि किसी मानवहितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जागृत हुई है बल्कि धनी विकसित देशों द्वारा इन गरीब राष्ट्रों को अन्य गरीब देशों के मुकाबले में अधिक सहायता देने का वचन देकर प्रत्येक दशा में अल्पविकसित देशों का समर्थन तथा वफादारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

आज के इस प्रगतिशील युग की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। वर्तमान आर्थिक जगत् में, आर्थिक विकास का विचार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा किये जाने वाले

चिन्तन का यह एक केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। आर्थिक विकास जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट होता है, का अर्थ है- *‘अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना।’* विस्तृत अर्थ में, आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके, निर्धनता को दूर करना तथा सामान्य जीवन स्तर में सुधार करना है।

### 1.3.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन

विभिन्न अर्थशास्त्रियों में आर्थिक विकास की परिभाषा के लिए भिन्न-भिन्न आधारों को अपनाया है। अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने आर्थिक विकास का अर्थ, कुल राष्ट्रीय वास्तविक आय में वृद्धि करना बताया है, तो दूसरी विचारधारा के लोगों ने प्रति-व्यक्ति वास्तविक आय में की जाने वाली वृद्धि को आर्थिक विकास की संज्ञा दी है। प्रथम सम्प्रदाय में प्रो. साइमन कुजनेट्स, मायर एवं बाल्डविन तथा ए. जे. यंगसन, आदि को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीय सम्प्रदाय में प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि को, आर्थिक विकास मानने वाले अर्थशास्त्रियों में डा. बैजमीन, हिगीन्स, हार्वे लिवेस्टीन, डब्लू. आर्थर लेविस, प्रो. विलियमसन तथा जैकब बॉइनर आदि प्रमुख रूप से हैं। हम आर्थिक विकास की कुछ प्रचलित परिभाषाओं की विवेचना निम्नवत प्रस्तुत कर रहे हैं:

### 1.3.2 आर्थिक विकास की परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक विकास को निम्न प्रकार व्यक्त किया है:

मायर एवं बाल्डविन के मतानुसार *“आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।”*

प्रो. लर्ड्स के शब्दों में *“आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि से लगाया जाता है।”*

प्रो. यंगसन के विचारानुसार *“आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।”*

प्रो. विलियमसन के अनुसार *“आर्थिक विकास अथवा वृद्धि से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसके द्वारा किसी देश अथवा प्रदेश के निवासी उपलब्ध साधनों का उपयोग, प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते हैं।”*

प्रो. डी० ब्राइट सिंह की दृष्टि में *“आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय, एक देश के समाज में होने वाले उस परिवर्तन से लगाया जाता है जो अल्प-विकसित स्तर से उच्च आर्थिक उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता है।”*

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि जहां मायर एवं बाल्डविन ने आर्थिक विकास में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की बात कही है वहीं विलियमसन तथा लेविस द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन अथवा आय में वृद्धि का समर्थन किया गया है लेकिन उपर वर्णित सभी परिभाषाओं में तीन महत्वपूर्ण बातें समान रूप से परिलक्षित होती हैं :

**1. विकास की सतत प्रक्रिया** - आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है। जिसका अर्थ, कुछ विशेष प्रकार की

शक्तियों के कार्यशील रहने के रूप में, लगाया जाता है। इन शक्तियों के एक अवधि तक निरन्तर कार्यशील रहने के कारण आर्थिक घटकों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। यद्यपि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन तो होता है किन्तु इस प्रक्रिया का सामान्य परिणाम, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होना है।

**2. वास्तविक राष्ट्रीय आय -** आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से है। ध्यान रहे, वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अभिप्राय किसी राष्ट्र द्वारा एक निश्चित काल में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि से लगाया जाता है, न कि मौद्रिक आय की वृद्धि से। चूंकि आर्थिक विकास को मापने के लिये राष्ट्रीय आय को ही आधार माना जाता है इसलिये किसी देश का आर्थिक विकास तभी माना जाएगा जब उस देश में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे। कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य हास अथवा मूल्य स्तर में हुए परिवर्तनों को समायोजित करने पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

**3. दीर्घकालीन अथवा निरन्तर वृद्धि -** आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है। दूसरे शब्दों में, विकास की यह प्रक्रिया एक या दो वर्षों में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित नहीं होती बल्कि 15 से 20 वर्षों के बीच दीर्घकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित होती है। इसलिये अगर किसी अर्थव्यवस्था में किन्हीं अस्थायी कारणों से देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जाता है, जैसे अच्छी फसल अथवा अप्रत्याशित निर्यात होना, तो इसे आर्थिक विकास नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आर्थिक विकास विशेष घटकों से प्रभावित होने वाला विकास है।

### 1.3.3 आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर

अल्पविकसित देशों की समस्यायें उपयोग में न लाये गये साधनों के विकास से सम्बन्ध रखती है, भले ही उनके उपभोग भली-भांति ज्ञात न हों, जबकि उन्नत देशों की समस्यायें वृद्धि से सम्बन्धित रहती है, जिनके बहुत सारे साधन पहले से ज्ञात और किसी सीमा तक विकसित रहते हैं। प्रायः आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में कोई अन्तर नहीं किया जाता है किन्तु प्रो. शुम्पीटर तथा श्रीमती उर्सला हिक्स ने इन दोनों शब्दों में भेद करने का प्रयास किया है। आर्थिक वृद्धि एक स्वाभाविक एवं सामान्य प्रक्रिया है जिसके लिए समाज को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, इसके विपरीत आर्थिक विकास के लिये विशेष प्रयत्नों का किया जाना जरूरी है अर्थात् आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है ताकि विद्यमान आर्थिक व्यवस्था के पूरे स्वरूप को परिवर्तित किया जा सके। प्रो. शुम्पीटर के अनुसार **“विकास स्थिर अवस्था में होने वाला एक ऐसा असतत एवं स्वतः परिवर्तन है जो पहले से स्थापित संतुलन की अवस्था (अर्थात् विद्यमान स्थिति) को हमेशा के लिये बदल देता है, जबकि इसके विपरीत ‘वृद्धि’ दीर्घकाल में घटित होने वाला एक क्रमिक तथा स्थिर गति वाला परिवर्तन है जो बचत और जनसंख्या की दर में होने वाली सामान्य वृद्धि का परिणाम होता है।”**

इस प्रकार जो उन्नति धीरे-धीरे आर्थिक व सामाजिक तत्वों में होने वाले परिवर्तनों के कारण होती है। उसे आर्थिक वृद्धि कहते हैं, परन्तु जब अर्थव्यवस्था में उन्नति की प्रबल इच्छा के तदन्तर, कुछ विशेष प्रयत्नों व क्रियाओं द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाते हैं तो उसके फलस्वरूप होने वाली उन्नति को, आर्थिक विकास

कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह बात ध्यान योग्य है कि उन्नति के यह दोनों स्वरूप दीर्घकालीन तथ्य हैं। प्रो. शम्पीटर ने आर्थिक विकास को आर्थिक वृद्धि की अपेक्षा अधिक उपयुक्त माना है।

इस सम्बन्ध में **श्रीमती उर्सला हिक्स** का कहना है कि आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिये किया जाता है क्योंकि इन देशों में उत्पादन के साधन पहले से ही ज्ञात एवं विकसित होते हैं। इसके विपरीत 'विकास' का सम्बन्ध अल्प-विकसित देशों से है जहां अशोषित व अर्द्ध शोषित साधनों के पूर्ण उपयोग व विकास की सम्भावनाएं विद्यमान होती हैं। इसी प्रकार **प्रो. बोन** ने भी आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर स्थापित किया है। उनके मतानुसार **“विकास के लिए विशेष निर्देशन, नियंत्रण, प्रयास व मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और यह बात अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में ही ठीक बैठती है। इसके विपरीत आर्थिक वृद्धि का स्वभाव स्वेच्छानुसार होता है जो कि एक उन्नत स्वतंत्र उपक्रम वाली अर्थव्यवस्था का लक्षण है।”**

क्र. सं.	आर्थिक वृद्धि	आर्थिक विकास
1.	स्वाभाविक क्रमिक व स्थिर गति वाला परिवर्तन	प्रेरित एवं असंगत प्रकृति का परिवर्तन
2.	केवल उत्पादन में वृद्धि का होना	उत्पादन वृद्धि+प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तनों का होना।
3.	आर्थिक व संस्थागत घटकों में परिवर्तन होने पर स्वतः ही घटित होती रहती है।	विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का किया जाना आवश्यक है।
4.	वर्तमान साम्य की अवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं होता।	नई शक्तियों से नये मूल्यों का निर्माण किया जाता है तथा प्रचलित साम्य में सुधार लाये जाते हैं।
5.	आर्थिक उन्नति नियमित घटनाओं का परिणाम है।	आर्थिक विकास उन्नति इच्छा, विशेष निर्देशन व सृजनात्मक शक्तियों का परिणाम है।
6.	यह उन्नत देशों की समस्याओं का समाधान है।	यह अल्प विकसित देशों की समस्याओं को हल करने का एक नारा है।
7.	आर्थिक वृद्धि स्थैतिक साम्य की स्थिति है।	आर्थिक विकास गतिशील साम्य का एक रूप है।

**प्रो. किण्डले बर्जर** के मतानुसार **“आर्थिक वृद्धि का अर्थ केवल उत्पादन वृद्धि से है जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है उत्पादन वृद्धि के साथ प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तन का होना है।”**

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक वृद्धि की दशा में आर्थिक जीवन प्रत्येक वर्ष उन्हीं आर्थिक धाराओं से होकर इस प्रकार बहता चला जाता है जिस प्रकार एक प्राणी की धमनियों में रक्त का संचालन होता है। दूसरे शब्दों में आर्थिक वृद्धि के अंतर्गत ज्यादा नवीनता का सृजन नहीं होता है बल्कि जो कुछ भी उन्नति होती है वह परम्परागत एवं नियमित घटनाओं का परिणाम होती है। इसके विपरीत आर्थिक विकास में नई शक्तियों को

जन्म दिया जाता है और प्रचलित संतुलन में निरन्तर सुधार लाने के प्रयत्न किये जाते हैं आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में पाये जाने वाले प्रमुख अन्तरो की विवेचना निम्नवत है –

**प्रो. एलन बरेरी** ने आर्थिक वृद्धि तथा प्रगति में अंतर करने का प्रयत्न किया है। उनके मतानुसार 'प्रगति' से अभिप्राय प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से है। जबकि 'आर्थिक वृद्धि' का अर्थ, जनसंख्या एवं कुल वास्तविक आय (राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय) दोनों में होने वाली बढ़ोत्तरी से लगाया जाता है। आर्थिक प्रगति, आर्थिक वृद्धि के बिना भी सम्भव हो सकती है अर्थात् जब (i) कुल आय के स्थिर रहने पर जनसंख्या में कमी हो जाये अथवा (ii) कुल आय में कमी होने पर जनसंख्या में अपेक्षाकृत और अधिक कमी हो जाये तो यह 'प्रगति' बिना वृद्धि के मानी जायेगी। ठीक इसी प्रकार आर्थिक वृद्धि आर्थिक प्रगति के बिना भी संभव हो सकती है। **प्रो. बरेरी** महोदय द्वारा आर्थिक वृद्धि के निम्न स्वरूप बताये गये हैं

- क. **प्रगतिशील वृद्धि** :- जब कुल आय में वृद्धि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि से अधिक हो।
- ख. **अधोगामी वृद्धि** :- जब कुल आय में वृद्धि की अपेक्षा जनसंख्या में होने वाली वृद्धि अधिक हो।
- ग. **स्थिर उन्नति** :- जब कुल आय में वृद्धि व जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दोनों समान दर से बढ़ रही हों।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक विकास में भेद करना सम्भव है किन्तु इस प्रकार का भेद व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं कहा जा सकता। अतः 'विकास' एवं 'वृद्धि' शब्द को पर्यायवाची मानते हुए इन्हें एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। प्रो. पॉल ए बरन का भी यह मत है।

### 1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति

आर्थिक विकास का अर्थ व परिभाषा जान लेने के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक विकास की प्रकृति क्या है? चूंकि आर्थिक विकास का स्वभाव अर्थशास्त्र के स्थैतिक एवं गत्यात्मक स्वरूपों पर आधारित है इसलिये यह अधिक उपयुक्त होगा कि पहले संक्षेप में इन दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर लिया जाये।

#### 1.3.4.1 स्थैतिक अर्थशास्त्र

**स्टैटिक (Static)** शब्द का सामान्य अर्थ है 'स्थिर रहना' तथा डायनामिक (Dynamic) शब्द का अर्थ है 'गतिमान' होना। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र में भी स्थैतिक शब्द से अभिप्राय 'विश्राम की अवस्था' से होता है। इसके विपरीत अर्थशास्त्र में स्थैतिक शब्द का आशय गतिहीन अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें परिवर्तन तो हों परन्तु इन परिवर्तनों की गति अत्यन्त कम हो।

**प्रो. हैराड** ने स्थैतिक शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है- "एक स्थैतिक संतुलन का अर्थ, विश्राम की अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें कार्य निरन्तर रूप से दिन-प्रतिदिन अथवा वर्ष-प्रति वर्ष हो रहा हो परन्तु उसमें वृद्धि अथवा कमी न हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनीय प्रक्रिया को 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' कहा जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि स्थैतिक अवस्था कोई विश्राम या गतिहीनता की अवस्था नहीं है। इसमें क्षण प्रति

क्षण परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन इतनी कम गति से होते हैं कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। स्थैतिक अवस्था 'गति मे स्थिरता' की द्योतक है।

### 1.3.4.2 गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक अर्थशास्त्र

परिवर्तन प्रकृति का निरन्तर नियत है। दिन के बाद रात, दुख के बाद सुख, धूप के बाद छांव तथा जन्म के बाद मृत्यु होना अवश्यम्भावी है। सत्यता तो यह है कि वास्तविक जीवन में पूर्ण स्थैतिक अवस्था कहीं देखने को नहीं मिलती है। परिवर्तनशीलता की इस प्रवृत्ति को ही गत्यात्मक अर्थशास्त्र कहते हैं।

**प्रो. हैरोड** के अनुसार "प्रावैगिक (अर्थशास्त्र) का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभाव तथा निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों में परिवर्तन की दरों से होता है।"

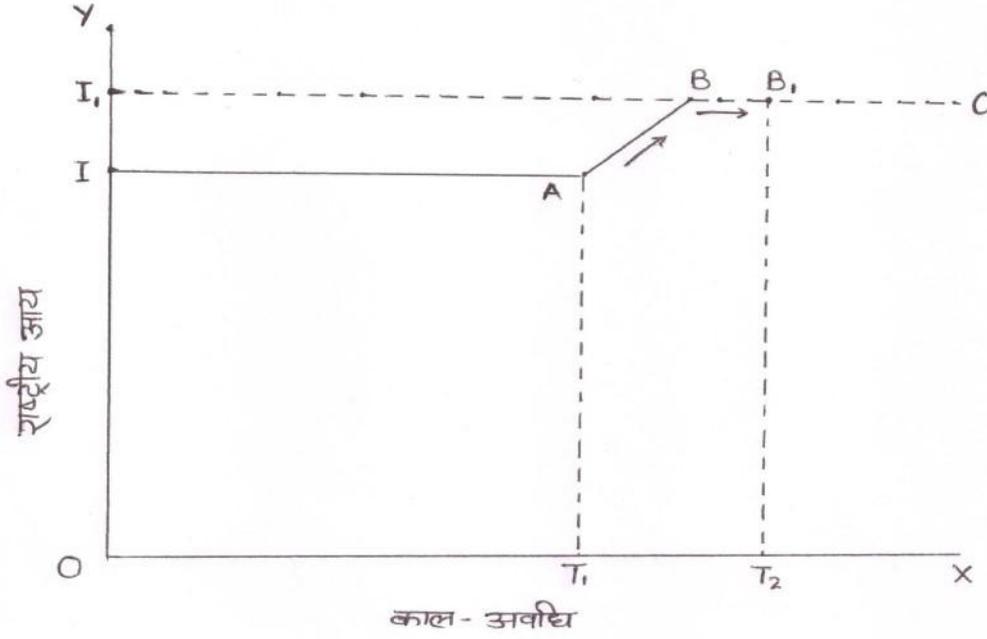
आपको स्पष्ट करना है कि **प्रो. जे. बी. क्लार्क** ने गत्यात्मक अर्थशास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किया है। जो कि निम्नवत है:

1. जनसंख्या में वृद्धि
2. पूँजी व पूँजी निर्माण में वृद्धि,
3. उत्पादन विधियों में सुधार,
4. औद्योगिक संगठनों के स्वरूपों में परिवर्तन
5. उपभोक्ता की आवश्यकताओं में वृद्धि।

### 1.3.4.3 आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक है

स्थैतिक एवं गत्यात्मक अर्थशास्त्र के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास मूलतः गत्यात्मक प्रकृति का है। जिस प्रकार गत्यात्मक अवस्था में पुराने साम्य टूट कर नये साम्य निर्मित होते रहते हैं ठीक उसी प्रकार विकास की पुरानी अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर नई अवस्थाओं का निर्माण होता रहता है। आर्थिक विकास का उद्देश्य जहां एक ओर आर्थिक प्रगति की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करना है वहीं दूसरी ओर दीर्घकाल में आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण करना भी है। ध्यान रहे आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के ऊंचे स्तर को प्राप्त करना होता है जिसके लिये 'विकास प्रक्रिया' अर्थव्यवस्था को प्रगति के एक निचले साम्य से ऊपर उठाकर किसी अन्य उच्चस्तरीय साम्य के धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है और यह आवश्यक भी है, अन्यथा आर्थिक विकास एक महत्वहीन विचारधारा बनकर रह जायेगा।

यहां यह लिखना आवश्यक होगा कि **प्रो. शुम्पीटर** द्वारा वर्णित आर्थिक वृद्धि की प्रकृति भी मूलरूप से गत्यात्मक ही है, परन्तु इसका झुकाव स्थैतिकता की ओर अधिक होता है। इसका कारण यह है कि आर्थिक वृद्धि के तदन्तर होने वाले विकासमयी परिवर्तन बहुत धीमी गति से होते हैं, और इनमें किसी भी प्रकार की नवीनता का सृजन नहीं हो पाता है। आर्थिक विकास की गत्यात्मक प्रकृति की पुष्टि निम्न चित्र द्वारा भी की जा सकती है -



चित्र 1.1

चित्र में OX रेखा पर समय और OY रेखा पर राष्ट्रीय आय को दिखाया गया है। हमारी मान्यता यह है कि अर्थव्यवस्था अर्द्ध रोजगार की सन्तुलन स्थिति में चल रही है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय OI पूर्ण रोजगार के स्तर से नीचे मानी गई है क्योंकि 0 से  $T_1$  अवधि तक राष्ट्रीय आय में कोई परिवर्तन नहीं होता ( $OI=AT_1$ ) अर्थात् इसकी वृद्धि की दर शून्य ही बनी रहती है। राष्ट्रीय आय की इस स्थैतिक स्थिति पर रहते हुये अर्थात् अवधि के  $T_1$  बिन्दु पर सरकार द्वारा किसी प्रकार का सार्वजनिक विनियोग का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से गुणक क्रियाशील हो उठता है। जिससे कई महीनों तक राष्ट्रीय आय में होने वाली निरन्तर वृद्धि अन्त में जाकर अवधि  $T_2$  पर OI के स्तर पर पहुंच जाती है जो कि इसका स्थिर व नवीन सन्तुलन बिन्दु है। अवधि  $T_1$  और  $T_2$  के बीच, राष्ट्रीय आय में I से  $I_1$  तक जो वृद्धि हुई है वह धनात्मक अवश्य है परन्तु OI पर पहुंचने के बाद यह पुनः शून्य मानी जायेगी। इसका कारण यह है कि एक निश्चित साम्य बिन्दु पर पहुंचने के बाद विकास की प्रत्येक दर अगले पड़ाव (साम्य) की दृष्टि से स्थिर व शून्य ही होती है। जब कोई अर्थव्यवस्था साम्य की एक स्थिति से दूसरी उच्च स्तरीय अथवा निम्न स्तरीय साम्य स्थिति की ओर अग्रसर होती है तो साम्य परिवर्तन की गति का अध्ययन करने के लिए 'गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण' का ही सहारा लेना पड़ता है।

वास्तव में, चित्र का उद्देश्य इसी तथ्य को स्पष्ट करता है। उपर्युक्त चित्र में सपाट रेखा AB उस मार्ग को दर्शाती है जिस पर राष्ट्रीय आय, अवधि के  $T_1$  बिन्दु से  $T_2$  के बीच बढ़ती है अर्थात् साम्य परिवर्तन होता है। अतः स्पष्ट है आर्थिक विकास की प्रक्रिया की सही जानकारी करने हेतु आर्थिक गत्यात्मक विश्लेषण का अध्ययन जरूरी है। दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक ही है।

## 1.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. आर्थिक विकास .....सतत प्रक्रिया है। (एक, दो, तीन)।
2. आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर .....से होता है। (अति अल्पकाल, मध्यमकाल, दीर्घकाल)
3. श्रीमती उर्सला हिक्स ने आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग .....देशों लिए किया जाता है। (विकसित, अविकसित, विकासशील)
4. आर्थिक विकास का अर्थ प्रति व्यक्ति उत्पादन में ..... से लगाया जाता है। (समता, वृद्धि, कमी)
5. आर्थिक वृद्धि .....साम्य की स्थिति है। (स्थैतिक, प्रावैगिक, आवश्यक)

### बहुविकल्पीय प्रश्न

6. आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
 

A. मायर एवं वाल्डविकन	C. उर्सला हिक्स
B. यंगसन	D. शुम्पीटर
7. विकास एक प्रक्रिया होती है?
 

A. सतत	C. राष्ट्रीय
B. असतत	D. सभी गलत
8. आर्थिक विकास साम्य का एक रूप है?
 

A. सृजनात्मक	C. उपरोक्त दोनों
B. स्थैतिक	D. गतिशील
9. आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।
 

A. यंगसन	C. जैकब वाइनर
B. हार्वे लिवेस्टीन	D. हिंगीस
10. आर्थिक विकास का सम्बन्ध होता है?
 

A. अल्पकाल से	C. दीर्घकाल से
B. मध्यम काल से	D. उपरोक्त सभी
11. दीर्घकाल होता है?
 

A. एक वर्ष से कम	C. 5 से 10 वर्ष
B. 2 वर्ष से कम	D. 15 से 20 वर्षों के बीच
12. आर्थिक विकास का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय की किस प्रकार की आय से है?
 

A. कुल राष्ट्रीय आय	C. वास्तविक राष्ट्रीय आय
B. शुद्ध राष्ट्रीय आय	D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
13. आर्थिक संवृद्धि का अर्थ सामान्यतया लिया जाता है
 

A. अधिक उत्पादन से	B. तकनीकी परिवर्तन से
--------------------	-----------------------

- C. संस्थागत सुधारों से
- D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
14. आर्थिक विकास की विशेषतायें हैं
- A. आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है
- B. राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि
- C. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि
- D. उपर्युक्त सभी
15. प्रायः अल्पविकसित देशों के लिए शब्द प्रयुक्त किया जाता है
- A. आर्थिक वृद्धि को
- B. आर्थिक विकास को
- C. उपर्युक्त दोनों को
- D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
16. प्रो. जे0बी0 क्लार्क ने गत्यात्मक अर्थशास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किया है उनमें से नहीं है।
- A. जनसंख्या में वृद्धि
- B. पूँजी व पूँजी निर्माण में वृद्धि
- C. उत्पादन विधियों में सुधार
- D. जनसंख्या में कमी
17. स्टैटिक (Statics) शब्द का सामान्य अर्थ है।
- A. स्थिर रहना
- B. गतिशील रहना।
- C. उपर्युक्त दोनों
- D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
18. आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः है।
- A. स्थैतिक
- B. गत्यात्मक
- C. उपर्युक्त दोनों
- D. उपर्युक्त सभी असत्य है।

## 1.5 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि आर्थिक वृद्धि का संबंध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में एक मात्रात्मक निरन्तर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम शक्ति, उपभोग, पूँजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। जो कि आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है। यह प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अंतर्निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और हास दोनों सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परन्तु यह विकास नहीं कर सकती क्योंकि प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएं निरन्तर विद्यमान रहती हैं। परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभाव के कारण, विशेषकर जब जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में सोचना कठिन है।

## 1.6 शब्दावली

- **आर्थिक विकास-** आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दीर्घकाल में एक अर्थव्यवस्था की

वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

- **राष्ट्रीय आय-** किसी देश का श्रम व पूँजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रति वर्ष जिन भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध वास्तविक उत्पादन करते हैं उनका मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है।
- **वास्तविक आय-** मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को वास्तविक आय कहते हैं।
- **प्रति व्यक्ति आय-** किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।
- **स्थैतिक अर्थशास्त्र-** जिसमें कार्य निरंतर रूप से दिन प्रतिदिन हो रहा है। परंतु उसमें वृद्धि अथवा कमी न हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनयी प्रक्रिया को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहते हैं।

## 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. एक 2. दीर्घकाल 3. विकसित 4. वृद्धि 5. स्थैतिक

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. A, 7. A, 8. A, 9. A 10. C, 11. D, 12. C, 13. A, 14. D, 15. B, 16. D, 17. A, 18. B

## 1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम. एल. झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया", एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

## 1.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- U.Hicks, "Learning about Economic Development" O.E.R. Feb. 1957.
- A Maddison, Economic Progress and Policy in Development Countries, 1970.
- C. P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
- Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March 1955.
- Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

---

## 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा दीजिए। आर्थिक संवृद्धि की प्रकृति तथा महत्व का उल्लेख कीजिए।
2. आर्थिक विकास में आर्थिक संवृद्धि के अतिरिक्त कुछ और भी निहित है।"टिप्पणी कीजिए।
3. आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि की व्याख्या कीजिए।
4. आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अंतर स्पष्ट कीजिए। क्या राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास का संतोषजनक मापदण्ड है?
5. क्या आपके विचार में आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास में अंतर है? आप इस अंतर को कैसे स्पष्ट करेंगे? इस संदर्भ में श्रीमती उर्सला हिक्स तथा शुम्पीटर के विचारों का विवेचन कीजिए।
6. आर्थिक विकास आर्थिक शक्तियों के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक एवं अनैरन्तर्यपूर्ण परिवर्तन अथवा सन्तुलन स्थिति में झकझोर उत्पन्न करने वाली हलचल है जो वर्तमान सन्तुलन स्थिति को परिवर्तित और विस्थापित कर देती है।" व्याख्या कीजिए?

---

## इकाई 2 - आर्थिक विकास का मापन

### (Measurement of Economic Development)

---

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 आर्थिक विकास का मापन
  - 2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास
  - 2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईया
  - 2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास
- 2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास
- 2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि
- 2.6 मानव विकास सूचक एवं आर्थिक विकास
- 2.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 2.8 सारांश
- 2.9 शब्दावली
- 2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को कैसे मापा जाय? मापदण्ड के रूप में क्या आधार चुना जाय? इसके सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसको मापने के सम्बन्ध में अनेक मापदण्डों की चर्चा की है। वाणिज्यवादी अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। एडमस्मिथ ने किसी भी देश के आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में उस देश की उत्पादन शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की दशा तथा विशिष्टीकरण को स्वीकार किया। जे. एस. मिल ने अर्थव्यवस्था में सहकारिता के स्तर तथा कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की स्थापना को ही आर्थिक विकास की चरम अवस्था माना। मायर एवं बाल्डविन जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि को दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि तथा हिगिन्स, वी. के. आर. बी. राव सभी लोग उत्पादकता की वृद्धि को ही आर्थिक संवृद्धि का मापक मानते हैं।

## 2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ आर्थिक विकास का रूप कैसे होता है।
- ✓ कुल राष्ट्रीय उत्पाद क्या है।
- ✓ प्रति व्यक्ति आय से क्या तात्पर्य है।
- ✓ आर्थिक कल्याण से आपका क्या तात्पर्य।
- ✓ सामाजिक सूचकों का आर्थिक विकास में क्या योगदान है।

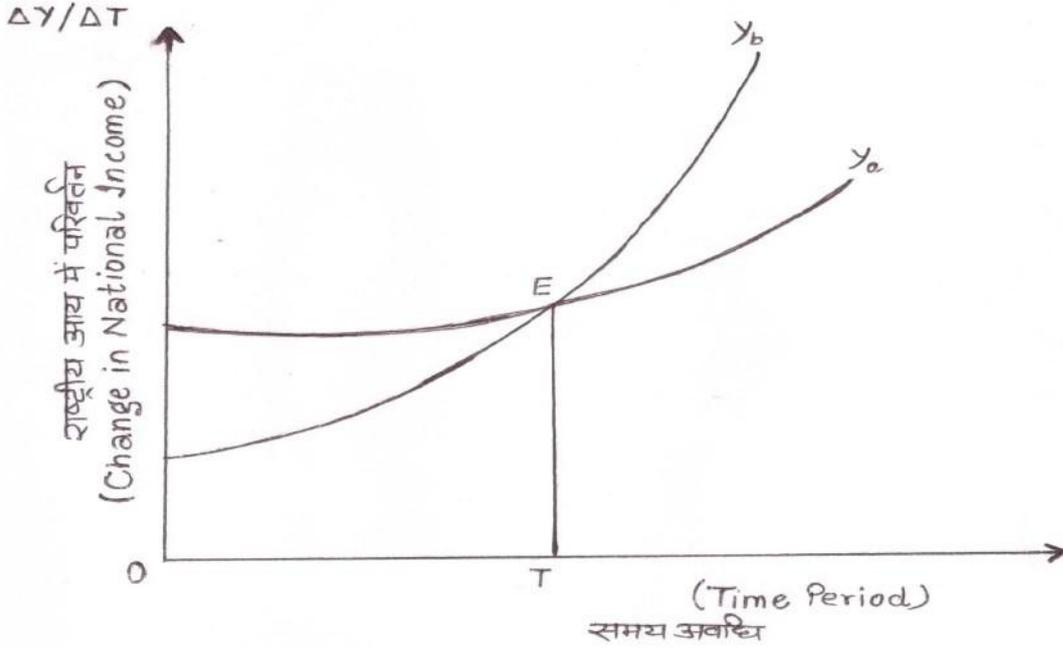
## 2.3 आर्थिक विकास का मापन

‘आर्थिक विकास’ आज के इस प्रगतिशील युग का एक बहुचर्चित विषय है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। पर सवाल यह उठता है कि आर्थिक विकास की कसौटी अथवा मानदण्ड क्या हो? अर्थात् किसी देश में आर्थिक विकास हो रहा है अथवा नहीं, इस बात का किस प्रकार पता लगाया जाए? आर्थिक विकास की माप हेतु विकासवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं।

### 2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास

कुछ अर्थशास्त्री सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का सूचक मानते हैं। उनके अनुसार, **“आर्थिक विकास को समय की किसी दीर्घावधि में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में मापा जाए।”** इस कथन को नीचे चित्र 2.1 से स्पष्ट किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर समय को लिया गया है जबकि अनुलंब अक्ष पर राष्ट्रीय आय में परिवर्तन समय के साथ दिखाया गया है। रेखा Y<sub>a</sub> देश

A में राष्ट्रीय आय के स्तर को और Yb देश B में राष्ट्रीय आय के स्तर को दर्शाती है। समय T तक देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश B में विकास परियोजनाएं शुरू होने से राष्ट्रीय आय की तीव्रता से वृद्धि होती है। जैसा कि चित्र 2.1 में E बिन्दु के बाद  $Y_b > Y_a$  से स्पष्ट हो रहा है। इस संदर्भ में प्रोफेसर मॉयर एवं बाल्डविन ने ठीक ही कहा है कि “आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।”



चित्र 2.1

### 2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईयां

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का आगणन करना एक जटिल समस्या है जिसमें निम्नलिखित कठिनाईयां पाई जाती हैं।

1. **राष्ट्र की परिभाषा** - प्रथम कठिनाई 'राष्ट्र' की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाएं होती हैं परन्तु राष्ट्रीय आय में राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशों में कमाई गई देशवासियों की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' की परिभाषा राजनैतिक सीमाओं को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।
2. **कुछ सेवाएं** - राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत सी वस्तुएं और सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मां का अपने बच्चों को पालना आदि। इसी प्रकार जब एक फर्म का मालिक अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होती जबकि विवाह से पहले वह राष्ट्रीय आय का भाग होती हैं। ऐसी सेवाएं राष्ट्रीय आय में सम्मिलित न होने से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।

3. **दोहरी गणना** – राष्ट्रीय आय की परिगणना करते समय सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की होती है। इसमें एक वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। यदि ऐसा हो तो राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ जाती है। इस कठिनाई से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ही लिया जाता है जो आसान काम नहीं है।
4. **अवैध क्रियाएं** - राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती जैसे जुए या चोरी से बनाई गई शराब से आया। ऐसी सेवाओं में वस्तुओं का मूल्य होता है और वे उपभोक्ता की आवश्यकताओं को भी पूरा करती है परन्तु इनको राष्ट्रीय आय में शामिल न करने से राष्ट्रीय आय कम रह जाती है।
5. **अन्तरण भुगतान** –राष्ट्रीय आय में अन्तरण भुगतानों को सम्मिलित करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता तथा सार्वजनिक ऋणों पर व्याज व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं पर इन्हें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाए या न किया जाये, एक कठिन समस्या है। एक ओर तो ये प्राप्तियां व्यक्तिगत आय का भाग हैं। दूसरी ओर ये सरकारी व्यय हैं। यदि इन्हें दोनों ओर सम्मिलित किया जाए तो राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हो जाएगी। इस कठिनाई से बचने के लिए इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।
6. **वास्तविक आय** - मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की परिगणना वास्तविक आय का न्यून आगणन करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उसमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नहीं लेती।
7. **सार्वजनिक सेवाएं** - राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत सी सार्वजनिक सेवाएं भी ली जाती हैं, जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस तथा सैनिक सेवाओं में छावनियां में ही विश्राम करती है। इसी प्रकार सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओं से प्राप्त लाभों का मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में योगदान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।
8. **पूँजीगत लाभ या हानियाँ** – जो संपत्ति मालिकों को उनकी पूँजी परिसंपत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि, कमी या मांग में परिवर्तनों से होती है वे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल नहीं की जाती है क्योंकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होता है। जब पूँजी या हानियां चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओं के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूँजी लाभों या हानियों की राष्ट्रीय आय में आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।
9. **माल सूची परिवर्तन** - सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्म अपनी माल सूचियों को उनकी मूल्य लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढ़ती है तो मूल्य सूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अतः सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) का सही हिसाब लगाने के लिए माल सूची समायोजन की

आश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

**10. मूल्य हास** - जब पूँजी मूल्य हास को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में से घटा दिया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एन. एन. पी.) प्राप्त होती है। परन्तु मूल्य हास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ यदि कोई ऐसी पूँजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी चालू मूल्य हास दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और बढ़ जाती है। माल सूचियों के विपरीत मूल्य हास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

**11. हस्तान्तरण भुगतान** – राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतानों की समस्या भी पाई जाती है। व्यक्तियों को पेंशन, बेकारी भत्ता और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज प्राप्त होता है। परन्तु इन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। एक ओर तो यह अर्जन व्यक्तिगत आय का भाग है और दूसरी ओर यह सरकारी व्यय है।

### 2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास

दूसरी परिभाषा का सम्बन्ध लम्बी अवधि में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि से है। “*प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि*” के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा देने में अर्थशास्त्री एकमत हैं। बुकैनन तथा एलिस के अनुसार “*विकास का अर्थ पूँजी निवेश के उपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय संभाव्यताओं का विकास करने के लिए ऐसे परिवर्तन लाना और ऐसे उत्पादक स्रोतों का बढ़ाना है, जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ाने की संभावना प्रकट करते हैं।*” इन परिभाषाओं का उद्देश्य इस बात पर बल देना है कि आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए। परन्तु फिर भी कठिनाईयों रह जाती हैं।

यहाँ यह भी संभव है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप जन साधारण के वास्तविक जीवन स्तर में सुधार न हो। यह संभव है कि जब प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ जाती है, तो प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा कम होती जा रही हो। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों, या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हों। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने के बजाए मुट्टी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की परिभाषा उन प्रश्नों को गौण बना देती है जो समाज के ढाँचे, उनकी जनसंख्या के आकार एवं बनावट, उसकी संस्थाओं तथा संस्कृति साधन-स्वरूप और समाज के सदस्यों में उत्पादन के समान वितरण से सम्बन्ध रखते हैं।

### प्रति व्यक्ति आय आगणन की कठिनाइयाँ

अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के माप तथा उन्नत देशों की प्रति व्यक्ति आय से उनकी तुलना करने में भी बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। जिनके कारण नीचे दिये जा रहे हैं।

**1. अमौद्रिक क्षेत्र** - अल्पविकसित देशों में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसके कारण राष्ट्रीय

- आय का हिसाब लगाना कठिन है। कृषि क्षेत्र में जो उत्पादन होता है, उसका बहुत-सा भाग या तो वस्तुओं में विनिमय कर लिया जाता है या फिर व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लिया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय कम बताई जाती है।
2. **व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव** - ऐसे देशों में व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव होता है। जिससे वितरणात्मक हिस्सों के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन हो जाता है। उपज के अतिरिक्त किसान ऐसी अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जैसे अण्डे, दूध, वस्त्र आदि जिन्हें प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के अनुमान में कभी शामिल नहीं किया जाता।
  3. **अशिक्षा** - अल्प विकसित देशों में अधिकतर लोग अशिक्षित होते हैं और हिसाब-किताब नहीं रखते, और यदि हिसाब किताब रखें भी तो अपनी सही आय बताने को तैयार नहीं होते। ऐसी स्थिति में मोटे तौर पर ही अनुमान लगाया जा सकता है जो कि दोषपूर्ण होता है।
  4. **गैर-बाजार लेन-देन** - राष्ट्रीय आय के आगणन में केवल उन वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका वाणिज्य में प्रयोग होता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में गांवों में रहने वाले लोग प्राथमिक वस्तुओं से उपभोग-वस्तुओं का निर्माण करते हैं और बहुत से खर्चों से बच जाते हैं। वे अपनी झोपड़ियां, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं स्वयं बना लेते हैं। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत कम वस्तुओं का मार्केट के मार्ग से प्रयोग होता है और इसीलिये वे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आगणन में भी शामिल नहीं होता है।
  5. **वास्तविक आय** - मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की गणना वास्तविक आय का न्यून अनुमान करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत, प्रयत्न या उत्पादन की प्रक्रिया में किये गये अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गयी आय समान हो सकती है परन्तु यदि उनमें एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है, तो यह कहना कुछ ठीक नहीं होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बतायी गयी है।
  6. **कीमत परिवर्तन** - कीमत स्तर में परिवर्तन के कारण जो परिवर्तन उत्पादन में होते हैं, उसका उचित माप राष्ट्रीय आय के आगणन में नहीं कर पाते। कीमत स्तर के परिवर्तन को मापने के लिए काम में लाये जाने वाले सूचकांक भी केवल मोटे तौर पर अंदाजे से बनाये जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न देशों में कीमत स्तर भी भिन्न होते हैं। प्रत्येक देश में उपभोक्ताओं की इच्छाएं और अधिमान भी भिन्न होते हैं। इसीलिये विभिन्न देशों के प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आंकड़े प्रायः भ्रांतिजनक तथा अतुलनीय होते हैं।
  7. **भ्रमपूर्ण आंकड़े** - अविश्वसनीय तथा भ्रमपूर्ण आंकड़ों के कारण अल्पविकसित देशों के प्रति व्यक्ति आय के हिसाब किताब में उसके कम या अधिक बताये जाने की संभावना रहती है। इन सब सीमाओं के बावजूद, विभिन्न देशों के आर्थिक प्रगति के स्तर के लिए सबसे अधिक व्यापक रूप से किया जाने वाला माप प्रति व्यक्ति आय ही है। फिर भी, अल्पविकास सूचकों के रूप में केवल प्रति व्यक्ति आय आगणनों का कोई मूल्य नहीं है।

## 2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास

विभिन्न देशों में यह प्रवृत्ति भी होती है कि आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास की परिभाषा दी जाये। ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाये जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है और उसके साथ साथ असमानताओं का अंतर कम होता है तथा समस्त जनसाधारण के अधिमान संतुष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग में वृद्धि होती है। ओकन और रिचर्डसन के शब्दों में 'आर्थिक विकास' भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत दीर्घकालीन सुधार है। जो कि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।

**इसकी सीमाएँ :-** यह परिभाषा भी सीमाओं से मुक्त नहीं है।

**प्रथम,** यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ 'आर्थिक कल्याण' में सुधार ही हो। ऐसा संभव है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से अमीर अधिक अमीर हो रहे हों या गरीब और अधिक गरीब। इस प्रकार केवल आर्थिक कल्याण में वृद्धि से ही आर्थिक विकास नहीं होता, जब कि राष्ट्रीय आय का वितरण न्यायपूर्ण न माना जाये।

**दूसरे,** आर्थिक कल्याण को मापते समय कुल उत्पादन की संरचना का ध्यान रखना पड़ता है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, और यह उत्पादन कैसे मूल्यांकित हो रहा है? बढ़ा हुआ कुल उत्पादन पूँजी पदार्थों से मिलकर बना हो सकता है और यह भी उपभोक्ता वस्तुओं के कम उत्पादन के कारण।

**तीसरे,** वास्तविक कठिनाई इस उत्पादन के मूल्यांकन में होती है। उत्पादन तो मार्केट कीमतों पर मूल्यांकित होता है, जबकि आर्थिक कल्याण वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन या आय में वृद्धि से मापा जा सकता है। वास्तव में, आय के विभिन्न वितरण से कीमतें भिन्न होंगी और राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य तथा संरचना भी भिन्न होंगी।

**चौथे,** कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है। बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है? वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन के बढ़ने से संभव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों तथा पीड़ा और त्याग जैसी सामाजिक लागतों में वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ, उत्पादन में वृद्धि अधिक घंटे तथा श्रम-शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो।

**पाँचवे,** हम प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि को भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि के बराबर नहीं मान सकते। विकास की इष्टतम दर निश्चित करने के लिए हमें आय-वितरण, उत्पादन की संरचना, रूचियों, वास्तविक लागतों तथा ऐसे अन्य सभी विशिष्ट प्रयत्नों के सम्बन्ध में मूल्य-निर्णय करने पड़ेंगे, जो कि वास्तविक आय में कुल वृद्धि से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये मूल्य निर्णयों से बचने और सरलता के लिए अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का माप बनाकर प्रयोग करते हैं।

**अंतिम,** सबसे बड़ी कठिनाई व्यक्तियों के उपभोग को भार देने की है। वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग व्यक्तियों की रूचियों और अधिमानों पर निर्भर करता है। जो भिन्न-भिन्न होते हैं। इसीलिये व्यक्तियों का कल्याण

सूचक बनाने में समान भार लेना सही नहीं है।

## 2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि

आर्थिक विकास के माप के रूप में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय की कीमत से असंतुष्ट होकर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को सामाजिक अथवा मूलभूत (आधारभूत) आवश्यकता सूचक के रूप में मापना प्रारम्भ किया है। जिसके अनेक कारण निम्नवत हैं :

1950 तथा 1960 के दशकों में GNP में वृद्धि एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा। 1960 के विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिए GNP में 5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्ष्य दर को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगिकरण का सुझाव दिया। उनका यह मत था कि GNP की वृद्धि से प्राप्त लाभ अपने आप रोजगार और आय के सुअवसरों ने वृद्धि के रूप में गरीबों तक धीरे धीरे पहुंच जायेंगे। इस प्रकार, विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानताओं की समस्याओं को गौण महत्व दिया गया।

रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ को नर्सों के कम बचतों, छोटी मार्केटों तथा जन संख्या दबावों के कुचक्रों ने और शक्ति प्रदान की। यह समझा गया कि इन कुचक्रों को दूर करने के लिए प्राकृतिक शक्तियां मुक्त हो जायेंगी। जो अर्थव्यवस्था में ऊंची वृद्धि लायेंगी। इसके लिए रोडान ने 'बड़ा धक्का', नक्सों ने 'संतुलित विकास', हर्षमैन ने 'असंतुलित विकास', तथा लीबन्स्टीन ने 'क्रान्तिक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त' का सुझाव दिया। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए पूँजी, तकनीकी ज्ञान विदेशी विनिमय आदि के रूप में 'लुप्त अंशों' को प्रदान करने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहायता पर अधिक बल दिया गया। विदेशी सहायता के तर्क के पीछे 'दोहरा अंतराल मॉडल' तथा आयत स्थानापन्नता द्वारा औद्योगिकीकरण था ताकि अल्पविकसित देश धीरे-धीरे विदेशी सहायता का परित्याग कर दें।

डेविड मोरवैट्ज के अनुमान यह बताते हैं कि इस विकास कूटनीति के अपनाने से विकासशील देशों में 1950-75 के बीच GNP एवं प्रति व्यक्ति आय में 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष औसत दर से वृद्धि हुई। परन्तु यह वृद्धि दर ऐसे देशों की गरीबी, बेरोजगारी तथा असमनताओं को दूर करने में असफल रही।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में GNP के विरुद्ध अर्थशास्त्रियों के बीच आलोचनायें 1960 की दशाब्दी से बढ़ती जा रही थी। परन्तु सार्वजनिक तौर से प्रथम प्रहार प्रो. सिराज ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित **Eleventh World Conference of the society for International Development** के अध्यक्षीय भाषण में किया। उसने समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया, "एक देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं – गरीबी का क्या हो रहा है? बेरोजगारी का क्या हो रहा है? असमानता को क्या हो रहा है? यदि यह तीनों ऊंचे स्तरों से कम हुए हैं तो बिना संशय के उस देश के लिए विकास की अवधि रही है। यदि इन मुख्य समस्याओं में से एक या दो अधिक बुरी अवस्था में हो जा रही हो, या तीनों ही निम्नता में हों तो परिणाम को विकास कहना आश्चर्यजनक होगा चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगनी हुई हो।"

उस समय के विश्व बैंक के गवर्नर **रोबर्ट मैक्कनमारा** ने भी फरवरी 1970 में विकासशील देशों में GNP वृद्धि दर को आर्थिक विकास के सूचक की विफलता को इन शब्दों में स्वीकार किया- **“प्रथम विकास दशाब्दी में GNP में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के विकास उद्देश्य को प्राप्त किया गया था। यह मुख्य उपलब्धि थी। परन्तु GNP में सापेक्षतया ऊंची वृद्धिदर विकास में संतोष जनक उन्नति न लाई। विकासशील विश्व में, दशाब्दी के अंत में, कुपोषण सामान्य है, शिशु मृत्यु दर ऊंची है, अशिक्षा विस्तृत है, बेरोजगारी स्थानिक रोग है जो और बढ़ जाता है, धन और आय का पुनर्वितरण अत्यन्त विषम है।”**

विकास की GNP प्रति व्यक्ति मापों से असंतुष्ट होकर, 1970 की दशाब्दी से आर्थिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जिसके अनुसार वे तीन महत्वपूर्ण विन्दुओं रोजगार को बढ़ाने, गरीबी को दूर करने तथा आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की कूटनीति पर बल देते हैं। इसके अनुसार, जनसाधारण को स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, खुराक, कपड़े, आवास, काम आदि के रूप में मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं और साथ ही सांस्कृतिक पहचान तथा जीवन और कार्य में उद्देश्य एवं सक्रिय भाग की भावना जैसी अभौतिक आवश्यकताएं प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य गरीबों को मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं प्रदान करके उनकी उत्पादकता बढ़ाना और गरीबी दूर करना है। यह तर्क दिया जाता है कि मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष प्रबन्ध करने से गरीबी पर थोड़े संसाधनों द्वारा और थोड़े समय में प्रभाव पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में मानव संसाधन विकास के उत्पादकता के उच्च स्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा विशेषतौर से वहां होता है जहां ग्रामीण भूमिहीन अथवा शहरी गरीब पाये जाते हैं तथा जिनके पास दो हाथ और काम करने की इच्छा के सिवाय कोई भौतिक परिसम्पत्तियां नहीं होती हैं। इस कूटनीति के अंतर्गत मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं के अलावा, रोजगार के सुअवसरों, पिछड़े वर्गों के उत्थान तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को गरीब वर्गों के लिए जुटाना है।

**सामाजिक सूचक:-** अब हम सामाजिक आर्थिक विकास के सूचकों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं जो कि निम्नवत हैं :

अर्थशास्त्री सामाजिक सूचकों में तरह-तरह की मदों को शामिल कर लेते हैं। इसमें से कुछ आगते हैं जैसे पौष्टिकता मापदण्ड या अस्पताल के बिस्तरों की संख्या या जनसंख्या के प्रतिव्यक्ति डॉक्टर, जबकि दूसरी कुछ मदें इन्हीं के अनुरूप निर्गते हो सकती हैं, जैसे नवजात शिशुओं की मृत्यु दर के अनुसार स्वास्थ्य में सुधार, रोग दर, आदि। सामाजिक सूचकों को प्रायः विकास के लिए मूल आवश्यकताओं के संदर्भ में लिया जाता है। मूल आवश्यकताएं, गरीबों की मूल मानवीय आवश्यकताओं को उपलब्ध करा कर गरीबी उन्मूलन पर केन्द्रित होती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल, स्वच्छता, तथा आवास जैसी प्रत्यक्ष सुविधाएं थोड़े से मौद्रिक संसाधनों तथा अल्पावधि में ही गरीबी पर प्रभाव डालती है। जबकि GNP प्रति व्यक्ति आय की कूटनीति उत्पादकता बढ़ाने तथा गरीबों की आय बढ़ाने के लिए दीर्घावधि में स्वतः ही कार्य करती है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उच्च स्तर पर उत्पादकता तथा आय बढ़ाती है, जिन्हें शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं जैसे मानव विकास के साथ साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

**प्रो. हिक्स और स्ट्रीटन** मूलभूत आवश्यकताओं के लिए छः सामाजिक सूचकों पर विचार करते हैं:

क्रम संख्या	मूल आवश्यकता	सूचक
1.	स्वास्थ्य	जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा।
2.	शिक्षा	प्राथमिक शिक्षा विद्यालयों में जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार दाखिले द्वारा साक्षरता की दर।
3.	खाद्य	प्रति व्यक्ति कैलोरी आपूर्ति।
4.	जल आपूर्ति	शिशु मृत्यु दर तथा पीने योग्य पानी तक कितने प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच।
5.	स्वच्छता	शिशु मृत्यु दर तथा स्वच्छता प्राप्त जनसंख्या का प्रतिशत।
6.	आवास	कोई नहीं।

सामाजिक सूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े और वे लक्ष्य हैं मानव विकास। आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। सामाजिक सूचकों से पता चलता है कि कैसे विभिन्न देश वैकल्पिक उपयोगों के बीच अपने GNP का आवंटन करते हैं। कुछ शिक्षा पर अधिक तथा अस्पतालों पर कम खर्च करना पसंद करते हैं। इसके साथ साथ इनसे बहुत सी मूल आवश्यकताओं की उपस्थिति, अनुपस्थिति अथवा कमी के बारे में जानकारी मिलती है।

उपयुक्त सूचकों में प्रतिव्यक्ति कैलोरी आपूर्ति को छोड़कर शेष सूचक निर्गत सूचक हैं। निःसन्देह नवजात शिशुओं की मृत्युदर, स्वच्छता तथा साफ पेय जल सुविधाओं दोनों की सूचक है क्योंकि नवजात शिशु पानी से होने वाले रोगों का शीघ्र शिकार हो सकते हैं। नवजात शिशु मृत्युदर भोजन की पौष्टिकता से भी संबंधित है। इस प्रकार शिशुओं की मृत्युदर 6 में से 4 मूल आवश्यकताओं को मापती है। कुछ सामाजिक सूचकों से संबंधित विकास का एक सामान्य सूचक बनाने में कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो कि निम्नवत है।

**प्रथम**, ऐसे सूचक में शामिल किए जाने वाली मदों की संख्या और किस्मों के बारे में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं है। उदाहरणार्थ, हेगन और संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक विकास के लिए अन्वेषण संस्था 11 से 18 मदों का प्रयोग करते हैं। जिनमें से बहुत कम समान हैं। दूसरी ओर **डी. मौरिस** तुलनात्मक अध्ययन के लिए विश्व के 23 विकसित और विकासशील देशों से संबंधित '**जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक**' बनाने के लिए केवल तीन मदों अर्थात् जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर और साक्षरता दर को लेता है।

**दूसरे**, विभिन्न मदों को भार देने की समस्या उत्पन्न होती है जो देश के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक ढांचे पर निर्भर करती है। यह व्यक्तिपरक बन जाती है। मौरिस तीनों सूचकों को समान भार प्रदान करता है जो विभिन्न देशों के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए सूचक का महत्व कम कर देता है। यदि प्रत्येक देश अपने सामाजिक सूचकों की सूची का चुनाव करता है और उनको भार प्रदान करता है तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाएं उतनी ही गलत होंगी जितने की GNP के आंकड़े होते हैं।

**तीसरे**, सामाजिक सूचक वर्तमान कल्याण से सम्बन्धित होते हैं न कि भविष्य के कल्याण से।

**चौथे**, अधिकतर सूचक आगत है न कि निर्गत जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। अन्तिम, उनमें मूल्य निर्णय पाए जाते हैं। अतः मूल निर्णयों से बचने और सुगमता के लिए अर्थशास्त्री तथा यू. एन. के संगठन GNP एवं प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास के माप के रूप में प्रयोग करते हैं।

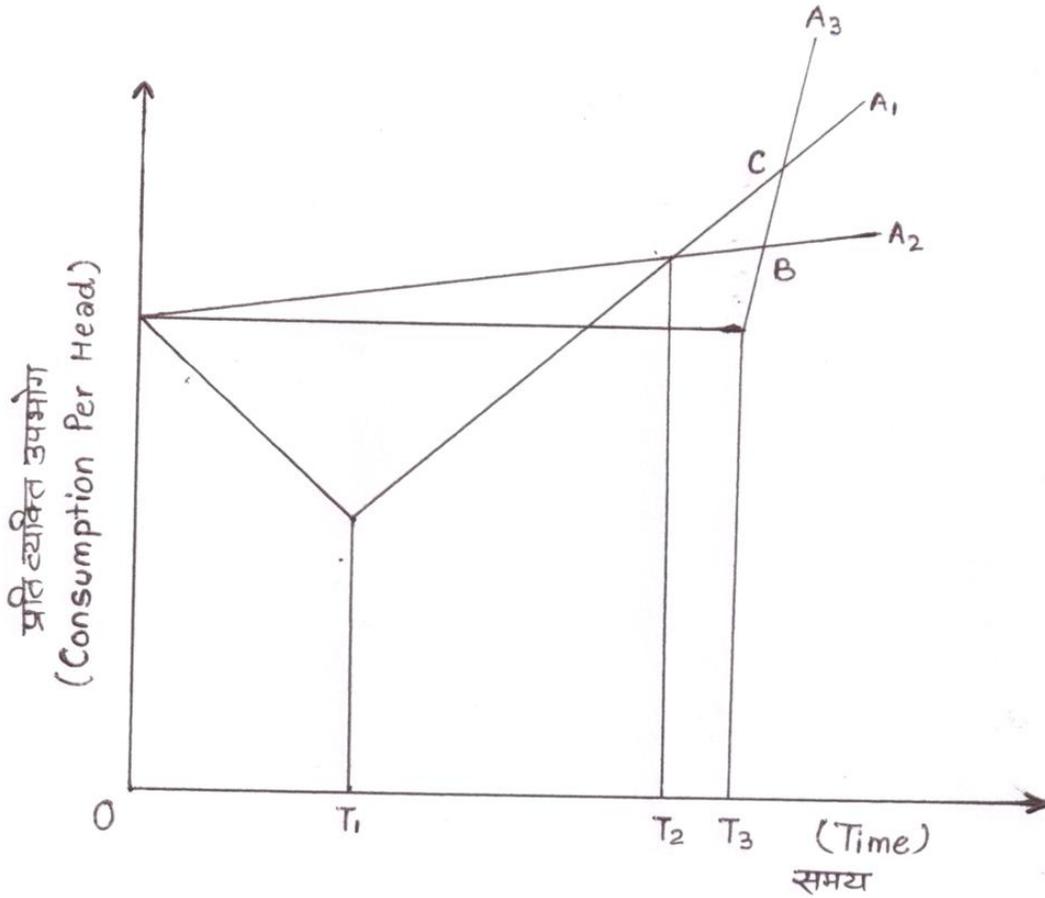
### मूलभूत आवश्यकताएं बनाम आर्थिक वृद्धि

क्या आर्थिक वृद्धि और मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद है ? जैसा कि पहले कहा गया है, मूलभूत आवश्यकताएं लक्ष्यों से संबंधित हैं और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को पाने का साधन। अतः आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं में कोई विरोध नहीं है। **गोल्डस्टीन** ने शिशु मृत्युदर के माध्यम से आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं के बीच गहरा संबंध पाया है। वह आर्थिक विकास को कुशलता का नाम देता है। उसके अनुसार, शिशुओं की मृत्यु दर को 5 प्रतिशत से कम रखने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए GDP का स्तर आवश्यक है। जो देश अपने GDP का एक बड़ा हिस्सा अथवा प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करते हैं, वे अधिक कुशल हैं, क्योंकि इस प्रकार वे शिशु मृत्युदर को घटाने में सफल हो जाते हैं। **गोल्ड स्टीन** ने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने अपने थोड़े से संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगाया। अपने विभिन्न वर्गों के अध्ययन में उसने स्कूलों में दाखिले तथा महिलाओं में स्वास्थ्य के साथ-साथ शिक्षा की प्राप्ति को लिया। उसने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने बहुत थोड़े संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगाया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जो विकासशील देश प्राथमिक स्कूली शिक्षा तथा महिला शिक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं, वे इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम खर्च करके भी अधिक विकास कर सकते हैं।

**फाई, रैनिस** तथा **स्टूअर्ट** के अनुसार विकासशील देशों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर खर्च करने से उत्पादक निवेश में कमी नहीं होती। उन्होंने नौ देशों का सैम्पल लिया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि ताईवान, दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स, उरूग्वे तथा थाईलैण्ड ने मूलभूत आवश्यकताओं का अच्छा प्रबन्ध किया तथा उनके निवेश अनुपात भी औसत से अधिक थे। जबकि कोलम्बिया, क्यूबा, जर्मका तथा श्रीलंका ने अच्छी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ-साथ औसत निवेश अनुपात रखे। उन्होंने नौ विभिन्न देशों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में किए गए कार्य को औसत से अधिक तथा औसत से कम आर्थिक वृद्धि के साथ भी संबद्ध किया। इनमें से ताईवान, दक्षिण कोरिया तथा इंडोनेशिया ऐसे हैं जिन्होंने मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि की। ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया तथा औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि भी की। जबकि दूसरी ओर सोमाली, श्रीलंका, क्यूबा तथा मिस्र की आर्थिक वृद्धि दर औसत से कम रही। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मूलभूत आवश्यकताओं के अधिक प्रावधान करने से आर्थिक वृद्धि भी होती है। नॉरमन हिक्स ने भी अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि कई विकासशील देशों की आर्थिक वृद्धि की दर मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति द्वारा बढ़ी है।

आईए अब दीर्घकाल में GNP प्रति व्यक्ति GNP मूलभूत आवश्यकताओं तथा कल्याण धारणाओं की आर्थिक विकास पर प्रभावों की तुलना करें। चित्र 2.2 में तीन पर्थ  $A_1$ ,  $A_2$  तथा  $A_3$  दिखाए गए हैं। इसमें समय को क्षैतिज अक्ष पर रखा गया है तथा विकास की दर को अनुलंब अक्ष पर गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग द्वारा मापा

गया है। पथ  $A_1$  का संबंध GNP/ प्रति व्यक्ति GNP कूटनीति से है। स्पष्ट है कि आरंभ में गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग समय  $T_1$  तक घटता है क्योंकि तेजी से उद्योगीकरण तथा शहरीकरण से गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता में वृद्धि होती है। लेकिन जब GNP प्रति व्यक्ति GNP में वृद्धि के लाभ गरीबों तक रिस कर पहुंचते हैं तो उनके रोजगार तथा आय में वृद्धि होती है तथा समय  $T_1$  के बाद प्रति व्यक्ति उपभोग में भी वृद्धि होनी आरंभ हो जाती है।



चित्र 2.2

पथ  $A_2$  का संबंध कल्याण धारणा से है जो गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग की धीमी वृद्धि को दर्शाता है। यह पथ समय  $T_2$  से पथ  $A_1$  से पीछे रहता है। पथ  $A_3$  मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति से संबंधित है। आरंभ में गरीबों में उपभोग के मूल न्यूनतम वर्तमान स्तर को प्राप्त करने को उच्च प्राथमिकता दी जाती है जो समय  $T_3$  तक कल्याण तथा GNP प्रति व्यक्ति GNP के उपभोग स्तरों से कम हो सकता है। जब एक दीर्घ अवधि में गरीबों की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तथा उनकी उत्पादकता तथा आय के स्तरों में वृद्धि हो जाती है तो समय  $T_3$  से आगे आर्थिक वृद्धि तेजी से होने लगती है। पथ  $A_3$  पहले पथ  $A_2$  को B बिन्दु पर पीछे छोड़ देता है तथा बाद में C बिन्दु पर पथ  $A_1$  को। इस प्रकार मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति GNP प्रति व्यक्ति GNP और कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीति से बेहतर है।

## 2.6 मानव विकास सूचक एवं आर्थिक विकास

अर्थशास्त्रियों ने एक, दो अथवा अधिक संकेतकों को लेकर मानव विकास के सम्मिश्र सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है। अब मौरिस द्वारा विकसित जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विकसित मानव विकास सूचक (HDI) का अध्ययन करेंगे।

### 1.जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक

**मौरिस डी. मौरिस** ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता तथा 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है। मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को मापता है न कि आगतों को, जैसे आय। प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात् इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में गेबन की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दतम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनाम में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन संभव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। उसकी उच्चतम सीमा पुरुषों में तथा महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में, 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बनाया गया। **मौरिस** ने इसके सहसंबंध निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं :

(N= 150)	शिशु मृत्युदर	जीवन संभव्यता
एक वर्ष की आयु में जीवन की संभव्यता	0.919	0.897

एक वर्ष की आयु में जीवन संभव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध का गुणांक उच्च डिग्री तथा ऋणात्मक है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा तथा शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात् शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा तथा जीवन संभव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक सह-संबंध दर्शाता है अर्थात् शिक्षा के साथ-साथ जीवन संभव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युता जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं और यही बात शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की संभाव्यता को व्यक्त करता है :

देश	PQLI			औसत वार्षिक GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर %
	1950	1960	1970	
भारत	14	30	40	1.8
श्रीलंका	65	75	80	1.9
इटली	80	87	92	5.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	89	91	93	2.4

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत जिसे मोरिस 'बास्केट केस' कहता है, अपनी GNP प्रति व्यक्ति 1.8 की धीमी वृद्धि के बावजूद 1950 से 1970 तक की दो दशकों की अवधि में इसके PQLI में 14 से 40 तक की धीमी, परन्तु कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उसी अवधि के दौरान श्रीलंका का PQLI भारत से कहीं अधिक था, हालांकि इसकी औसत GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर (1.9%) लगभग भारत में बराबर रही। अमेरिका तथा इटली दोनों विकसित देशों का PQLI काफी ऊंचा था। परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति GNP दर (5%) अमेरिका (2.4%) से लगभग दुगुनी थी। इस संदर्भ में मोरिस ने देखा कि प्रति व्यक्ति GNP दर तथा PQLI के बीच कोई स्वतः तालमेल नहीं है। वास्तव में सामाजिक संबंधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, पोषण संबंधी दर्जा, लोगों का स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पारिवारिक वातावरण, किसी समाज के PQLI को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च PQLI को बनाने तथा बनाए रखने में सहायक संस्थागत प्रबंध के निर्माण में बहुत समय लग जाता है।

**इसकी सीमाएं :-** मोरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता। इसी प्रकार यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है।

**मॉरिस** द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन चरों को मनगढ़ंत भार देने के कारण मोरिस की आलोचना हुई। प्रो. मायर के अनुसार PQLI द्वारा लिए गए गैर-आय वाले घटक महत्वपूर्ण हैं परन्तु उतने ही महत्वपूर्ण समग्र गरीबी सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन के वितरण, संवेदनशील तरीके, आय तथा उपभोग के आंकड़े भी होते हैं।

इन सीमाओं के बावजूद PQLI अल्पविकसित देशों के विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता अथवा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां • तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे PQLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी बढ़े। 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम UNDP) अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट को मानव विकास सूचक (HDI) के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। HDI तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है। जीवन सभाव्यता, व्यस्क शिक्षा तथा स्कूली वर्ष। इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। अतः HDI तीन आधारभूत पहलुओं में

उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है। जिसमें एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर सम्मिलित है। किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है।

1. **दीर्घायु** - इसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है। जो कि 25 वर्ष से 85 वर्ष के बीच होती है।
2. **शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति**- जिसे व्यस्क शिक्षा (दो तिहाई भार) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है। उदाहरणार्थ, व्यस्क शिक्षा : 0% से 100% तथा दाखिलों का मिश्रित अनुपात : 0 % से 100%।
3. **जीवन स्तर**- जिसे क्रय शक्ति समता (purchasing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) द्वारा मापा जाता है।

HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्ति सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है। इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है। प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है : 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर के आधार पर HDI एक दूसरे के संबंध में विभिन्न देशों के क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है। जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्नस्तर के मानव विकास तथा 0.5 से 0.8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

मानव विकास रिपोर्ट 1996 में 174 विकसित एवं विकासशील देशों से सम्बन्धित वर्ष 1993 की वास्तविक प्रति व्यक्ति के क्रम में HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं। जिन 174 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 57 उच्च विकास वर्ग (0.8 से 0.95) में थे। 69 मध्यम वर्ग (0.5 से 0.79) में तथा 48 निम्न वर्ग (0.48 से 0.2) में थे। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान HDI में उच्च वर्ग के 26 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 57 पर रूसी संघ था। 26 विकासशील देशों में हांगकांग, साइप्रस, बारबाडोस प्रथम तीन क्रम में थे। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांश देशों सहित 16 विकसित तथा 53 विकासशील देश थे। इस वर्ग में ब्राजील सबसे आगे 58वें क्रम पर रहा। श्रीलंका 89वें क्रम पर तथा चीन 108वें क्रम पर रहा। निम्न वर्ग में 48 विकासशील देश थे जिनमें सबसे ऊपर कैमरून, केन्या तथा घाना थे। पाकिस्तान का क्रम 134 तथा भारत का 135 था जबकि बांग्लादेश 143 तथा नेपाल 151वें क्रम पर रहे, जैसा कि तालिका 2.1 में दर्शाया गया है। एक धनात्मक आंकड़ा यह बताता है कि वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम से HDI क्रम ऊंचा है। ऋणात्मक आंकड़ा इसके विपरीत बताता है।

तालिका 2.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 1993

देश HDI	मूल्य HDI	HDI क्रम (Rank)	वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम (PPP)	प्रति व्यक्ति क्रम घटा HDI में
<b>उच्च मानव विकास, विकसित देश</b>				
कनाडा	0.951	1	7	6
संयुक्त राज्य अमेरिका	0.940	2	2	0
जापान	0.938	3	9	6
सोवियत संघ	0.804	57	65	8
<b>विकासशील देश</b>				
हांगकांग	0.909	22	6	-16
साइप्रस	0.909	23	30	7
बारबाडोस	0.906	25	36	11
कोस्टारिका	0.884	31	54	23
मलेशिया	0.826	53	45	-9
मॉरिशस	0.825	54	33	-21
<b>मध्यम मानव विकास</b>				
ब्राजील	0.796	58	58	0
श्रीलंका	0.689	89	96	8
मिश्र	0.611	106	76	-30
चीन	0.609	108	110	3
वियतनाम	0.540	121	147	27
<b>निम्न मानव विकास</b>				
कैमरून	0.482	127	114	-12
केन्या	0.473	128	136	9
घाना	0.467	129	124	-4
पाकिस्तान	0.442	134	118	-15
भारत	0.436	135	141	7
नेपाल	0.332	151	149	-2
भूटान	0.307	159	157	-2

HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न हैं। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI क्रम से ऊंचा है उनकी उच्च आय के लोगों का अधिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता है। ऐसे 21 देश थे जिनका GDP क्रम उनके HDI क्रम से 20 स्थान ऊंचा था। इनमें मॉरिशस (-21) तथा मिश्र (-30) पर थे। ऐसे देश जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से अधिक है, यह दर्शाते हैं कि उन्होंने अपनी आय को प्रभावी ढंग से अपने लोगों का जीवन स्तर सुधारने में प्रयोग किया है। ऐसे 16 देश थे जिनका भ्रस क्रम उनके लकट क्रम से

ऊंचा था। इसमें से कोस्टारिका (23) तथा वियतनाम (27) थे। इस प्रकार HDI यह दर्शाता है कि कई देशों के प्रति व्यक्ति GDP स्तर समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु GDP प्रति व्यक्ति स्तर भिन्न हो सकते हैं।

HDI हमें विकास की प्रगति के बारे में बताता है। मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि निम्न मानव विकास वाले देशों को मानव विकास की उच्च श्रेणी तक पहुंचने में 200 से भी अधिक वर्ष लग सकते हैं। चीन इस स्तर तक 25 वर्षों में पहुंच जाएगा, जबकि भारत को अभी 100 वर्ष लगेंगे। परन्तु ये सब तो मात्र कच्चे अनुमान हैं।

### इसकी सीमाएं :-

HDI की भी अपनी सीमाएं हैं। प्रथम, केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं। शिशु मृत्युदर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं। द्वितीय, HDI निरपेक्ष (absolute) की बजाय सापेक्ष भू मानव विकास को मापता है। यदि सभी देश समान भारत दर से अपने स्क् मूल्य को सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा। तृतीय, किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊंची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है।

## 2.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

### रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- .....अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। (वाणिकवादी, समाजवादी, भाग्यावादी)
- राष्ट्रीय आय सदैव .....मापी जाती है। (मुद्रा में, कीमत में, पूर्ति में)
- सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक .....शामिल किये जाते हैं। (जी.एन.पी., जी.डी.पी., एन.एन.पी.)
- जब पूँजी मूल्य हास को .....में से घटा दिया जाता है तो एन0एन0पी0 प्राप्त होती है। (जी.एन.पी., जी.डी.पी., एन.एन.पी.)
- .....देशों में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है। (अल्पविकसित, विकसित, सभी)
- अल्पविकसित देशों में अधिकतर लोग ..... होते हैं। (अशिक्षित, शिक्षित, कुशल)
- राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से राष्ट्र की परिभाषा .....सीमाओं को पार कर जाती है। (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक)
- राष्ट्रीय आय में ..... क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती। (वैध, अवैध, हानियों)

### बहुविकल्पीय प्रश्न

- जी.एन.पी. में क्या सम्मिलित नहीं होता  
A. मूल्य हास B. चालू वर्ष का अंतिम उत्पादन

- C. हस्तांतरण भुगतान D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
10. जी.एन.पी. में सम्मिलित होता है।  
A. मध्यवर्ती उत्पादन B. अन्तिम उत्पादन  
C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
11. 'बड़े धक्के विकास सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया।  
A. लेविस ने B. लीबिंस्टीन  
C. रोडान ने D. सभी ने
12. 'संतुलित विकास' का सिद्धांत किसने दिया  
A. नर्से ने B. डोमर ने  
C. रोस्टोव ने D. सभी ने
13. क्रांतिक न्यूनतम प्रयास सिद्धांत का सुझाव किसने दिया?  
A. हर्षमैन B. रोस्टोव  
C. लेबेंसटीन D. मार्शल
14. विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किसने किया?  
A. मौरिस डी मौरिस B. हारिस डी हारिस  
C. एल्सर्वथ D. उपर्युक्त सभी
15. हर्षमैन ने कौन सा सिद्धांत दिया?  
A. संतुलित विकास B. बड़ा धक्का  
C. छोटा धक्का D. असंतुलित विकास

## 2.8 सारांश

आर्थिक विकास का उपयुक्त मापदण्ड क्या हो? यह समस्या आज भी अपने में विवादग्रस्त बनी हुई है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक न होगा कि आर्थिक विकास के अभिसूचक के रूप में मुख्य विवाद 'राष्ट्रीय आय' व 'प्रति व्यक्ति आय' के बीच है। चूंकि इन दोनों मापदण्डों के अपने-अपने गुण व दोष हैं इसलिए सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिए किसी एक ही मापदण्ड का चुनाव करना न तो सम्भव है और न उचित ही है। हमारी राय में विकसित देशों के आर्थिक विकास का एक अभिसूचक राष्ट्रीय आय में वृद्धि माना जाना चाहिये और अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की कसौटी हेतु प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को स्वीकार किया जा सकता है। वैसे अधिकांश अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय मापदण्ड का अधिक समर्थन करते हैं।

## 2.9 शब्दावली

- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)**- एक अर्थव्यवस्था में अंतिम रूप से उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का समस्त मौद्रिक मुल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

- **आर्थिक कल्याण-** आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा के माप दण्ड से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP):-** एक वर्ष की अवधि में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का किसी देश में उत्पादन होता है उसका बाजार कीमतों पर मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।
- **मानवीय पूँजी निर्माण-** भारतीय पूँजी निर्माण का सम्बन्ध उस विनियोग से है जो धन के उत्पादकों के रूप में लोगों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया जाता है।

---

## 2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वाणिज्यकवादी 2. मुद्रा में 3 जी0एन0पी0, 4. जी0एन0पी0 5. अल्पविकसित

बहुविकल्पीय प्रश्न

9. C, 10. B, 11.C, 12. A 13. C, 14. A, 15. D

---

## 2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

---

- सिन्हा वी.सी. (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई0सी0 (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया", एस. चन्द्र नई दिल्ली।

---

## 2.12 सहायक अध्ययन सामग्री

---

- B.Okun and R.W. Richanison, Studies in Economic Development,.
- Measuring the Conditions of the World's Poor : The Physical Quality of Life Index 1979.
- Norman L. Hicks and Paul P. Streeten, "Indicators of Development : The Search for a Basic Needs Yardstick," World Development. Vol. 7 1979.
- N.S. Buchanan and E. Ellis, Approaches of Economic Development,.
- C.H. Fei. G. Ranis and F. Stewart, basic Needs : A Framework for Analysis, 1979
- Everett E. Hagen A farmeswork forAnalysing Economic and Polical Development in Rebert E Asher (ed) Development of Emerging countries Donald H. Niewiaroski - the level of Living of Nations.

- Irma Adelman Society, Politics and Economic Development.
- Morris D. Morris Measuring the condition of the world's poor. The Physical quality of Life Index.
- F. H. Harbimsan and others - Quantitative Analysis of Modernisation and development

---

### 2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित कीजिए। इसका मापन कैसे किया जा सकता है?
2. आर्थिक विकास के अभिसूचक स्पष्ट कीजिए। आर्थिक और सामाजिक अभिसूचकों में अंतर कीजिए।
3. आर्थिक विकास को परिभाषित कीजिए। आर्थिक विकास के विभिन्न मापों का विवेचना कीजिए। इनमें से आप किसको सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं। और क्यों?
4. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि कहां तक आर्थिक विकास का संतोषजनक माप प्रस्तुत करती है।
5. प्रति व्यक्ति आय द्वारा मापी गई आर्थिक संवृद्धि से समाज के कल्याण में वृद्धि नहीं होती है।' व्याख्या कीजिए।

---

## इकाई 3 - अल्पविकसित देश - आशय एवं विशेषताएँ (Underdeveloped Country- Meaning and Characteristics)

---

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था
- 3.4 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषतायें
- 3.5 विकसित तथा अल्पविकसित देश में अन्तर
- 3.6 भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- 3.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 3.8 सारांश
- 3.9 शब्दावली
- 3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

मोटे तौर पर विश्व के देशों को दो भागों में बांटा जाता है - विकसित तथा अल्पविकसित अथवा धनी तथा निर्धन राष्ट्र। निर्धन देशों को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे निर्धन, पिछड़े, अल्प विकसित, अविकसित और विकासशील देश। जैसे तो यह सभी शब्द पर्यायवाची है परन्तु इनके प्रयोग में मतभेद रहा है। उदाहरण के तौर पर मायर एवं बाल्डविन और बारबरा वार्ड ने 'अल्प-विकसित' के बजाय 'निर्धन' शब्द को वारीयता दी है क्योंकि उनके मतानुसार अल्प विकसित शब्द अल्प विकास के अत्यधिक असमान स्वरों (स्तरों) को एक साथ जोड़ देता है। अल्पविकसित देशों के लिए 'पिछड़ा' शब्द भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि पिछड़ा और निर्धन, यह दोनों शब्द इन देशों के लोगों की भावना एवं आत्म गौरव को ठेस पहुंचाते हैं। प्रो. गुन्नार मिर्डल ने इसी कारण एक अधिक गतिशील एवं व्यापक शब्द 'अल्प विकसित' का समर्थन किया है हमारी राय में यह अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह शब्द विकास की दो चरम सीमाओं-अविकसित और विकसित – के मध्य में स्थित होने के कारण इन देशों को अगले छोर पर पहुंचने के लिये प्रेरित करता है।

यहाँ आपको यह बताना आवश्यक है कि हाल के वर्षों में ऐसे देशों के लिये तुलनात्मक रूप में एक अधिक सम्मानजनक शब्द 'विकासशील देश' का प्रयोग होने लगा है। भले ही यह शब्द कर्णप्रिय है परन्तु सही अर्थों में यह शब्द एक अवरूढ़ अर्थव्यवस्था के बजाय विकास की ओर पलायन करती हुई अर्थव्यवस्था का प्रतीक है। उदाहरणार्थ, एक अल्प विकसित देश में जन्म व मृत्युदर दोनों ऊंची होती हैं जबकि विकासशील देश में ऊंची जन्म दर के बावजूद मृत्युदर घटने लगती है। हाल ही में इन देशों के लिये एक नया शब्द 'तीसरा विश्व' प्रयुक्त होने लगा है। बहरहाल इस विवाद को यहीं विराम देते हुए हम इन सभी शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में करेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ अल्पविकसित अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं।
- ✓ विकासशील अर्थव्यवस्था से संबंधित विभिन्न परिभाषायें क्या हैं।
- ✓ अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें क्या हैं।
- ✓ अल्पविकसित तथा विकसित अर्थव्यवस्था में प्रमुख अन्तर क्या है।
- ✓ क्या भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था है।

### 3.3 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था

अल्प विकास या अल्प विकसित देश को परिभाषित करना काफी कठिन है। प्रो. सिंगर का भी मत है कि **“एक अल्प विकसित देश 'जिराफ' की भांति है जिसका वर्णन करना कठिन है। लेकिन जब हम इसे देखते हैं तो समझ जाते हैं।”** जैसे अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के अनेक मापदण्ड प्रस्तुत किये गए हैं जैसे

निर्धनता, अज्ञानता, निम्न प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय का असमान वितरण, जनसंख्या भूमि अनुपात, प्रशासनिक अयोग्यता, सामाजिक बाधाएँ इत्यादि।

**प्रो. डब्ल्यू. डब्ल्यू. सिंगर** - का मत है कि अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास, समय को बर्बाद करना है। फिर भी किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक होगा कि कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन कर लिया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विज्ञप्ति के अनुसार “अल्प विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है।”

प्रो. मेकलियोड के मतानुसार “एक अल्प विकसित देश अथवा क्षेत्र वह है जिसमें उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में उद्यम एवं पूँजी का अपेक्षाकृत कम अनुपात है परन्तु जहां विकास सम्भाव्यताएँ विद्यमान हैं और अतिरिक्त पूँजी को लाभजनक कार्यों में विनियोजित किया जा सकता है।”

प्रो. जे. आर. हिक्स के शब्दों में “एक अल्प विकसित देश वह देश है जिसमें प्रौद्योगिकीय और मौद्रिक साधनों की मात्रा, उत्पादन एवं बचत की वास्तविक मात्रा की भांति कम होती है, जिसके फलस्वरूप प्रति श्रमिक को औसत पुरस्कार उस राशि से बहुत कम मिलता है जो प्राविधिक विकास की अवस्था में उसे प्राप्त हो पाता है।”

यह परिभाषा केवल प्राविधिक घटक पर ध्यान देने के कारण एकांगी मानी जाती है। प्राविधिक घटक के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक, प्राकृतिक, सामाजिक घटकों को दृष्टि में नहीं रखा गया है।

प्रो. ऑस्कर लैंज की दृष्टि में “एक अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूँजीगत वस्तुओं की उपलब्ध मात्रा देश की कुल श्रम शक्ति को आधुनिक तकनीक के आधार पर उपयोग करने के लिये पर्याप्त नहीं है।”

ऑस्कर लैंज एवं नर्कसे के विचार मेकलियोड की भांति ही त्रुटिपूर्ण है। आर्थिक विकास के लिए पूँजी एक आवश्यक शर्त है परन्तु एक मात्र नहीं। परिभाषा में अन्य आवश्यक तत्वों की ओर संकेत नहीं किया गया है।

जैकब वाईनर के अनुसार “अल्प विकसित देश वह देश है जिसमें अधिक पूँजी अथवा अधिक श्रम-शक्ति अथवा अधिक उपलब्ध साधनों अथवा इन सबको उपयोग करने की पर्याप्त संभावनाएँ हों, जिससे कि वर्तमान जनसंख्या के रहन सहन के स्तर को ऊंचा उठाया जा सके, और यदि प्रति व्यक्ति आय पहले से ही काफी अधिक है तो रहन सहन के स्तर को कम किये बिना, अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।”

यूजीन स्टैले के विचारानुसार “अल्प विकसित देश वह देश है जहां जनसाधारण में दरिद्रता व्याप्त है जो अत्यन्त स्थायी व पुरातन है, जो किसी अस्थायी दुर्भाग्य का परिणाम नहीं है, बल्कि उत्पादन के घिसे पिटे परम्परागत तरीकों और अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था के कारण हैं। जिसका अभिप्राय यह है कि

दरिद्रता केवल प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण नहीं होती है और इसे अन्य देशों में श्रेष्ठता के आधार पर परखे हुए तरीकों द्वारा सम्भवतः कम किया जा सकता है।”

भारतीय योजना आयोग के अनुसार “एक अल्प विकसित देश वह देश है जहां पर एक ओर अप्रयुक्त मानवीय शक्ति और दूसरी ओर अवशोषित प्राकृतिक साधनों का कम या अधिक मात्रा में सह अस्तित्व का पाया जाना है।”

सामान्यतया एक अल्प विकसित देश वह है जहां जनसंख्या की वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक हो, पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक साधन उपलब्ध हों, परन्तु उनका पूर्णरूपेण विदोहन न हो पाने के कारण उत्पादकता व आय का स्तर नीचा हो। सरल शब्दों में, वह देश अल्प विकसित देश माना जाएगा जिसका आर्थिक विकास सम्भव तो हो, किन्तु अपूर्ण हो।

### 3.4 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषतायें

एक विकासशील या अल्प विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में कौन सी आधारभूत विशेषताएं पायी जाती हैं, इस सम्बन्ध में सर्वमान्य विशेषताएं बताना कठिन है। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न विकासशील या अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भिन्न भिन्न विशेषताएं पायी जाती हैं। मायर एवं बाल्डबिन ने अपनी पुस्तक ‘Economic Development’ में अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के छः आधारभूत लक्षण बताये हैं :

1. प्राथमिक उत्पादन की प्रधानता
2. जनसंख्या दबाव,
3. अल्प विकसित प्राकृतिक साधन,
4. जनसंख्या का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होना
5. पूँजी का अभाव
6. विदेशी व्यापार की उन्मुखता।

हार्वे लिबिन्सटीन ने अल्प विकसित देशों की चार विशेषताएं बतायी हैं।

1. आर्थिक,
2. जनसंख्या सम्बन्धी,
3. प्राविधिक तथा
4. सांस्कृतिक एवं राजनीतिक।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमने एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को छः भागों में बांटा है।

1. आर्थिक विशेषताएं,
2. जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएं,
3. तकनीकी विशेषताएं,
4. सामाजिक विशेषताएं,

5. राजनीतिक विशेषताएं एवं
6. अन्य विशेषताएं।

## I. आर्थिक विशेषताएं

1. **कृषि की प्रधानता** - अल्प विकसित देशों की सबसे प्रमुख विशेषता अधिकांश जनता का कृषि में लगे रहना है। यहां कृषि से अर्थ कृषि, बागवानी, जंगल कटाई, पशुपालन व मछली पालन आदि से है। भारत, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, आदि देशों को अल्प विकसित माना जाता है, क्योंकि भारत की 51.2 प्रतिशत जनसंख्या, इण्डोनेशिया की 57 प्रतिशत जनसंख्या एवं पाकिस्तान की 56 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी है, जबकि विकसित देश फ्रांस, कनाडा, अमरीका एवं ब्रिटेन की कुल जनसंख्या का प्रतिशत बहुत कम है, जैसे फ्रांस की 5 प्रतिशत, कनाडा की 3 प्रतिशत, अमरीका की 1 प्रतिशत व ब्रिटेन की 2 प्रतिशत। यही कारण है कि अल्प विकसित देशों की राष्ट्रीय आय, निर्यात व्यापार व उद्योग कृषि पर आधारित होते हैं।
2. **प्राकृतिक साधनों का अल्प उपयोग** - अल्प विकसित देशों में प्राकृतिक साधनों के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के बाद भी उनका उपयोग या तो होता ही नहीं है और यदि होता भी है तो बहुत ही कम मात्रा में। कभी-कभी तो अल्प विकसित देशों को इस बात का पता ही नहीं होता कि उनके देश में प्राकृतिक साधन उपलब्ध है।
3. **प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर** - इन देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर निम्न होता है। World Development Report, 2009 के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय 950 डॉलर है, जबकि भारत की तुलना में प्रति व्यक्ति आय अमेरिका में 46040 डॉलर, जापान में 37670 डॉलर तथा यू0 के0 में 42740 डॉलर है।
4. **पूँजी निर्माण का निम्न स्तर** - यहां पूँजी निर्माण का स्तर निम्न है। अल्प विकसित देशों में घरेलू निवेश की दर राष्ट्रीय आय की 5 से 10 प्रतिशत तक होती है, जबकि विकसित देशों में यह 20 से 25 प्रतिशत तक की होती है। वर्तमान में भारत में पूँजी निर्माण की दर 39.1 प्रतिशत है।
5. **सम्पत्ति एवं आय वितरण में असमानता** - अल्प विकसित देशों में राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं आय का बहुत बड़ा भाग कुछ ही व्यक्तियों के अधिकार में होता है, जबकि जनसंख्या के बड़े भाग को सम्पत्ति एवं आय का छोटा सा हिस्सा मिल पाता है।
6. **औद्योगिक पिछड़ापन** - अल्प विकसित देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां आधारभूत उद्योगों का अभाव होता है। यहां कुछ उद्योग जो उपभोक्ता वस्तु या कृषि वस्तु बनाते हैं उनका ही विकास हो पाता है। औद्योगिक पिछड़ेपन की पुष्टि इस अनुमान से हो जाती है कि 74 प्रतिशत जनसंख्या वाले देश विश्व औद्योगिक उत्पादन में केवल 20 प्रतिशत का ही योगदान देते हैं शेष 80 प्रतिशत उत्पादन विकसित देशों में ही होता है।
7. **अल्प रोजगार व बेरोजगारी** - इन अल्प विकसित देशों में अल्प रोजगार के साथ-साथ बेरोजगारी भी होती है। जिन लोगों को काम मिला हुआ होता भी है उनको भी पूरे समय के लिए काम नहीं मिलता है।

- इन देशों में कुछ लोग सदा ही बेरोजगार बने रहते हैं। उनके लिए समाज के पास कोई कार्य नहीं होता है। इसका मुख्य कारण औद्योगीकरण की कमी एवं पूँजी निवेश का अभाव है।
8. **बैंकिंग सुविधाओं का अभाव** - अल्प विकसित देशों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो बैंकिंग सुविधाएं ही कम होती हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि अल्प विकसित देशों में यह प्रतिशत 60 तक होता है।
  9. **आर्थिक दुष्चक्र** - अल्प विकसित देशों में आर्थिक दुष्चक्रों की प्रधानता रहती है। वहां पूँजी की कमी से उत्पादन कम होता है। इससे वास्तविक आय कम होती है। अतः वस्तुओं की मांग कम रहती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि साधनों का उचित विकास नहीं हो पाता है इस प्रकार यह कुचक्र चलता रहता है और इससे अर्थव्यवस्था निरन्तर प्रभावित होती रहती है।
  10. **विदेशी व्यापार में अस्थिरता** - अल्प विकसित देशों के कच्चे माल का निर्यात व पक्के माल का आयात किया जाता है। कच्चे माल की वस्तुओं के मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में स्थिर नहीं रहते हैं। इससे विदेशी मुद्रा अर्जन में घटा बढ़ी होती रहती है जिससे देश की अर्थव्यवस्था भी स्थिर नहीं रहती है।
  11. **ऊँची जन्म व मृत्यु दरें** - अल्प विकसित देशों में जन्म दर व मृत्यु दर अपेक्षाकृत ऊँची रहती है। एक अनुमान के अनुसार विकसित देशों में जन्म दर व मृत्यु दर क्रमशः 15 से 20 प्रति हजार व 9 से 10 प्रति हजार होती है, जबकि अल्प विकसित देशों में यह दरें क्रमशः 30 से 40 प्रति हजार व 15 से 30 प्रति हजार तक होती है। अल्प विकसित देशों में ऊँची जन्म दर के कारण हैं - सामाजिक धारणा एवं विश्वास, पारिवारिक मान्यता, बाल विवाह, विवाह की अनिवार्यता, भाग्यवादिता, मनोरंजन सुविधाओं का अभाव, निम्न आय व निम्न जीवन-स्तर, निरोधक सुविधाओं का अभाव आदि। इसी प्रकार यहां ऊँची मृत्युदर के कारण हैं - अकाल व महामारी, लोक स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, स्त्री शिक्षा का अभाव, पौष्टिक आहार का अभाव आदि। भारत में वर्तमान में जन्म दर 23.1 व मृत्युदर 7.4 प्रति हजार है।
  12. **ग्रामीण जनसंख्या की अधिकता** - अल्प विकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में व शेष शहरों में रहती है।
  13. **जनसंख्या का आधिक्य** - अल्प विकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, जबकि विकसित देशों में उतना नहीं होता है। साथ ही अल्प विकसित देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है। अतः यहां जनसंख्या का आकार व घनत्व अधिक होता है।
  14. **आश्रितों की अधिकता** - अल्प विकसित देशों में एक परिवार में आश्रितों की मात्रा अधिक होती है। इसका अर्थ यह है कि इन देशों में कमाने वाले कम होते हैं, जबकि खाने वाले अधिका। इसका कारण यह है कि यहां बच्चों व बूढ़ों की संख्या विकसित देशों की तुलना में अधिक होती है।
  15. **अकुशल जनशक्ति की अधिकता** - अल्प विकसित देशों में अकुशल जनशक्ति की अधिकता रहती है। इसके कारण शिक्षा व प्रशिक्षण का अभाव, प्रति व्यक्ति निम्न आय, संयुक्त परिवार प्रणाली, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, आत्मसन्तोष की भावना आदि है।
  16. **निम्न प्रत्याशित आयु** - विकसित देशों की तुलना में अल्प विकसित देशों की प्रत्याशित आयु (Life

expectancy) कम होती है। विकसित देशों में प्रत्याशित आयु औसतन 74 से 82 वर्ष होती है, जैसे जापान में 81 वर्ष, स्विटजरलैण्ड में 80 स्वीडन में 79 वर्ष, अमरीका में 77 वर्ष, ब्रिटेन में 77 वर्ष फ्रांस में 79 वर्ष। अल्प विकसित देशों में यह 40 से 60 वर्ष ही है। भारत में प्रत्याशित आयु 63.5 वर्ष है।

## II. तकनीकी विशेषताएं

1. **पुरानी उत्पादन विधि** - अल्प विकसित देशों में वही पुरानी उत्पादन विधि ही पायी जाती है जिसे उन्नत देश छोड़ चुके हैं। उदाहरण के लिए अल्प विकसित देशों में कृषि उत्पादन पुराने तरीके से ही होता है, जबकि उन्नत देश ट्रैक्टर व आधुनिक मशीनों का प्रयोग करते हैं। कृषि के क्षेत्र में ही नहीं, लगभग सभी क्षेत्रों में अल्प विकसित देशों में पुरानी उत्पादन विधि ही पायी जाती है।
2. **तकनीकी शिक्षा का अभाव** - अल्प विकसित देशों में तकनीकी शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव होता है तथा उनके द्वारा अनुसंधान व शोध कार्यों पर बहुत कम व्यय किया जाता है। इसके कारण अशिक्षा, श्रम की गतिशीलता का अभाव, परम्परावादी दृष्टिकोण तथा औद्योगिकरण की कमी है।
3. **अपर्याप्त संचार एवं आवागमन सुविधाएं** - अल्प विकसित देशों में संचार एवं आवागमन के साधन अपर्याप्त होते हैं जिससे व्यापार सीमित मात्रा में ही होता है तथा श्रमिकों में गतिशीलता की कमी पायी जाती है।
4. **कुशल श्रमिकों का अभाव** - श्रमिकों की कुशलता बढ़ाने के लिए अल्प विकसित देशों में प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव रहता है। इससे देश में कुशल श्रमिक कम मात्रा में ही मिल पाते हैं।

## III. सामाजिक विशेषताएं

1. **साक्षरता की कमी** - अल्प विकसित देशों में साक्षरता की कमी पायी जाती है। दूसरे शब्दों में, इन देशों में व्यापक निरक्षरता होती है। जिसका प्रतिशत 70 या इससे भी ऊपर होता है। विकसित देशों में निरक्षरता का प्रतिशत 5 से भी कम होता है। इस निरक्षरता के कारण ही यहां के निवासी रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी एवं भाग्यवादी होते हैं जो नवीन परिवर्तनों का धर्म के नाम पर विरोध करते हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता की दर 64.3 प्रतिशत है।
2. **जातिवाद** - इन देशों में वर्ग भेद व जातिवाद की भावना व्याप्त होती है। जिसके परिणामस्वरूप यहां के व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति भिन्न भिन्न होती है तथा प्रत्येक जाति की अपनी परम्पराएं एवं रीति रिवाज होती हैं।
3. **रीति रिवाज की प्रधानता** - अल्प विकसित देशों में रीति रिवाज की प्रधानता होती है जिनको प्रत्येक व्यक्ति आंखें मूंदकर मानता है और समय समय पर उन्हीं रिवाजों के अनुसार कार्य करता है जिसका परिणाम यह होता है कि फिजूलखर्ची को बढ़ावा मिलता है जिससे निवासी निर्धन व ऋणग्रस्त बने रहते हैं।
4. **स्त्रियों को निम्न स्थान** - अल्प विकसित देशों में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं होती है, उनका समाज में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता है। उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। उनमें साक्षरता भी कम

होती है। वे अपना पेट भरने के लिए पुरुषों पर निर्भर रहती हैं।

#### IV. राजनीतिक विशेषताएं

1. **अधिकारों के प्रति ज्ञान न होना** - अल्प विकसित देशों में जनता अपने अधिकारों के प्रति ज्ञानवान नहीं होती है। अतः उसमें अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं पायी जाती है। इसका कारण यह है कि यहां के लोग अपनी दरिद्रता को ईश्वरीय देन मानते हैं।
2. **दुर्बल राष्ट्र** - अल्प विकसित देश विकसित देशों के मुकाबले दुर्बल होते हैं और ऐसे देशों पर सदा ही विदेशी राष्ट्रों का आधिपत्य किसी न किसी रूप में बना रहता है।
3. **आधुनिक सेना का अभाव** - ऐसे देशों के पास आधुनिक अस्त्रों से लैस सेना का अभाव होता है।
4. **प्रशासनिक अकुशलता** - इन राष्ट्रों में प्रशासनिक कुशलता एवं ईमानदारी का अभाव होता है। राजनीतिक नेता भी इस सम्बन्ध में कोई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते हैं। अतः यहाँ कालाबाजारी, भ्रष्टाचार व बेईमानी विस्तृत रूप में पायी जाती है।

#### V. अन्य विशेषताएं

1. **दोषपूर्ण वित्तीय संगठन** - अल्प विकसित देशों में वित्तीय संगठन दोषपूर्ण होता है। इन देशों में परोक्ष कर अधिक लगाये जाते हैं। मुद्रा बाजार असंगठित होता है। बैंकिंग व्यवस्था प्रभावशाली नहीं होती है। सरकारी आय के साधन भी सीमित होते हैं।
2. **स्थिर व्यावसायिक ढांचा** - इन देशों में व्यावसायिक ढांचा स्थिर रहता है। इसका अर्थ यह है कि इन देशों ने व्यवसायिक ढांचा एक जैसा रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता है।

### 3.5 विकसित तथा अल्प विकसित देश में अंतर

डॉ. स्टीफैन ने इस दृष्टि से एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को ‘अनार्थिक संस्कृति’ का नाम दिया है। उनका मत है कि **“परम्परागत सामाजिक मनोवृत्ति मानवी साधनों के पूर्ण उपयोग को कुंठित करती है जिसके फलस्वरूप एक रूढ़िवादी मानव समाज भौतिक पर्यावरण में बदलाव लाने और उपभोग में अतिरिक्त वृद्धि के प्रति उदासीन हो जाता है।”**

क्रम संख्या	विकास के अंग	विकसित देश	अल्प- विकसित देश
1.	आर्थिक स्थिति	उच्च प्रति व्यक्ति GNP, औसत 25000 डॉलर।	निम्न प्रति-व्यक्ति GNP, औसतन 1100 डॉलर।
2.	कृषि	जसंख्या का लगभग 2.5 प्रतिशत कृषि कार्य में संलग्न।	जनसंख्या का औसतन 50-65 प्रतिशत कृषि में लगा होना।
3.	उद्योग	बहुत स्तरीय उत्पादन व्यवस्था	लघु स्तरीय उत्पादन ढांचा।
4.	प्राविधिक	उन्नत प्राविधिक-स्तर विशेष	तकनीकी द्वैतवाद, मुख्यतया श्रम प्रधान

	स्तर	कर पूँजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग किया जाना।	तकनीकी का प्रयोग किया जाना।
5.	जनसंख्या	सन्तुलित जनसंख्या कार्यशील जनसंख्या का अधिक प्रतिशत	जन्म-दर ऊंची व मृत्युदर का कम होना अकार्यशील जनसंख्या का अधिक प्रतिशत
6.	रोजगार	लगभग पूर्ण रोजगार	व्यापक बेरोजगारी। संरचनात्मक एवं अदृश्य बेरोजगारी
7.	बचत निवेश	राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत तथा निवेश का उच्च स्तर	राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत तथा निवेश का नीचा स्तर।
8.	प्राकृतिक साधन	पर्याप्त प्राकृतिक साधन और उनका पूर्ण शोषण किया जाना	पर्याप्त प्राकृतिक साधन, परन्तु पूर्ण विदोहन सम्भव न होना।
9.	निर्यात	निर्यात पर कम निर्भरता।	निर्यात पर अधिक निर्भरता।
10.	पूँजी निर्माण	प्रति व्यक्ति ऊंचा पूँजी अनुपात	प्रति व्यक्ति कम पूँजी अनुपात।

यद्यपि उपरोक्त विवरण से विकसित और अल्प विकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था में अंतर स्वतः स्पष्ट तथा विद्यार्थियों की सुविधा हेतु हमने विभिन्न विकास अंगों के रूप में इन दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में अंतर का एक संक्षिप्त-सार प्रस्तुत किया है।

### 3.6 भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप

क्या भारत एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था है? अल्प विकसित देशों की सामान्य विशेषताओं के संदर्भ में अब हम भारत की आर्थिक स्थिति का अवलोकन करेंगे। भारत में प्रति व्यक्ति आय ;छह 460 डॉलर है जबकि विकसित देशों का औसत लगभग 27500 डॉलर है। जन संख्या की वृद्धि दर घटने के बावजूद हमारा देश निरन्तर जनाधिक्य की ओर बढ़ रहा है। पहले की तरह कृषि आज भी आजीविका का प्रमुख आधार है। पिछड़ा प्राविधिक स्तर, धीमा पूँजी- निर्माण और निम्न – उत्पादकता हमारे अल्प विकसित का प्रमाण हैं। आज सबसे बड़ी समस्या देश में चारो ओर फैली व्यापक बेरोजगारी की है। आजीविका का अभाव, आर्थिक विकास के बजाए पिछड़ेपन का प्रतीक है। देश में लगभग 26 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे हैं जिसमें से 10 प्रतिशत जनसंख्या अति निर्धन है। भारत संसार के सर्वाधिक ऋणी देशों में से एक है। 'विश्व बैंक रिपोर्ट' के अनुसार विदेशी ऋणों के मामले में भारत का स्थान 1970 में पहला, 1980 में छठा, 1990 में तीसरा, 1995 में छठा और 1999 में 10वां था। जरा सोचिए, हम किस विकास की बात कर रहे हैं? हां! विकास अवश्य हुआ है, पर केवल देश को दिशा-निर्देश देने वाले भ्रष्ट कर्णधारों का।

भारत के अल्प विकास का एक पुख्ता प्रमाण और भी है। 'विश्व बैंक' प्रतिवर्ष संसार के 133 प्रमुख देशों का प्रति व्यक्ति लच्छ के आधार पर उनके विकास की अवस्था का निर्धारण करता है। आय स्तर के आधार पर सभी देश तीन वर्गों में बांटे गये हैं – निम्न आय देश, मध्यम आय देश और उच्च आय देश। रिपोर्ट 2002 के अनुसार, भारत निम्न आय देशों में शामिल था और विकासक्रम में उसका 96वां स्थान था। अर्थात् कुल 133 देशों

में से 95 देश उससे अधिक धनी थे और केवल 37 देश उससे गरीब थे। विडम्बना तो यह है कि वर्ष 1995 में भारत का स्थान 113वां, 1990 में 111वां और 1983 में 123वां था। स्पष्ट है कि भारत तीन दशक पहले भी निम्न आय देश था और आज भी एक स्थायी सदस्य के रूप में उसी लक्ष्मण रेखा पर टिका हुआ है। जबकि उसकी बिरादरी के कई देश निम्न आय स्तर को लांघ कर मध्य आय क्रम में शामिल हो चुके हैं।

वर्ष 2000 में भारत की 26 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे थी। अंतर्राष्ट्रीय निर्धनता रेखा के अर्थ में, वर्ष 1999 में भारत की (i) 44 प्रतिशत जनसंख्या की प्रतिदिन आय 1 डॉलर से कम थी और (ii) 86 प्रतिशत जनसंख्या डॉलर से कम थी। 'क्रय शक्ति समता' के अर्थ में, वर्ष 2000 में भारत की प्रति व्यक्ति छछ 2390 डॉलर है जबकि विकासशील देशों का औसत 3890 डॉलर और उच्च आय देशों का औसत 27450 डॉलर है। भारत में वर्ष 1999 में 'शिशु मृत्युदर' 90 प्रति हजार थी। जबकि विकासशील देशों का औसत 85 और विकसित देशों का औसत 6 प्रति हजार था। **मात मृत्युदर** भारत में 440 प्रति लाख है। जबकि चीन में 95, श्रीलंका में 30, मलेशिया में 34, जापान में 18 और कनाडा में 6 है। भारत में वर्ष 1999 में **वयस्क निरक्षरता** 44 प्रतिशत थी जबकि चीन में 17, इथोपिया में 63, पाकिस्तान में 55 और विकसित देशों में शून्य प्रतिशत है।

मानव तथा लिंग विकास के सम्बन्ध में भारत की वैश्विक स्थिति इस प्रकार है। भारत का वर्ष 2001 में मानव विकास सूचकांक 0.571 था जबकि नार्वे का 0.939, चीन का 0.718 और बांग्लादेश का 0.470 था। भारत का लिंग विकास सूचकांक 0.533 था जबकि नार्वे का 0.937, चीन का 0.715 और बांग्लादेश का 0.309 था। वास्तव में, यह कुछ ऐसे मानदण्ड हैं जो भारत के अल्प विकसित देश की ओर संकेत करते हैं।

परन्तु इस तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। पिछले कुछ वर्षों से भारत विकास की स्थैतिक अवस्था से निकल कर प्रावैगिक अवस्था में प्रवेश कर चुका है। विकास प्रवृत्तियां जन्म ले रही हैं। एक तरफ उद्योगों में विविधता आई है तो दूसरी ओर कृषि में हरित क्रान्ति का आभास होने लगा है। बढ़ती हुई बचतें तथा निवेश वृद्धि, पूंजी निर्माण का संकेत है। खाद्यानों में आत्मनिर्भरता, प्राविधिक विकास, बृहत औद्योगिक क्षमता, सड़कों व रेलों के बिछाये गये जाल, अधः संरचना का विकास, अणु परीक्षण-1997 एवं 2002 के सफल उपग्रह प्रक्षेपण हमारे आर्थिक विकास एवं प्रगति के सक्षम प्रमाण हैं। 1990-2000 के दशक में भारत के GDP की विकास दर 6 प्रतिशत रही है। जो पूरे विश्व में केवल कुछ गिने चुने देश ही हासिल कर पाये हैं। इसी दशक में GDP का **विश्व औसत** 2.6 प्रतिशत, विकासशील देशों का 3.6 प्रतिशत और उच्च आय देशों का औसत 2.5 प्रतिशत रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत अल्प विकास की सीमाओं को लांघकर एक अग्रणी विकासशील देश के रूप में अगले उच्चतम पड़ाव के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

### 3.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

#### रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

- वर्ष 2000 में भारत की .....प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे थी।

(26, 27, 28)

- भारत में वर्ष 1999 में शिशु मृत्यु दर .....प्रति हजार थी।

- (90, 80, 100)
3. भारत में वर्ष .....में वयस्क निरक्षरता 44 प्रतिशत थी।  
(1999, 2000, 2001)
4. एक अल्पविकसित देश जिराफ की भाँति है जिसका .....करना कठिन है।  
(वर्णन, विस्तार, स्थिरता)
5. वर्तमान समय में भारत की पूँजी निर्माण की दर .....प्रतिशत है।  
(39.1, 40, 38. 2)
6. 6... .....देशों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव रहता है।  
(अल्पविकसित, विकसित, सभी देशों में)
7. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व.....होता है।  
(कम, अधिक, शून्य)
8. ....देशों में अकुशल जनशक्ति की अधिकता रहती है।  
(विकसित, पूर्ण विकसित, अल्पविकसित)
9. भारत में प्रत्याशित आयु ..... वर्ष है।  
(63.5, 62.5, 60.5)
10. अल्पविकसित देशों के पास .....अस्त्रों से लैसा सेना का अभाव होता है।  
(परम्परागत, गैर, आधुनिक)
11. भारत का वर्ष .....में मान व विकास सूचकांक 0.571 था।  
(2000, 2001, 1999)

### बहुविकल्पयी प्रश्न

12. हार्वे लिंक्सटिन ने अल्पविकसित देशों की विशेषताएं होती हैं।  
A. चार B. पांच  
C. छः D. उपर्युक्त सभी
13. मायर एवं बाल्डविन ने अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के कितने लक्षण बताये हैं।  
A. चार B. पांच  
C. छः D. आठ
14. भारत में वर्तमान में जन्म दर व मृत्यु दर प्रति हजार कितनी है।  
A. 33.1 व 7.4 B. 23.1.22  
C. 23.1 व 7.4 D. 24.6 व 33.1
15. भारत किस प्रकार का देश है।  
A. विकसित B. अल्पविकसित  
C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त सभी

16. 1999-2000 के दशक में भारत के G.D.P. के विकास की दर रही है।  
 A. 6 प्रतिशत  
 B. 8 प्रतिशत  
 C. 3 प्रतिशत  
 D. 9 प्रतिशत
17. आर्थिक दुष्चक्रों की प्रधानता रहती है।  
 A. अल्पविकसित देशों में  
 B. विकसित देशों में  
 C. उपर्युक्त दोनों गलत  
 D. पूर्ण विकसित देशों में
18. अल्पविकसित देशों में स्त्रियों को किस प्रकार का स्थान प्राप्त होता है।  
 A. उच्च स्थान  
 B. मध्यम स्थान  
 C. निम्न स्थान पर  
 D. उपर्युक्त सभी
19. अल्पविकसित देशों में प्रधानता होती है।  
 A. रीति-रिवाजों की  
 B. आधुनिक मशीनों की  
 C. आधुनिक अस्त्रों से  
 D. उपर्युक्त सभी
20. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व होता है  
 A. कम  
 B. अधिक  
 C. शून्य  
 D. उपर्युक्त सभी
21. वर्ष 2000 में भारत की जनसंख्या निर्धनता से नीचे थी।  
 A. 26 %  
 B. 27%  
 C. 28%  
 D. 26.5%
22. भारत में प्रत्याशित आयु है।  
 A. 62.5 वर्ष  
 B. 63.5 वर्ष  
 C. 60.5 वर्ष  
 D. 61.5 वर्ष
23. कृषि प्रधान देश होते हैं  
 A. विकसित  
 B. विकासशील  
 C. केवल A  
 D. उपर्युक्त सभी

### 3.8 सारांश

अल्प विकसित देश साधनों में पूर्ण रूप से हीन होते हैं, यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे तकनीकी और सामाजिक तथा आर्थिक संगठन में उपयुक्त परिवर्तनों द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों की दुर्लभता को पार करने में सफल नहीं हो सके हैं। जैसा कि बौर और यामे ने कहा है, “यह सुझाव अति सरलीकरण होगा कि सामान्य रूप से अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों के विषय में भाग्यहीन रहे हैं और अल्प साधन युक्त हैं – विशेष रूप से खनिजों और उपजाऊ भूमि के सम्बन्ध में आधुनिक इस्टैन्डर्ड को देखा जाये तो सभी विकसित देश शुरू में अल्प विकसित थे और इतिहास की अपेक्षाकृत थोड़ी और वर्तमान अवधि में ही उनका विकास हुआ है।” सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि भूमि, खनिज, जल, वन या शक्ति साधनों

में अल्प विकसित देश त्रुटि युक्त नहीं होता।

उदाहरण के लिए भारत में 9 करोड़ एकड़ कृषि योग्य बंजर भूमि है और इसकी जलशक्ति संभाव्यता 410 लाख किलोवाट आंकी गयी है, जबकि इसका मुश्किल से 10: भाग ही अभी तक उपयोग में लाया जा सका है। अफ्रीका में विश्व की जल शक्ति संभाव्यता का 44: है परन्तु वह 0.1: से अधिका का उपयोग नहीं करता। अल्प विकसित देश खनिज धन में समृद्ध है। अफ्रीका में तांबे, बाक्साइड, टीन और स्वर्ण के महत्वपूर्ण भण्डार हैं। एशिया पेट्रोलियम, लोहे, बाक्साइड, मैगनीज, अभ्रक और टीन में समृद्ध है। लेटिन अमेरिका में पेट्रोलियम, लोहे, जस्ता और तांबे के असीम भण्डार हैं। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका की वन सम्पत्ति की खोज और अनुसंधान नहीं हो सका है। इस प्रकार अल्प विकसित देशों के पास साधन तो होते हैं परन्तु विविध बाधाओं जैसे कि उनकी अपनी दुर्गमता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी अप्राप्यता और मार्केट की छोटी सीमा, के कारण या तो उनका उपयोग ही नहीं हो पाता या फिर अल्प अथवा दुरुपयोग होता है।

### 3.9 शब्दावली

- **विकसित अर्थव्यवस्था-** जो आर्थिक सामाजिक दृष्टि से उन्नत हैं जिनका कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय, उपभोग, बचत व निनियोग का स्तर उंचा है तथा जनसंख्या वृद्धि निम्न स्तर की है, विकसित अर्थव्यवस्था कहलाती हैं
- **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था-** अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिनमें मानवीय शक्ति का अल्प उपयोग या अनुपयोग एक ओर से प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ-साथ पायी जाती है।
- **निर्धनता-** जब समाज का एक वर्ग अपने जीवन, स्वास्थ्य एवं कार्य कुशलता के लिए आवश्यक न्यूनतम उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को अस्मर्थ पाता है तो इस स्थिति को निर्धनता कहते हैं।
- **कालाधन-** जिस धन के हिसाब-किताब का खुलासा न करके अघोषित रखा जाता है तथा उस पर कर की अदायगी नहीं की जाती है उसे कालाधन कहते हैं।
- **बेरोजगारी-** एक व्यक्ति को उस समय ही बेरोजगार कहा जायेगा। जब उसके पास कोई रोजगार साधन नहीं है परन्तु वह रोजगार प्राप्त करना चाहता है।

### 3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएं

1.26, 2. 90, 3. 1999, 4. वर्णन 5. 39.1 6. अल्पविकसित 7. अधिक 8. अल्पविकसित, 9. 63.5  
10. आधुनिक 11. 2001

बहुविकल्पयी प्रश्न

12. A, 13. C, 14. C 15. B, 16. A, 17. A, 18. C, 19. A, 20. B 21. A, 22. B, 23. B

### 3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिन्हा वी.सी. (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई.सी. (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया", एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

### 3.12 सहायक अध्ययन सामग्री

- I Viner, "The Economic of Development" in The Economic of Undevelopment, (ed) A.N. Aggarwal and S.P. Singh,. Nurkse, op.cit, p - 1
- United Nations Mearures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.
- World Bank Development Report 1999-2000 pp. 232-233 Report 1983.
- H. I. Keenleyside in Dynamics of Development, (ed) G.Hambidge,
- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi,

### 3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "एक अल्प विकसित देश एक जिराफ कि भौति है जिसका वर्णन करना कठिन है लेकिन जब हम उसे देखते है तो समझ जाते है।" (सिंगर) समझाइए।
2. अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की परिभाषा दीजिए और इसकी आधारभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
3. अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ? इन देशों के आर्थिक विकास की बाधाएं क्या है?
4. क्या भारत एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था है? व्याख्या कीजिए।
5. आर्थिक संवद्धि एवं आर्थिक विकास में भेद कीजिए।
6. 'अल्प विकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था की गन्दी बस्तियां हैं।' इस कथन का विवेचन कीजिए तथा अल्प विकसित देशों के विशिष्ट लक्षणों पर प्रकाश डालिए?
7. उन मानदण्डों की विवेचना कीजिए जिनके आधार पर एक देश अल्प विकसित क्षेत्र माना जा सकता है।

---

## इकाई 4 - विकास के निर्धारक घटक एवं अवस्थाएँ

### (Determinant factors and Stages of Economic Development)

---

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक
  - 4.3.1 आर्थिक कारक एवं आर्थिक विकास
  - 4.3.2 अनार्थिक कारक एवं अनार्थिक विकास
- 4.4 आर्थिक विकास की अवस्थाएं
  - 4.4.1 आर्थिक विकास की अवस्थाओं के विभिन्न प्रकार
  - 4.4.2 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचना
- 4.5 भारत की विकास अवस्था
- 4.6 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

विश्व के समस्त देशों में आर्थिक वृद्धि हुई है परन्तु उनकी वृद्धि दरें एक दूसरे से भिन्न रहती हैं। वृद्धि दरों में असमानताएं उनकी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, तकनीकी एवं अन्य स्थितियों के कारण पाई जाती है। यही स्थितियां आर्थिक वृद्धि के कारक हैं। परन्तु इन कारकों का निश्चित रूप से उल्लेख करना भी एक समस्या है क्योंकि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने ढंग से इनको बताया है।

**किंडलबर्जर** और **हैरिक** ने भूमि और प्राकृतिक साधन, भौतिक पूँजी, श्रम और मानव पूँजी, संगठन प्रौद्योगिकी, पैमाने की बचतें और मण्डी का विस्तार, तथा संरचनात्मक परिवर्तन को आर्थिक वृद्धि के कारक माने हैं। रिचर्ड गिल ने जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक साधन, पूँजी संचय, उत्पादन के पैमाने में वृद्धि एवं विशिष्टीकरण और तकनीकी प्रगति को आर्थिक वृद्धि के आधारभूत कारक बतलाए हैं। साथ ही **लेविस** ने आर्थिक वृद्धि के केवल तीन कारक ही महत्वपूर्ण कहे हैं, ये हैं - बचत करने का प्रयत्न, ज्ञान की वृद्धि या उसका उत्पादन में प्रयोग और प्रति व्यक्ति पूँजी अथवा अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि करना। परन्तु नर्स इन कारकों को अर्थिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं समझता। उसके अनुसार, **“आर्थिक वृद्धि बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संयोगों से संबंध रखती है। वृद्धि के लिए पूँजी अनावश्यक तो है परन्तु उसके लिए केवल पूँजी का होना ही पर्याप्त नहीं है।”** अतः राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताएं आर्थिक वृद्धि के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि आर्थिक आवश्यकताएं।

## 4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ आर्थिक विकास का निर्धारण कैसे होता है।
- ✓ आर्थिक विकास के आर्थिक तत्व क्या है।
- ✓ आर्थिक विकास के अनार्थिक तत्व कौन- कौन से है।
- ✓ आर्थिक विकास की अवस्थाएं कौन- कौन से है।
- ✓ आर्थिक विकास को सामाजिक कारक कैसे प्रभावित करते है।

## 4.3 आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक

प्रत्येक देश के आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान होते हैं जिन पर उस देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है। आमतौर से इन तत्वों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है-

(अ) प्रधान चालक तत्व एवं अनुपूरक तत्व

(ब) आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व।

प्रधान चालक अथवा प्राथमिक तत्व वे तत्व होते हैं जो उस देश के आर्थिक विकास के कार्य को प्रारम्भ करते हैं। विकास की नींव वास्तव में इन्हीं तत्वों पर रखी जाती है। प्रधान चालक तत्वों के माध्यम से जब विकास की

प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तो कुछ अन्य तत्व इनको तीव्रता प्रदान करते हैं। वास्तव में इन्हें ही अनुपूरक अथवा गौण अथवा सहायक तत्व कहा जाता है। इस प्रकार प्राथमिक तत्व विकास की आधारशिला हैं जबकि अनुपूरक तत्व, आर्थिक विकास को गति प्रदान करते हैं और इसे बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रधान चालक तत्वों में प्राकृतिक साधन मानवीय साधन, कौशल निर्माण तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व संस्थागत तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत अनुपूरक तत्वों में 1. जनसंख्या वृद्धि, 2. प्राविधिक विकास की दर, और 3. पूँजी निर्माण की दर मुख्य हैं। प्रधान चालक और अनुपूरक तत्वों के सापेक्षिक महत्व, वर्गीकरण व स्वरूपों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग प्रधान चालक तत्वों को महत्व प्रदान करते हैं। तो कुछ लोग सहायक तत्वों को।

**प्रो. हैरोड एवं डोमर** ने आर्थिक विकास के चार सहायक तत्व माने हैं –

1. जनसंख्या वृद्धि की दर,
2. औद्योगिक विकास की दर,
3. पूँजी उत्पाद अनुपात,
4. बचत व आय का अनुपात।

**श्रीमती जॉन राबिन्सन** का मत है कि “**आर्थिक विकास एक स्वतः प्रारम्भ होने वाली प्रक्रिया है इसलिये प्राथमिक तत्वों के विपरीत, अनुपूरक तत्वों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि विकास को अन्तिम रूप देने का उत्तरदायित्व इन्हीं तत्वों पर होता है।**” उनकी दृष्टि में जनसंख्या एवं उत्पादन की दर का अनुपात और पूँजी निर्माण की दर, दो सहायक तत्व आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

**प्रो. शुम्पीटर** ने ‘नव प्रवर्तन’ को आर्थिक विकास का आवश्यक तत्व माना है। नव प्रवर्तन से उनका अभिप्राय –

1. उत्पादन की विकसित तकनीकी का सूत्रपात,
2. नई वस्तुओं का उत्पादन,
3. नये बाजारों का उपलब्ध होना,
4. उद्योगों में संगठन के नूतन स्वरूप तथा नये साधनों में प्रयोग आदि से है।

**प्रो. डब्ल्यू डब्ल्यू. रोस्टोव** ने आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण गतिशील तत्वों - पूँजी संचयन एवं श्रम-शक्ति की ओर संकेत किया है। उनका कहना है कि इन दो तत्वों को निम्नलिखत छः प्रवृत्तियाँ प्रभावित करती हैं –

1. आधारभूत विज्ञान को विकसित करने की प्रवृत्ति,
2. आर्थिक उद्देश्यों में विज्ञान को लागू करने की प्रवृत्ति,
3. नवीन प्रवर्तनों की खोज व उन्हें लागू करने की प्रवृत्ति,
4. भौतिक प्रगति करने की प्रवृत्ति,
5. उपभोग वृत्ति तथा
6. सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा।

**प्रो. रिचार्ड टी. गिल** के अनुसार आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं-

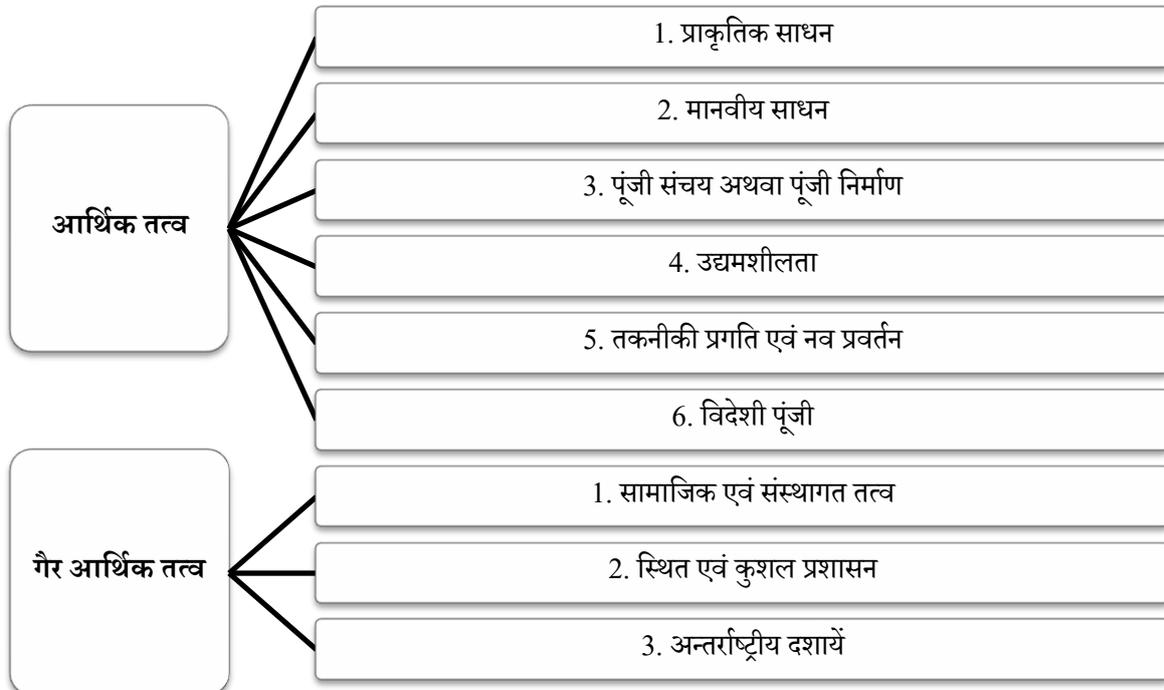
1. जनसंख्या वृद्धि,
2. प्राकृतिक साधन,
3. पूँजी संचय,
4. उत्पादन में विशिष्टीकरण,
5. तकनीकी प्रगति।

**प्रो. मायर एवं बाल्डविन** का मत है कि यद्यपि आर्थिक विकास को बनाये रखने के लिये वांछित निर्धारक आर्थिक तत्वों की एक लम्बी सूची तैयार की जा सकती है, परन्तु वास्तविक रूप से इन्हें निम्न चार शीर्षकों में रखना अधिक उचित होगा

1. तकनीकी प्रगति एवं पूँजी संचय,
2. प्राकृतिक साधन,
3. जनसंख्या,
4. साधनों का लचीलापन।

**आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व** - उपरोक्त वर्गीकरण के अलावा, निर्धारक तत्वों को आर्थिक एवं गैर आर्थिक आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। आर्थिक तथा गैर आर्थिक तत्वों की सूची इस प्रकार है :

**आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व**



### 4.3.1 आर्थिक कारक एवं आर्थिक विकास

किसी देश की आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले आर्थिक तत्व निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :

1. **प्राकृतिक साधन-** प्राकृतिक साधनों से हमारा अभिप्राय उन सभी भौतिक अथवा नैसर्गिक साधनों से है जो प्रकृति की ओर से एक देश को उपहार स्वरूप प्राप्त होते हैं। किसी देश में उपलब्ध होने वाली भूमि, खनिज पदार्थ, जल सम्पदा, वन सम्पत्ति, वर्षा एवं जलवायु, भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक बन्दरगाह उस देश के प्राकृतिक साधन माने जायेंगे। यह प्राकृतिक साधन देश के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आमतौर से यह बात स्वीकार की जा चुकी है कि अन्य बातों के समान रहने पर जिस देश के प्राकृतिक साधन जितने अधिक होंगे, उस देश का आर्थिक विकास उतना ही शीघ्र एवं अधिक होगा।

आर्थिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक साधनों के महत्व को स्पष्ट करते हुए रिचार्ड डी गिल ने लिखा है “जनसंख्या एवं श्रम की पूर्ति की भांति प्राकृतिक साधन भी एक देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उपजाऊ भूमि और जल के अभाव में कृषि का विधिवत विकास नहीं हो पाता। लोहा, कोयला व अन्य खनिज सम्पदा के न होने पर तीव्र औद्योगीकरण का स्वप्न अधूरा ही बना रहता है। जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण आर्थिक क्रियाओं के विस्तार में अवरोध उत्पन्न होते हैं। वास्तव में प्राकृतिक साधनों का किसी देश के आर्थिक विकास को सीमित करने अथवा प्रोत्साहित करने में एक निर्णायक स्थान होता है।”

प्राकृतिक साधनों के बारे में दो बातों को दृष्टि में रखना आवश्यक है

**प्रथम**, प्रकृति-दत्त साधन सदैव के लिये सीमित व निश्चित होते हैं, मानवीय प्रयत्नों से उन्हें खोजा तो जा सकता है परन्तु उनका नव निर्माण नहीं किया जा सकता। गिल महोदय का भी कहना है कि “जनसंख्या बढ़ सकती है, उपकरणों, मशीनों तथा फैक्ट्रियों का निर्माण किया जा सकता है। किन्तु हमें प्रकृति द्वारा दिये गए प्राकृतिक उपहार (साधन) सदैव के लिए सीमित एवं निश्चित होते हैं।”

**द्वितीय**, यह सोच लेना एक भयंकर भूल होगी कि जिस देश में जितने अधिक प्राकृतिक साधन होंगे, उस देश का विकास उतना ही अधिक होगा। आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक साधनों की केवल बाहुल्यता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित ढंग से विदोहन किया जाना अधिक आवश्यक है।

उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड तथा जापान के प्राकृतिक साधन कम होते हुए भी आज वे विश्व के सर्वाधिक विकसित राष्ट्र माने जाते हैं। भारत के सम्बन्ध में कहा जाने वाला यह वाक्य आज भी इस दृष्टि से अडिग है कि – ‘भारत एक धनी देश है जहां निर्धन वास करते हैं।’

2. **मानवीय साधन** - मानवीय साधनों से हमारा अभिप्राय किसी देश में निवास करने वाली जनसंख्या से है। श्रम, प्राचीन काल से ही उत्पादन का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय साधन माना जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का कहना था कि “प्रत्येक देश का वार्षिक श्रम वह कोष है जो मूल रूप से जीवन

**की अनिवार्यताओं व सुविधाओं की पूर्ति करता है।”** मानवीय श्रम ही वह शक्ति है जिस पर देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है। प्रायः यह कहा जाता है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की पूर्व आवश्यकता है लेकिन तीव्र गति से होने वाली जनसंख्या का बढ़ना तभी तक श्रेष्ठकर माना जायेगा जब तक कि उनका प्रति व्यक्ति उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ने पाये। दूसरे शब्दों में देश की जनसंख्या व उसका आकार, वृद्धि दर, संरचना, विभिन्न व्यवसायों में वितरण व कार्यक्षमता आदि का उस देश के आर्थिक विकास पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ आपको स्पष्ट रूप से यह बताना है कि **किसी देश की वास्तविक सम्पत्ति उस देश की भूमि या पानी में नहीं, वनों या खानों में नहीं, पक्षियों या पशुओं के झुण्डों में नहीं, और न ही डालरों के ढेर में आंकी जाती है बल्कि उस देश के स्वस्थ, सम्पन्न व सुखी पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों में निहित है।**

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास के लिये मानवीय शक्ति का सही ढंग से उपयोग करने हेतु

1. जनाधिक्य पर नियंत्रण लगाया जाये,
2. श्रम शक्ति में उत्पादकता एवं गतिशीलता बढ़ाते हुए उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाये ताकि उसमें श्रम-गौरव की भावना आ सके तथा
3. मानवीय पूँजी निर्माण पर बल दिया जाये।

मायर्स के अनुसार मानवीय पूँजी निर्माण से हमारा आशय “देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील, चरित्रवान, स्वस्थ, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष हैं तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर, उस देश का अधिक होता है।”

प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि “आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया मात्र ही नहीं, वरन् अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। अन्य मानवीय उपक्रमों की भांति इसका परिणाम, सही अर्थों में, इसको संचालित करने वाले जन समुदायों की कुशलता, गुणों व प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है।”

इसमें कोई संदेह नहीं कि जहां विकसित देशों के आर्थिक विकास में जनसंख्या व उसकी क्रमिक वृद्धि का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वहां अल्प विकसित देशों के अवरूद्ध आर्थिक विकास का एक मात्र कारण जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विश्व के अधिकांश पिछड़े हुए देशों के लिए एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। अवांछित रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि तथा यंत्रों पर दबाव बढ़ने लगता है, प्रति व्यक्ति आय, बचतों तथा पूँजी निर्माण की दरों में कमी आती है, उत्पादकता में हास होता है, प्रति व्यक्ति पूँजीगत साधनों का अभाव होने लगता है, बेरोजगारी बढ़ती है एवं जीवन स्तर में कमी आने लगती है और इस प्रकार आर्थिक विकास के अंतर्गत प्राप्त उपलब्धियां स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

3. पूँजी संचय - प्रो. कुजनेट्स के शब्दों में, “पूँजी व पूँजी का संचय आर्थिक विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है।” जब तक देश में पर्याप्त मात्रा में पूँजी व पूँजी निर्माण नहीं होगा तब तक आर्थिक विकास का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। प्रो. नर्कसे का कहना है कि “पूँजी निर्माण आर्थिक

**विकास की एक पूर्व आवश्यकता है।”** देश के आर्थिक विकास के लिये एक बड़ी मात्रा में पूँजी व पूँजीगत वस्तुओं जैसे भवन, कल-कारखाने, मशीनें, यन्त्र व उपकरण, बांध, नहरें, रेलें, सड़कें, कच्चा माल व ईंधन की आवश्यकता होती है। जिस देश के पास यह साधन जितने अधिक होंगे, अन्य बातें समान रहने पर उसका आर्थिक विकास उतना ही अधिक होगा। आज विकसित कहे जाने वाले राष्ट्रों की प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में पूँजी निर्माण की ऊंची दर का पाया जाना है जबकि अल्प विकसित देशों में पूँजी निर्माण की धीमी दर के कारण उनका आर्थिक विकास आज भी अवरूद्ध अवस्था में पड़ा हुआ है। सत्यता तो यह है कि पूँजी का संचय, वर्तमान समय में, अमीर-गरीब के बीच पाये जाने वाले अन्तर का कारण व प्रतीक है, यह निर्धन देशों को धनवान बनाने की एक कला है और विश्व के पिछड़े हुए देशों के विगत इतिहास के विपरीत, आज के इस औद्योगिक युग का सूत्रपात करने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक है।

4. **तकनीकी प्रगति एवं नव-प्रवर्तन** - प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. शुम्पीटर का कहना है कि **“विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक तकनीकी प्रगति एवं नव-प्रवर्तनों को अपनाया जाना है। तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नये ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुएं कम लागत पर उत्पन्न की जा सकें अथवा जिनके फलस्वरूप नई वस्तुओं का उत्पादन सम्भव किया जा सके।”** तकनीकी ज्ञान उत्पादन की विधियों में मौलिक परिवर्तन लाकर आर्थिक विकास के कार्य को गति प्रदान करता है। विकसित देशों की विकास वृद्धि की दर, बुनियादी रूप से उनके द्वारा की गई तकनीकी व नव प्रवर्तनों की खोज पर आधारित रहती है। इसके विपरीत अल्प विकसित देशों में तकनीकी ज्ञान के अभाव में उत्पादन की पुरानी व अवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप इनका आर्थिक विकास आज भी पिछड़ी हुई अवस्था में है।

प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि **“आर्थिक विकास अपने लिये महत्वपूर्ण पौष्टिकता वस्तुतः, नये विचारों, तकनीकी आविष्कारों व उत्पादन विधियों के स्रोतों से प्राप्त करता है, जिनके अभाव में, अन्य साधन कितने ही विकसित क्यों न हों, आर्थिक विकास का प्राप्त करना असम्भव ही बना रहता है।”** ध्यान रहे, तकनीकी प्रगति, नवीन प्रवर्तनों के अपनाए जाने पर ही निर्भर करती है।

एक देश में तकनीकी प्रगति के लिये प्रो. गिल ने चार तत्वों का होना आवश्यक बताया है –

1. विज्ञान की प्रगति या वैज्ञानिक अभिरूचि
  2. समाज में शिक्षा का ऊंचा स्तर,
  3. नव प्रवर्तनों को व्यावहारिक रूप देना तथा
  4. उद्यमशीलता।
5. **उद्यमशीलता** - नये आविष्कार, तकनीकी ज्ञान व नई खोजों का आर्थिक विकास की दृष्टि से तब तक कोई महत्व नहीं जब तक कि उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान न कर दिया जाये - और यह काम समाज के साहसी वर्ग को करना होता है। प्रो. गिल का कहना है कि **“तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टि से तभी उपयोगी हो सकता है जब उसे नव प्रवर्तन के रूप में प्रयोग किया जाये और जिसकी पहल**

**समाज के साहसी वर्ग द्वारा की जाती है।”** वास्तव में, किसी देश का आर्थिक विकास विशेष रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश में किस प्रकार के साहसी हैं? वे नये आविष्कारों व विकसित तकनीकों का किस सीमा तक प्रयोग करते हैं? और उनके उत्पादन के क्षेत्र में विकास और सुधार करने की कितनी प्रबल इच्छा है? आर्थिक विकास तकनीकी प्रगति व नव प्रवर्तनों पर निर्भर करता है, नव प्रवर्तनों के लिए उद्यमशीलता की आवश्यकता होती है, उद्यमशीलता के लिए जोखिम उठानी पड़ती है और जोखिम सफलता का दूसरा नाम है।

**श्री याले ब्राजन के अनुसार, “न तो आविष्कार की योग्यता और न केवल आविष्कार ही आर्थिक विकास को संभव बनाते हैं बल्कि यह तो, उन्हें कार्यरूप में परिणित करने की प्रबल इच्छा व जोखिम उठाने की क्षमता पर निर्भर करता है।”**

**प्रो. शुम्पीटर** ने अपने आर्थिक विकास के सिद्धान्त में नव प्रवर्तनों के रूप में साहसियों को केन्द्रीय स्थान देते हुए इन्हें आर्थिक विकास की संचालन शक्ति माना है। वास्तव में, आर्थिक विकास वैदिक काल से ही उद्यमशीलता के साथ सम्बन्धित रहा है और उद्यमकर्ता को उन व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो ‘नये दृष्टिकोणों’ व ‘नये संयोगों’ का सृजन करते हैं।

**प्रो. बोलिडिंग** का मत है कि आर्थिक प्रगति को विभिन्न समस्याओं में से मुख्य समस्या समाज के एक वर्ग विशेष को ‘नव प्रवर्तकों’ का रूप देने की होती है। विकसित देशों की आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में साहसियों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना ही रहा है। जबकि इसके विपरीत पिछड़े हुए देशों में ‘शर्मिली पूँजी’, उद्यमशीलता का अभाव व जोखिम उठाने की क्षमता न होने के कारण, इन देशों का आर्थिक विकास संभव नहीं हो सका। आजकल अल्प विकसित देशों में नव प्रवर्तकों की भूमिका सरकार द्वारा अदा की जाती है। इसका कारण यह है कि एक तो निजी उद्यमकर्ताओं का अभाव और दूसरा विकास कार्यों पर, उत्पादन की नई तकनीकों के अंतर्गत विशाल धनराशि को विनियोग करना पड़ता है जो कि व्यक्तिगत प्रयत्नों से संभव नहीं हो पाता।

6. **विदेशी पूँजी** - अल्प विकसित देश के आर्थिक विकास का एक अन्य निर्धारक तत्व विदेशी पूँजी है। विदेशी पूँजी के प्रयोग के अभाव में कोई भी अल्प विकसित देश आर्थिक विकास नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय के कम होने के कारण घरेलू बचत की दर काफी कम होती है। लोगों का जीवन स्तर इतना नीचा होता है कि उनके द्वारा बचत करना संभव नहीं हो पाता। फलतः घरेलू बचत की इस कमी को विदेशी पूँजी के आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है।

विदेशी पूँजी के आयात का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि यह अपने साथ तकनीकी ज्ञान व पूँजीगत उपकरणों को भी लाती है। जिनका पिछड़े हुए देशों में सर्वथा अभाव होता है। इस प्रकार पूँजी व विकसित तकनीकी के उपलब्ध हो जाने पर अल्प विकसित देशों में तकनीकी स्तर को ऊंचा करके प्रति व्यक्ति उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

संक्षेप में, अल्प विकसित देशों में विदेशी पूँजी का प्रयोग विकास परियोजना योजनाओं को चालू करना ; कच्ची सामग्री, मशीनें व उपकरणों का आयात करने ; उत्पादन स्तर को बनाये रखने ; तथा आवश्यक वस्तुओं का आयात करके मुद्रा-स्फीति का सामना करने में सहायक सिद्ध होती है।

### 4.3.2 अनार्थिक कारक एवं आर्थिक विकास

आर्थिक विकास के गैर आर्थिक तत्व इस प्रकार है :

1. **सामाजिक तथा संस्थागत तत्व - मायर एवं बाल्डविन** के अनुसार आर्थिक विकास के मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं का होना उसी प्रकार जरूरी है जिस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं का इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय विनियोग नीति पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक प्रवृत्तियों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मूल रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों में नूतन मूल्यों व संस्थाओं को अपनाने की कितनी प्रबल इच्छा है। वास्तव में गैर आर्थिक तत्वों के रूप में यह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व संस्थागत तत्व, आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियां हैं।

प्रो. रागनर नर्कसे का कहना है कि *“आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक दशाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं से एक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।”*

संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार *“एक उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति में आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में प्रगति की प्रबल इच्छा हो, वे उसके लिये हर सम्भव त्याग करने को तत्पर हों, वे अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढालने के लिए जागरूक हों और उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व वैधानिक संस्थायें इन इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायक हों।”*

प्रो. पाल अलबर्ट का कहना है कि आर्थिक विकास के लिये समाज व अर्थव्यवस्था की संरचना, वांछित परिवर्तनों की सम्भावनाओं की दृष्टि से खुली होनी चाहिए।

अल्प विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण, वास्तव में ये सामाजिक व संस्थागत तत्व ही रहे हैं। इन देशों में जाति-प्रथा, छूआ छूत, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियम, भू-धारण की दोषपूर्ण व्यवस्था, भूमि व सम्पत्ति के प्रति मोह, अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता, धार्मिक पाखण्ड, परिवर्तन के प्रति विरक्ति और उसका विरोध, सामाजिक अपव्यय तथा झूठी शान शौकत जैसे तत्वों ने आर्थिक विकास के मार्ग पर सदैव बाधाएँ उत्पन्न की हैं। इन देशों का आर्थिक विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि इन सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाओं का नये सिरे से नव निर्माण न कर दिया जाये। अतः इस दृष्टि से आवश्यक है कि लोगों की रूढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित किया जाए, उनमें भौतिक दृष्टिकोण पैदा किया जाए और शिक्षा का विस्तार किया जाए ताकि ये लोग अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढाल सकें।

2. **स्थिर तथा कुशल प्रशासन** - किसी देश का आर्थिक विकास बहुत एक सीमा तक उस देश के स्थिर व कुशल प्रशासन पर भी निर्भर करता है। यदि देश में शान्ति और सुरक्षा पायी जाती है तथा न्याय की उचित व्यवस्था है तो लोगों में काम करने तथा बचत करने की इच्छा पैदा होगी और फलस्वरूप आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इसके विपरीत यदि देश में राजनैतिक अस्थिरता है अर्थात् सरकारें बार-बार बदलती रहती हैं तथा आन्तरिक क्षेत्र में अशान्ति का वातावरण व्याप्त है तो इससे विनियोग सम्बन्धी

निर्णयों पर बरा प्रभाव पड़ेगा। पूँजी का विनियोग देश में कम होगा, जोखिम उठाने के लिये लोग तैयार नहीं होंगे तथा विदेशी पूँजी देश में आने के लिए तैयार नहीं हो पायेगी और फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास पिछड़ जायेगा।

इतना ही नहीं, सरकार की स्वयं विकास के प्रति रूचि का होना भी जरूरी है, अन्यथा उसके अभाव में आर्थिक विकास का श्रीगणेश भी नहीं हो सकेगा। सरकार की कुशल प्रशासन व्यवस्था और उसके कर्मचारियों में निपुणता, ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व की भावना आर्थिक विकास की पहली शर्त है। प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारू व सुदृढ़ होने पर जन सहयोग बढ़ता है विकास कार्यक्रम सफल होते हैं और नीतियों का निर्धारण व उनका निष्पादन सरलता के साथ सम्भव हो जाता है।

**प्रो. डब्लू आर्थर लेविस का मत है कि “कोई भी देश राजकीय सहयोग व उसका सक्रिय प्रोत्साहन पाये बिना, आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है। यह कथन अपने में आज भी सत्य है और भविष्य के लिये भी सत्य है और अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिये तो यह विशेष रूप से कटु सत्य माना जाएगा।”**

3. **अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां** - आर्थिक विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का अनुकूलन होना भी आवश्यक है। विश्व मंच पर राजनैतिक शान्ति बने रहने पर ही विकास व नव निर्माण कार्य संभव हो सकते हैं। अशान्ति और युद्धों की धधकती ज्वाला में विकासात्मक नहीं, वरन् विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। राजनैतिक शान्ति के अलावा विश्व के देशों में सद्भावना, सहयोग व वित्तीय सहायता का उपलब्ध होना भी अत्यावश्यक है। अल्प विकसित देशों में पूँजी व पूँजीगत सामान, भारी मशीनें तथा तकनीकी ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। इन सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति विकसित राष्ट्रों द्वारा जब तक नहीं की जायेगी, तब तक इन देशों का आर्थिक विकास अवरूद्ध बना रहेगा। विकसित देश अनुदान, ऋण, प्रत्यक्ष विनियोग और तकनीकी सहायता आदि के रूप में इन देशों को आर्थिक सहयोग दे सकते हैं। संक्षेप में राजनीतिक स्थिरता, विकसित देशों की नीति, पड़ोसी देशों का रूख, विदेशी व्यापार की सम्भावनाओं और विदेशी पूँजी का अन्तर्प्रवाह आदि तत्व आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रभावित करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि किसी देश का आर्थिक विकास अनेक तत्वों पर निर्भर करता है। वस्तुतः यह कहना कि कौन सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है, अत्यन्त कठिन है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में इन सभी निर्धारक तत्वों का अपना एक विशेष स्थान है इसलिये उनके सापेक्षिक योगदान एवं महत्व के बारे में कुछ भी कहना न तो सम्भव ही है और न ही तर्कपूर्ण।

#### 4.4 आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार मानव के विकास का आदिम इतिहास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मनुष्य जन्म के समय शिशु, शिशु से किशोर, किशोर से तरुण और फिर जवानी की दहलीज पार करते हुए वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक देश को अपने पिछड़ेपन से विकास की चरम सीमा तक पहुंचने के लिए अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। क्रमिक विकास की यह व्यवस्था,

अपने में ही इतनी अधिक सार्वभौमिक है कि वर्तमान समय में विकसित कहे जाने वाले देशों जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस व जापान आदि को भी सम्पन्नता की मन्जिल पर पहुंचने के लिये अनेक पड़ावों को पार करना पड़ा है। हां! यह सम्भव हो सकता है कि कोई देश अपने सक्रिय प्रयत्नों के फलस्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में पड़े रहने की अवधि को कम कर लें, परन्तु यह नामुमकिन है कि उसने विकास की प्रत्येक अवस्था की परिधि को छुआ न हो।

प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि “अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की खोज, इंग्लैण्ड की महान औद्योगिक क्रांति के काल से ही प्रारम्भ की जा चुकी है। आर्थिक विकास की अवस्थाओं के इस दृष्टिकोण ने, जो कि सैद्धान्तिक की बजाय वर्णात्मक अधिक है, विकास प्रक्रिया को अनेक अवस्थाओं में वर्गीकृत करने का प्रयास किया है जिसमें से सभी देशों को अपने स्वाभाविक आर्थिक उद्गम व विकास के लिए होकर गुजरना पड़ेगा।”

#### 4.4.1 आर्थिक विकास की अवस्थाओं के विभिन्न प्रकार

अवस्थाएं सम्बन्धी मतभेद अनेक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम को भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विभाजित करने का प्रयत्न किया है। चूंकि इन सभी अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित अवस्थाओं के दृष्टिकोण, आधार व काल अलग अलग रहे हैं। इसलिए उनके विचारों में मतभेद का पाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। विकास की अवस्थाओं का मार्ग दर्शन करने वालों में प्रो. लिस्ट, हिल्डेब्रांड, बकर, एशले, बूचर, शमोलर, कोलिन लार्क, कार्लमार्क्स तथा रोस्टोव आदि प्रमुख हैं। हम इनके विचारों का अध्ययन करेंगे

##### 4.4.1.1 प्रो. फ्रेडरिक लिस्ट की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रसिद्ध जर्मन राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट ने 1844 में आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की निम्न पांच अवस्थाओं का उल्लेख किया था।

1. जंगली अवस्था
2. चरागाह अवस्था
3. कृषि अवस्था
4. उद्योग अवस्था
5. उन्नत अवस्था

प्रो. लिस्ट का मत था कि प्रत्येक देश को उन्नत अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु यह तभी संभव हो सकता है जबकि

1. देश सर्वप्रथम कृषि में उन्नति करे और फिर बाद में उद्योगों के विकास पर बल दिया जाए,
2. प्रारम्भिक अवस्था में राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाए तथा
3. जब देश उन्नत अवस्था को प्राप्त कर ले तब स्वतंत्र व्यापार नीति को अपनाते हुए विदेशी व्यापार

सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को हटा देना चाहिए।

#### 4.4.1.2 प्रो. हिल्डेब्रांड की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

सन् 1864 में जर्मन अर्थशास्त्री हिल्डेब्रांड ने विकास की तीन अवस्थाएँ बताई थीं जो कि इस प्रकार हैं-

1. वस्तु विनिमय अवस्था
2. मुद्रा अवस्था
3. साख अवस्था

#### 4.4.1.3 कोलिन क्लार्क की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कोलिन क्लार्क द्वारा आर्थिक विकास की निम्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जिसका समर्थन बौर एवं यामी ने भी किया है –

1. **कृषि उद्योग अवस्था** – इस अवस्था में पिछड़े हुए देशों में कृषि सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग व राष्ट्रीय आय का प्रमुख साधन होता है।
2. **निर्माणकारी उद्योग अवस्था** - अर्थव्यवस्था का जैसे-जैसे विकास होता जाता है, कृषि की अपेक्षा निर्माणकारी उद्योगों का महत्व बढ़ने लगता है।
3. **सेवा उद्योग अवस्था** – अर्थव्यवस्था का और अधिक विकास होने पर सेवा उद्योगों जैसे संचार व परिवहन, बीमा, शिक्षा आदि का भी विकास अधिक होने लगता है।

#### 4.4.1.4 कार्ल मार्क्स की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को विकास की अवस्थाओं का आधार माना है। उन्होंने 1948 में अपने 'Communist Manifesto' में स्पष्टतया लिखा है कि **“आज के विद्यमान समाजों का इतिहास एक संघर्ष का इतिहास है। आजाद एवं गुलाम, देशभक्त एवं गद्दार, जमींदार एवं निसहाय मजदूर, शोषक एवं शोषित सभी एक दूसरे के विरोध में उठ खड़े हुए हैं और भले ही खुलम खुल्ला न सही चोरी छिपे एक दूसरे पर हावी होने के लिए प्रयत्नशील हैं। ..... इस लड़ाई का अन्त या तो समाज के क्रांतिकारी पुनर्निर्माण के रूप में होगा अथवा स्पर्धा करने वाले वर्गों के अन्त के रूप में होगा।”**

कार्ल मार्क्स के अनुसार विकास की प्रमुख चार अवस्थाएँ हैं –

1. सामन्तवाद
2. पूँजीवाद
3. समाजवाद
4. साम्यवाद

मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं के विकास की प्रथम अवस्था श्रमिकों के शोषण से प्रारम्भ होती है और अन्तिम अवस्था शोषण की समाप्ति के साथ ही साथ परिपूर्ण हो जाती है।

#### 4.4.1.5 प्रो. बकर की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो. बकर के अनुसार आर्थिक विकास की तीन अवस्थाएं हैं।

1. गृह अर्थव्यवस्था,
2. शहरी अर्थव्यवस्था
3. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था

#### 4.4.1.6 प्रो. एशले की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो. एशले के अनुसार विकास की विभिन्न अवस्थाएं इस प्रकार हैं -

1. गृह व्यवस्था,
2. गिल्ड व्यवस्था
3. घरेलू व्यवस्था
4. फैक्ट्री व्यवस्था

#### 4.4.1.7 प्रो. रोस्टोव की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास की अवस्थाओं का वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. रोस्टोव को दिया जाता है। रोस्टोव ने अपनी पुस्तक 'The Stages of Economic Growth' में आर्थिक विकास की अवस्थाओं को निम्न पांच भागों में विभक्त किया है :

1. परम्परागत समाज
  2. उत्कर्ष या आत्म स्फूर्ति की पूर्व दशायें
  3. आत्म स्फूर्ति की अवस्था
  4. परिपक्वता की अवस्था
  5. अत्यधिक उपभोग की अवस्था
1. परम्परागत समाज की अवस्था - प्रो. रोस्टोव के अनुसार *“परम्परागत समाज से तात्पर्य, एक ऐसे समाज से है जिसकी संरचना का विकास न्यूटन के पूर्व के विज्ञान और तकनीक तथा भौतिक जगत के प्रति न्यूटन से पूर्व के दृष्टिकोणों पर आधारित, सीमित उत्पादन फलनों की सीमाओं के अंतर्गत होता है।”* विकास की यह अवस्था अत्यन्त पिछड़ी हुई होती है, उत्पादन बढ़ता है लेकिन अत्यन्त धीमी गति से, और विकास की उत्प्रेरणाओं का सर्वथा अभाव होता है। परम्परागत समाज की आधारभूत विशेषता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव तथा उत्पादन फलन का सीमित होना है। सीमित उत्पादन फलन का अर्थ है आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक का या तो उपलब्ध न होना अथवा उसका व्यवस्थित एवं नियमित रूप में प्रयोग न किया जाना, जिसके फलस्वरूप ऐसे समाज में प्रति व्यक्ति उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता था। ये समाज अपनी भौतिक प्रगति को वैज्ञानिक रूप से समझने में असमर्थ थे। परम्परागत समाज की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति सीमित दृष्टिकोण पाया जाता है।
- यह अर्थव्यवस्था अधिकांश रूप से अविकसित होती है।
- औद्योगीकरण का अभाव होता है तथा अर्थव्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आश्रित होती है।
- उत्पादन कार्य परम्परागत तरीकों से किया जाता है जिसके फलस्वरूप उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता है।
- जन्म व मृत्युदर के उंची होने के बावजूद जनाधिक्य की कोई समस्या नहीं होती।
- राज्य की आर्थिक क्रियायें अत्यन्त सीमित होती हैं।
- इस प्रकार के समाज में राजनीतिक सत्ता भूस्वामियों के हाथ में केन्द्रित होती है।
- ऐसे समाजों का सामाजिक ढांचा उत्तराधिकारवादी होता है। जिसमें परिवार तथा जाति सम्बन्ध प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- कृषि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होता है।
- कृषिगत आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों (जैसे युद्ध, खर्चीली शादियों तथा अन्त्येष्टियों, मंदिरों व स्मारकों के निर्माण आदि) पर व्यय किया जाता है जिससे पूँजी निर्माण की दर नीची बनी रहती है।

स्मरण रहे, परम्परागत समाज स्थैतिक समाज नहीं होता बल्कि उत्पादन स्तर, व्यापार के प्रतिरूप, जनसंख्या तथा आय में परिवर्तन लाने की पर्याप्त सम्भावनाएं उपस्थित होती हैं।

**2. आत्म स्फूर्ति की पूर्व दशाएं -** आर्थिक विकास की यह अवस्था संक्रमण काल है जिसमें सतत वृद्धि की पूर्व दशाओं का निर्माण होता है। इस अवस्था में समाज में धीरे धीरे परिवर्तन होने आरम्भ हो जाते हैं और समाज परम्परागत अवस्था से निकलकर एक वैज्ञानिक समाज का रूप लेते हुए आत्म स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी करने लगता है। यही कारण है कि इस काल को आत्म स्फूर्ति के विकास की पूर्व दशाओं का काल कहते हैं। इस अवस्था में आर्थिक सुधार के विचार जन्म लेते हैं और सामाजिक, भौगोलिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता को लाने हेतु परम्परागत दृढ़ता टूटने लगती है। उत्पादन की नई रीतियां अपनायी जाती हैं। पर कुल मिलाकर प्रगति की दौड़ मन्द बनी रहती है। फिर भी आत्म स्फूर्ति की पृष्ठ भूमि तैयार करने में इस अवस्था का अपना एक विशेष महत्व है।

रोस्टोव ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है, *“लोगों में यह विचार फैलने लगता है कि आर्थिक विकास सम्भव है और यह किसी भी अन्य लक्ष्य चाहे वह राष्ट्रीय सम्मान हो, निजी लाभ, सामान्य कल्याण का प्रश्न हो या फिर बच्चों के सुरक्षित भविष्य का उद्देश्य हो, के लिये एक आवश्यक शर्त है। शिक्षा का विस्तार होता है और उसका स्वरूप आधुनिक अवस्थाओं के अनुरूप होने लगता है। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में नये उद्यमी वर्ग का अद्भव होता है जो बचतों को गतिशील करके लाभ हेतु जोखिम उठाने के लिए तैयार हो जाता है। निवेश बढ़ता है और पूँजी बाजार तथा बैंकों का विस्तार होता है। यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों का*

**विकास होता है जिससे आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार का क्षेत्र विस्तृत होने लगता है। थोड़े बहुत रूप में निर्माणकारी उद्योग भी प्रकट होते हैं जो नई तकनीकों का प्रयोग करते हैं।”** इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. कृषि क्षेत्र में प्राविधिक क्रान्ति लाने के प्रयत्न किये जाते हैं।
2. सामाजिक व संस्थागत तत्वों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है।
3. कृषि का सापेक्षिक महत्व कम होने लगता है और उसके साथ ही साथ शहरी क्षेत्र में औद्योगिक कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ने लगता है।
4. आयातों विशेषतया पूँजीगत आयतों का विस्तार होता है और इसका वित्त प्रबन्धन प्राथमिक वस्तुओं तथा प्राकृतिक साधनों के निर्यात द्वारा किया जाता है।
5. विदेशी पूँजी को आमंत्रित किया जाता है।
6. बैंकिंग व्यवस्था, परिवहन व संचार, शिक्षा प्रणाली और श्रम शक्ति के वर्तमान स्तर में विकास व सुधार होने लगता है।
7. शासन में भू स्वामियों का महत्व घटने लगता है और उसके स्थान पर एक राष्ट्रवादी व सक्षम सरकार की स्थापना हो जाती है।

**आवश्यक शर्तें** – रोस्टोव के अनुसार आर्थिक विकास के लिये आवश्यक दशाओं को पैदा करने के लिये कुछ आवश्यक शर्तों को पूरा होना जरूरी है।

1. राष्ट्रीय आय का लगभग 5 से 10 प्रतिशत या इससे अधिक भाग विनियोजित होना चाहिए।
2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए ताकि बढ़ती हुई सामान्य तथा शहरी जनसंख्या को आवश्यक खाद्य पूर्ति प्राप्त हो सके।
3. यातायात एवं सामाजिक सेवाओं के विकास पर कुल विनियोग का काफी बड़ा भाग व्यय होना चाहिए अर्थात् सामाजिक उपरिव्यय पूँजी का निर्माण होना चाहिए।
4. आधुनिक उद्योगों का विकास तथा विविधीकरण होना चाहिए।
5. सामाजिक मूल्यों तथा दृष्टिकोण में आवश्यकतानुकूल परिवर्तन होने चाहिए।

स्मरण रहे, विकास की प्रथम अवस्था निष्क्रिय अवस्था है। जबकि दूसरी अवस्था इसमें सक्रियता लाती है, जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलने लगती है और देश विकास की तीसरी अवस्था यानि आत्म स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश कर जाता है।

3. **आत्म स्फूर्ति की अवस्था** – ‘आत्म स्फूर्ति’ या उत्कर्ष अर्थात् ‘छलांग लेने’ की यह अवस्था विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। प्रो. रोस्टोव के अनुसार “**आत्म स्फूर्ति, अविकसित अवस्था और विकास की चरम सीमा के बीच एक मध्यान्तर की अवस्था है। यह वह अन्तराल है जब पुरानी बाधाओं तथा प्रतिरोधों पर पूरी तरह से काबू पा लिया जाता है। विकास की प्रेरक शक्तियां जो अब तक निष्क्रिय बनी हुई थीं, सक्रिय हो उठती हैं और विस्तृत होकर समाज पर हावी होने लगती हैं। विकास समाज की एक सामान्य दिनचर्या का रूप ले लेता है और संचयी विकास उसकी आदतों तथा उसके संस्थानिक ढांचे का अभिन्न अंग बन जाता है।”**

आत्म स्फूर्ति की अवस्था को प्रो. किन्डलबर्जर ने अधिक स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि “यह प्रगति की एक ऐसी अवस्था है जिसमें विकास की रूकावटें दूर हो जाती हैं। विकास की दर को चक्रीय वृद्धि नियम के अनुसार बढ़ाने हेतु विनियोजन की दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है। अर्थव्यवस्था कुछ मामलों में आत्म निर्भर होने लगती है।”

प्रो. रोस्टोव के अनुसार आत्म स्फूर्ति की अवधि छोटी होती है और यह लगभग दो दशकों तक रहती है। रोस्टोव ने कुछ देशों के आत्म स्फूर्ति काल का भी उल्लेख किया है –

प्रमुख देशों का आत्म स्फूर्ति काल

देश	आत्म स्फूर्ति
ग्रेट ब्रिटेन	1738-1802
फ्रांस	1830-1860
बेल्जियम	1833-1860
अमेरिका	1843-1860
जर्मनी	1850-1837
स्वीडन	1868-1890
जापान	1878-1900
रूस	1890-1914
कनाडा	1996-1914
टर्की	1937
भारत	1952
चीन	1952

प्रमुख विशेषताएं :

1. अर्थव्यवस्था, आत्मनिर्भर व स्वयं संचालित हो चुकी होती है।
2. आर्थिक विकास की बाधाओं पर काबू पा लिया जाता है और आर्थिक प्रगति की उत्प्रेरक शक्तियों का भरपूर विस्तार होता है।
3. गरीबी का दुश्क्र पूरी तरह से तोड़ दिया जाता है और विकास एक सामान्य दशा बन जाती है।
4. आधार भूत उद्योगों की स्थापना के कारण औद्योगिक उत्पादन तेजी के साथ बढ़ने लगता है।

5. प्राविधिक विकास एवं नव प्रवर्तन अर्थव्यवस्था की एक स्थायी विशेषता बन जाती है और संचयी विकास संभव होने लगता है।
  6. कृषि क्षेत्र में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत 75 से घटकर 40 के करीब रह जाता है।
  7. निवेश की दर, कुल राष्ट्रीय आय के 5 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत या इससे भी अधिक हो जाती है, जो कि जनसंख्या की वृद्धि की दर से अवश्य ही अधिक होती है। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हो जाती है।
  8. साख व्यवस्था का फैलाव, पूंजी निर्माण में वृद्धि, आयात के स्वरूप में परिवर्तन, निर्यात की नई व अधिक सम्भावनाओं का विकास होता है।
4. **परिपक्वता की अवस्था** - आत्म स्फूर्ति अर्थात् छलांग स्तर की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद, अर्थ अवस्था परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर होने लगती है। रोस्टोव के अनुसार **“इस अवस्था की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं कि जब समाज में अपने अधिकांश साधनों में तत्काली अर्थात् आधुनिक तकनीक को प्रभावपूर्ण ढंग से अपना लिया हो।”** दूसरे शब्दों में **“परिपक्वता वह अवस्था है जिसमें कोई अर्थव्यवस्था उन भौतिक उद्योगों से आगे बढ़ने की क्षमता रखती है। जिन्होंने उसकी आत्म स्फूर्ति को सम्भव बनाया है और आधुनिक प्रौद्योगिकी को पूर्ण कुशलता के साथ अपने अधिकांश साधन क्षेत्रों पर लागू करने की सामर्थ्य रखती है।”** इस अवस्था में विनियोग की दर 10 से 20 प्रतिशत के बीच रहती है और उत्पादन वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि से अधिक होती है। हां! अर्थव्यवस्था अप्रत्याशित झटके सहन कर सकती है। रोस्टोव ने कुछ देशों के परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश करने की तिथियां भी दी हैं। जैसे इंग्लैंड 1850, अमेरिका 1900, जर्मनी 1910, फ्रांस 1910, स्वीडन 1930, जापान 1940, रूस 1950 तथा कनाडा 1950 आदि।

प्रो. रोस्टोव का कहना है कि **“यह अवस्था एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है और एक समाज स्वयं स्फूर्ति के आरम्भ होने के 60 वर्ष बाद परिपक्वता की अवस्था प्राप्त कर पाता है, परन्तु फिर भी स्पष्टतया, इस अवधि के लिये कोई निश्चित रूप से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।”** जब कोई देश परिपक्वता की अवस्था में आता है तो उसमें तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं

1. **कार्यकारी शक्ति की संरचना में परिवर्तन** - देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का सापेक्षिक महत्व कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप कृषि कार्यों में संलग्न जनसंख्या का अनुपात भी घट जाता है। लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहने के बजाय शहरों में रहना अधिक पसंद करने लगते हैं। शहरी जनसंख्या में प्रदर्शित तथा सफेदपोश श्रमिकों (लकों) का अनुपात साधारण श्रमिकों की तुलना में अधिक हो जाता है। श्रम शक्ति में जागरूकता और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के लिए श्रमिक संगठित हो जाते हैं।
2. **उद्यम की प्रकृति में परिवर्तन** - उद्यम की प्रकृति इस प्रकार बदलती है कि कठोर तथा परिश्रमी मालिकों का स्थान सभ्य तथा विनम्र प्रबन्धकों के हाथ में आ जाता है।
3. **नूतन आवश्यकताओं की भूख** - तीव्र औद्योगीकरण के चमत्कारों से समाज एक तरफ पर्याप्त रूप से लाभान्वित होता है तो दूसरी तरफ उनसे ऊब भी जाता है। फलतः और भी अधिक नूतनताओं की मांग

की जाती है जो पुनः परिवर्तन ला सकें।

5. **अत्यधिक उपभोग की अवस्था** - परिपक्वता की अवस्था प्राप्त होने के बाद अर्थव्यवस्था, अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करती है। अवस्था परिवर्तन का यह काल अधिक लम्बा नहीं होता है। इस अवस्था में अग्रगामी क्षेत्र अधिकतर **“टिकाऊ उपभोगीय वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने लगते हैं जिससे उपभोग का स्तर काफी ऊंचा उठ जाता है। मोटर कारों और घरेलू जीवन से सम्बद्ध अन्य उपकरणों का प्रयोग काफी मात्रा में होने लगता है। समाज का ध्यान उत्पादन से हटकर उपभोग अर्थात् लोगों के भौतिक कल्याण की ओर केन्द्रित हो जाता है।”** दूसरे शब्दों में, इस काल में पूर्ति की अपेक्षा मांग, उत्पादन की अपेक्षा उपभोग और आर्थिक विकास की अपेक्षा समाज के भौतिक कल्याण का महत्व अधिक बढ़ जाता है।

प्रमुख विशेषताएं – इस अवस्था की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. इस अवस्था में उपभोग का स्तर उच्चतम होता है।
2. औद्योगिक जनसंख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है।
3. टिकाऊ उपभोक्ता सामानों जैसे बिजली का सामान, रेफ्रिजरेटर, वातानुकूलन यंत्र व मोटरों आदि का उत्पादन व उपभोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगता है।
4. लगभग देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित हो जाती है।
5. इन परिवर्तनों के बाद समाज आधुनिक तकनीक में और विस्तृत परिवर्तन स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता है क्योंकि यह विकास की चरम अवस्था होती है।

परिपक्वता की अवस्था प्राप्त हो जाने के पश्चात एक अर्थव्यवस्था अपनी उत्पादन शक्तियां निम्नलिखित तीन दिशाओं में से किसी भी दिशा में लगा सकती है-

**प्रथम**, ब्राह्म प्रभाव व शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति का विस्तार करना।

**द्वितीय**, सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण तथा आय के समान वितरण के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना। इस प्रकार रोस्टोव के अनुसार कल्याणकारी राज्य की स्थापना इस बात का प्रतीक है कि समाज परिपक्वता की अवस्था को पार कर चुका है।

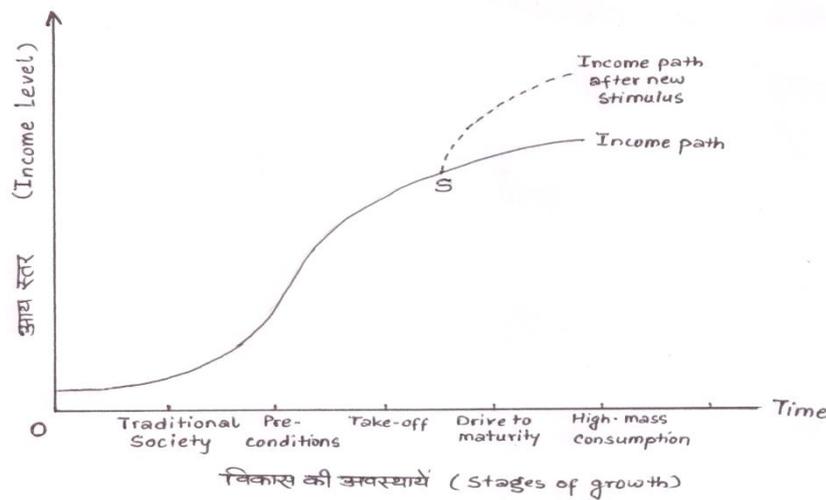
**तृतीय**, व्यक्तिगत उपभोग को बढ़ावा व प्राथमिकता देना, और इस दृष्टि से राष्ट्रीय साधनों को बड़ी मात्रा में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाना।

उल्लेखनीय यह है कि इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों अर्थात् दिशाओं में कोई एकरूपता देखने को नहीं मिलती। कोई देश उपरोक्त मार्गों में से किस मार्ग को अपनाएगा, यह निर्णय उस देश की सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक दशाओं पर अधिक निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार को चुना है तो अमेरिका द्वारा व्यक्तिगत उपभोग को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है।

इसके विपरीत इंग्लैण्ड तथा जापान कल्याणकारी राज्य की ओर अधिक चिंतनशील है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका 1920 में अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करने वाला पहला देश था। उसके बाद यह गौरव ग्रेट ब्रिटेन को 1930 में प्राप्त हुआ, तथा 1950 में जापान व पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों द्वारा यह अवस्था प्राप्त की गयी। साम्यवादी देश रूस 1953-55 के आस पास अर्थात् स्टालिन के संसार से विदा होने के बाद ही इस अवस्था को प्राप्त कर सका था।

**प्रो किन्डलबर्जर** का कहना है कि विकास की यह अवस्थाएं एक प्रकार से की शकल की भांति है। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट होता है। इसमें विकास का कार्य पहले बहुत धीरे से प्रारम्भ होता है, फिर क्रमशः जोर पकड़ता है और इसके बाद काफी तेजी के साथ बढ़ता रहता है और अन्त में एक निश्चित सीमा पर आकर विकास पथ शिथिल होने लगता है।



चित्र 4.1

बर्जर महोदय का कहना है कि वास्तव में रोस्टोव की विकास प्रक्रिया 'S' के रूप में मनुष्य के शरीर के विकास की भांति है जो शिशु से किशोर अवस्था तक एक गति से चलती है और फिर यौवन अवस्था की ओर तेजी के साथ अग्रसर होती है। लेकिन यह कहना कठिन है कि एक अवस्था में कितनी देर तक चलती रहेगी और 'S' बिन्दु पर पहुंचने के बाद उसे कौन सी नई शक्ति किस ओर नया मोड़ देगी।

#### 4.4.2 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचना

इनमें कोई सन्देह नहीं कि रोस्टोव द्वारा आर्थिक विकास की अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त क्रमबद्ध व तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों, विशेषकर मायर बाल्डविन साइमन कजनेटस, केर्यनक्रास, गरशेनक्रान, डरूमौण्ड, स्टीटन, प्रो. सैन और हबाकुक ने रोस्टोव के दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण माना है। प्रो. बैजमीन हिगीन्ज, रोस्टोव महोदय के समर्थक माने जाते हैं और उन्होंने इस विश्लेषण को सही और औचित्यपूर्ण ठहराया है। रोस्टोव के दृष्टिकोण की निम्न आधार पर आलोचना की गई है –

1. इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में बांटना सम्भव नहीं - प्रो. मायर का कहना है कि इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में न तो बांटना संभव है और न ही यह जरूरी है कि सभी देश एक ही प्रकार की अवस्थाओं में से होकर गुजरे। उनके शब्दों में “यह कहना कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था सदैव विकास के एक ही मार्ग को अपनाती है और उसका एक जैसा भूत और भविष्य होता है, अवस्थाओं के क्रम को आवश्यकता से अधिक सरलीकरण करना है।” प्रो. हबाकुक ने ऐतिहासिक दलील देते हुए कहा है कि अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया परम्परागत समाज की अवस्था में से बिना गुजरे ही पूर्व दशाओं की अवस्था में प्रवेश कर गये थे।
2. अवस्थाओं का क्रम भिन्न हो सकता है – गरशेनक्रान के अनुसार “प्रत्येक देश आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता अवश्य है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एक देश रोस्टोव द्वारा वर्णित अवस्थाओं में से ही होकर गुजरे। अवस्थाओं का क्रम अनियमित हो सकता है।”
3. अवस्थाओं में परस्पर-निर्भरता - कुजनेट्स तथा केयरनक्रास का कहना है कि रोस्टोव द्वारा वर्णित आर्थिक विकास की अवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर व्यापी हैं। उदाहरणार्थ एक अवस्था की विशेषताएं दूसरी अवस्था में भी देखने को मिलती हैं। न्यूजीलैंड, डेनमार्क आदि देशों में आत्म स्फूर्ति की अवस्था में भी कृषि का अत्यधिक विकास हुआ है जबकि रोस्टोव ने कृषिगत विकास को परम्परागत समाज की अवस्था में रखा है।
4. अवस्था का पता लगाने में कठिनाई - कुछ लोगों का कहना है कि कौन सा देश विकास की किस अवस्था में है इसकी जांच करने हेतु पर्याप्त सांख्यिकीय सूचनाओं का उपलब्ध होना संभव नहीं है। दूसरा इस बात का कैसे पता लगाया जाए कि किसी देश में अमुक अवस्था का काल पूरा हो चुका है और एक के बाद दूसरी अवस्था कब प्रारम्भ होगी।
5. आत्म पोषित विकास भ्रमोत्पादक विचार है - कुजनेट्स के अनुसार आत्म पोषित या आत्म निर्भर विकास का विचार भ्रमोत्पादक है। प्रथम, विशेषताओं की दृष्टि से यह आत्म स्फूर्ति की अवस्था के ही समान है क्योंकि दोनों अवस्थाओं के बीच की विभाजन रेखा स्पष्ट नहीं है। दूसरा, “कोई भी विकास शुद्ध रूप में आत्म निर्भर अथवा आत्म सीमित नहीं हो सकता क्योंकि उसके स्वयं को सीमित करने वाले कुछ प्रभाव सदैव बने रहते हैं। विकास तो एक निरन्तर संघर्ष है जिसे आत्म निर्भर कहना बहुत कठिन है।”
6. अत्यधिक उपभोग अवस्था काल क्रम के अनुसार नहीं - आलोचकों का कहना है कि विश्व के कुछ देश जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश किये बिना ही अत्यधिक उपभोग की अवस्था प्राप्त कर चुके हैं जो कि रोस्टोव के अवस्था कालक्रम के विरुद्ध है।

#### 4.5 भारत की विकास अवस्था

भारत किस अवस्था में है? निःसन्देह भारत विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को पार कर चुका है लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत वास्तव में आत्म स्फूर्ति की अवस्था प्राप्त कर चुका है और परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है? इस सम्बन्ध में कोई अंतिम निर्णय तब तक नहीं दिया जा सकता है जब तक कि इस सम्बन्ध में पाये जाने वाले विभिन्न विचारों का अध्ययन न कर लिया जाये। भारत आत्म स्फूर्ति की

अवस्था प्राप्त कर चुका है। प्रथम मत – स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त पंच वर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमि सुधार, शिक्षा का प्रसार, निर्माणकारी व सेवा उद्योगों की स्थापना, बचत व पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, निजी क्षेत्र के विपरीत सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग व्यय का बढ़ता हुआ प्रतिशत, विदेशी पूँजी का उपयोग और ग्रामीण क्षेत्र में शहरों की ओर तेजी के साथ प्रवास करती हुई जनसंख्या आदि तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि भारत विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को लांघ चुका है।

जहां तक **आत्म स्फूर्ति** की अवस्था का सम्बन्ध है **प्रो. रोस्टोव** के अनुसार इसकी **पहली शर्त** यह है कि बचत और विनियोग का अनुपात राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत पर ला दिया जाए और इसे दो या दो से अधिक दशकों तक कायम रखा जाए। भारत में 1960-61 की कीमतों पर राष्ट्रीय आय से निवेश का अनुपात 1950-51 में 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 1964-65 में 14.4 प्रतिशत हो गया था और घरेलू बचतों का अनुपात 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 10.5 प्रतिशत हो गया था, जो कि इस बात का प्रमाण है कि भारत जिसने रोस्टोव के अनुसार 1952 में आत्म स्फूर्ति में प्रवेश किया, 1962-65 में इस अवस्था को लांघ चुका था।

आत्म स्फूर्ति की **दूसरी शर्त** अग्रगामी क्षेत्रों का विधिवत् विकास होना है। इस दृष्टि से देश में 1964-65 तक औद्योगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र व तृतीयक क्षेत्र काफी विकसित हो चुके थे। उदाहरण के तौर पर कृषि उत्पादन सूचकांक 1950-51 में 45.6 था जो 1964-65 में बढ़कर 158.4 हो चुका था। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 73.5 से बढ़कर 186.9 हो गया था।

आत्म स्फूर्ति की **तीसरी शर्त** के अनुसार भारत के योजनाबद्ध विकास ने देश में एक ऐसा ढांचा तैयार कर दिया है जो आधुनिक क्षेत्र के विस्तार का आधार बन सकता है। संस्थानिक व सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी का अपनाया जाना और प्रशासकीय दक्षता व कर्तव्यपरायणता का बढ़ता हुआ स्तर इस बात का प्रमाण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था आत्म स्फूर्ति का अधिकांश शर्तों को पूरा करती है। आत्म स्फूर्ति की अवस्था अभी नहीं।

**विपरीत मत-** विपरीत मत रखने वाले विचारकों के अनुसार आत्म स्फूर्ति की उपरोक्त तीनों शर्तों की उपस्थिति मात्र से यह निष्कर्ष निकाल लेना कि भारत तीसरी योजना में आत्म स्फूर्ति कर चुका था, पूर्णतया सही नहीं है। **प्रो. रोस्टोव** के अनुसार भारत की आत्म स्फूर्ति का काल 1952 है। लेकिन सच तो यह है कि दूसरी योजना के अंतिम चरण तक देश, आत्म स्फूर्ति की पूर्व आवश्यकताओं के निर्माण कार्य में लगा हुआ था। इस आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने अकालिक आत्म स्फूर्ति का प्रयास किया।

उदाहरण के तौर पर 1950 से 1960 तक के काल के बीच शुद्ध राष्ट्रीय आय 3.8 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी है किन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 1.8 प्रतिशत वार्षिक रही जबकि जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत रही है। बचत व विनियोग की दर 7.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 11 प्रतिशत तक ही की जा सकी जो कि आत्म स्फूर्ति की आवश्यकता से काफी कम है। इतना ही नहीं, तीसरी योजना के अंतिम वर्ष (1965-1966) में राष्ट्रीय आय 5.6 प्रतिशत घट गयी और यह 1960-61 के स्तर पर आ गयी। घरेलू बचतों की दर 1965-1966 में 10.5 प्रतिशत से घटकर 1966-67 में 8.2 प्रतिशत और 1967-68 में 8 प्रतिशत रह गयी थी। अस्थिर विकास दर, कृषि

का अधिक महत्व, स्फीतिक दबाव, अपार निर्धनता और बढ़ती हुई बेरोजगारी इस बात का संकेत है कि भारत आत्म स्फूर्ति की अवस्था प्राप्त नहीं कर सका। आत्म स्फूर्ति की अवस्था आगे क्यों टलती गयी?

यहाँ आपको बताना यह आवश्यक है कि ध्यान रहे, हमारे अब तक के सम्पूर्ण नियोजन में कृषि उद्योग के विकास का एक प्रमुख आधार रहा है। प्रथम दो योजनाओं में कृषि क्षेत्र में प्रगति अवश्य हुई है परन्तु तीसरी और चौथी योजना में कृषि उत्पादन का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका। एक तरफ खाद्यान्नों के मूल्य बढ़े और दूसरी ओर आयातों पर निर्भरता में वृद्धि होती गयी। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 70 प्रतिशत वृद्धि का था जबकि योजना काल में केवल 40 प्रतिशत वृद्धि ही हो सकी। इस काल में बचत व विनियोग वृद्धि की दर आशा के अनुकूल नहीं रही। देश में होने वाली भयंकर मूल्य वृद्धि ने बचत व विनियोग दर, आयात निर्यात, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों आदि को बुरी तरह से प्रभावित किया है। सन् 1966-68 के दौरान प्रतिसार की ठंडी लहर ने अर्थव्यवस्था को एक और झटका दिया, जिसका कम्पन आज भी औद्योगिक क्षेत्र में देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक प्रकोप व आकस्मिक युद्धों में भी अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक भार बढ़ा दिया है। इस काल में कुशल श्रम शक्ति का निर्माण नहीं किया जा सका और न ही जनता में विकास व प्रगति के प्रति उत्साह व जागरूकता आदि देखने को मिली। योजनाएं केवल इसलिए चलती रहीं क्योंकि योजनाओं को चलाना था।

यद्यपि तीसरी योजना बचत तथा निवेश वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने में असमर्थ रही थी। किन्तु रोस्टोव द्वारा प्रस्तुत शब्दावली को स्वीकार करने पर चूंकि शुद्ध निवेश का प्रतिशत 10 से ऊपर हो चुका था, अतः उस आधार पर यह निष्कर्ष निकला जा सकता था कि भारत तीसरी योजना के दौरान आत्म स्फूर्ति को प्राप्त कर चुका था।

#### 4.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हैरोड डोमर ने आर्थिक के .....सहायक तत्व माने हैं।  
(चार, छः, सात)
2. फ्रेडरिक लिस्ट ने आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की ..... अवस्थाओं का उल्लेख किया है।  
(चार, छः, पांच)
3. रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्मस्फूर्ति का काल .....है।  
(1953, 1952, 1956)
4. उद्यमशीलता के लिए जोखिम उठानी पड़ती है और जोखिम सफलता का नाम है।  
(प्रथम, दूसरा, तीसरा)
5. ....विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को लांघ चुका है।  
(ब्रिटेन, अमेरिका, भारत)

#### बहुविकल्पीय प्रश्न

6. हैरोड-डोमर के चार आर्थिक विकास के तत्वों में से नहीं है

- A. जनसंख्या की वृद्धि पर  
B. औद्योगिक विकास की दर पर  
C. पूँजी उत्पाद अनुपात  
D. नये बाजारों का उपलब्ध होना
7. नव प्रवर्तन का सिद्धांत किसने दिया।  
A. शुम्पीटर  
B. मार्शल  
C. आर. टी. गिल  
D. उपरोक्त सभी
8. “पूँजी निर्माण आर्थिक विकास की एक पूर्व आवश्यकता है” किसने कहा?  
A. लिविंस्टीन  
B. शुम्पीटर  
C. पीगू  
D. नक्से
9. भारत विकास की अवस्थाओं को पार कर चुका है?  
A. प्रथम तीन  
B. एक से पांच  
C. प्रथम दो  
D. प्रथम पांच
10. रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्मस्फूर्ति का काल है?  
A. 1953  
B. 1952  
C. 1996  
D. 1956
11. आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक हैं?  
A. आर्थिक  
B. गैर आर्थिक  
C. उपर्युक्त दोनों  
D. कोई नहीं
12. ‘Communist Manifesto’ रचना है।  
A. कार्ल मार्क्स  
B. रोविंस  
C. फ्रेडरिक लिस्ट  
D. उपरोक्त में से कोई नहीं
13. प्रो. एशले की आर्थिक विकास की अवस्थाओं में से नहीं है।  
A. गृह व्यवस्था  
B. गिल्ड व्यवस्था  
C. शिल्ड व्यवस्था  
D. फैक्ट्री व्यवस्था
14. कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक विकास की कितनी प्रमुख आवश्यकताएं हैं  
A. चार  
B. पांच  
C. तीन  
D. दो
15. प्रो. बकर की आर्थिक विकास की अवस्थाओं में से नहीं है।  
A. गृह अर्थव्यवस्था  
B. शहरी अर्थव्यवस्था  
C. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था  
D. परम्परागत समाज
16. आर्थिक विकास के निर्धारक आर्थिक तत्वों में से नहीं है।  
A. अंतरराष्ट्रीय दशाएं  
B. प्राकृतिक साधन  
C. मानवीय साधन  
D. विदेशी पूँजी
17. जर्मन अर्थशास्त्री हिल्डेब्रांड ने विकास की तीन अवस्थाएं किस सन् में दीं?

- A.1984                      B. 1865  
C. 1866                      D. 1867

#### 4.7 सारांश

उपयुक्त प्रस्तुत विवेचन के अनुसार आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्व वृद्धि की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। वे एक दूसरे पर भी निर्भर करते हैं। आर्थिक तत्व आर्थिकेतर तत्व द्वारा प्रभावित होते हैं और उनको प्रभावित भी करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे वाइनर तथा मिर्डल के अनुसार आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्वों में भेद निरर्थक, भ्रमपूर्ण तथा असंगत है। इसीलिये इसको त्याग देना चाहिए। परन्तु हम इन अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि आर्थिक तथा आर्थिकेतर तत्वों का आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। आलोचनाओं के बावजूद आर्थिक विकास की इस समस्या का विधिवत ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रो. रोस्टोव को ही दिया जाता है। कुजनेट्स का मत है कि भले उसकी अवस्थाओं में कहीं कहीं भ्रम व दो बारगी के अंकुर नजर आते हैं तथापि इसका दृष्टिकोण आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

#### 4.8 शब्दावली

- प्राकृतिक साधन - प्राकृतिक साधनों से हमारा आशय उस प्रकृति प्रदत्त भौतिक साधनों से हैं जिन्हें मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता जैसे- भूमि, जल, समुद्री साधन, जलवायु, वर्षा आदि।
- मानवीय संसाधन या श्रम - मानवीय संसाधन से आशय किसी देश की जनसंख्या और उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता तथा उत्पादकता से होता है।
- पूँजी निर्माण- पूँजी निर्माण होने का अर्थ है प्रति वर्ष पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक में वृद्धि होना।
- तकनीकी प्रगति- तकनीकी प्रगति एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत नई तकनीक, नई मशीनें तथा कुशलता इत्यादि बातें सम्मिलित की जाती हैं।

#### 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। 1. चार, 2. पांच 3. 1952, 4. दूसरा, 5. भारत बहुविकल्पीय प्रश्न 6. D, 7. A, 8. D, 9.C,10. B, 11. C, 12. A, 13. C, 14. A,15. D 16. A, 17. A उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

#### 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

#### 4.11 सहायक अध्ययन सामग्री

- I Viner, "The Economic of Development" in The Economic of Undevelopment, (ed) A.N. Aggarwal and S.P. Singh,. Nurkse, op.cit, p - 1
- United Nations Mearures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.
- World Bank Development Report 1999-2000 pp. 232-233 Report 1983.
- H. I. Keenleyside in Dynamics of Development, (ed) G.Hambidge,
- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi,

#### 4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक आर्थिक वृद्धि क्या है? इसको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. किसी देश की आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक विकास में सामाजिक एवं संस्थात्मक परिवर्तनों के महत्व को समझाइए। वे अल्पविकसित देशों में विकास को कहां तक अवरूद्ध कर रहे हैं।
4. आर्थिक विकास में गैर आर्थिक तत्व क्या हैं ? आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वे किस प्रकार सहायता अथवा बाधा पहुंचाते हैं?
5. स्वयं स्फूर्ति अवस्था से आप क्या समझते हैं ? किसी देश के स्वयं स्फूर्ति अवस्था पर पहुंचने के लिये आवश्यक शर्तें बतलाइए?
6. रोस्टोव की आर्थिक संवृद्धि की अवस्थाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। भारत की वर्तमान विकास की अवस्था का वर्णन कीजिए।

---

## इकाई 5 - प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory)

---

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारूप
  - 5.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा
  - 5.3.2 श्रम विभाजन
  - 5.3.3 विकास प्रक्रिया
  - 5.3.4 विकास का क्रम
  - 5.3.5 स्थिर अवस्था
- 5.4 रिकार्डों का विकास प्रारूप
  - 5.4.1 विकास प्रारूप की मान्यताएं
  - 5.4.2 विकास के दूत
  - 5.4.3 पूँजी संचय की प्रक्रिया
  - 5.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन
  - 5.4.5 स्थिर अवस्था
- 5.5 विकास प्रारूप की गणितीय व्याख्या
- 5.6 प्रतिष्ठित विकास प्रारूप की आलोचनाएं
- 5.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 5.8 सारांश
- 5.9 शब्दावली
- 5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारूप से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि आर्थिक विकास क्या है? आर्थिक विकास का मापन की विधियाँ कौन-कौन सी हैं। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या-क्या हैं।

इस इकाई में प्रतिष्ठित विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि प्रमुख प्रतिष्ठित विकास प्रारूप कौन-कौन से हैं, इसके अन्तर्गत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में एडम स्मिथ एवं रिकार्डों के विकास प्रारूप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रतिष्ठित विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेंगे, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके विभिन्न प्रारूपों का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेंगे।

## 5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ✓ बता सकेंगे कि प्रतिष्ठित विकास प्रारूप कितने प्रकार का होता है।
- ✓ एडम स्मिथ का विकास प्रारूप को समझ सकेंगे।
- ✓ रिकार्डों के विकास प्रारूप को जान सकेंगे।
- ✓ प्रतिष्ठित विकास प्रारूप का गणितीय विवेचन कर सकेंगे।

## 5.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारूप

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थव्यवस्था का अत्यन्त सरल रूप में क्रमबद्ध ढंग से विवेचन किया गया है। उनका प्रमुख ध्येय आर्थिक नीति निर्धार के लिए ऐसे मार्ग का निर्धारण करना जिनसे राष्ट्रों की सम्पत्ति को बढ़ाया जा सके।

प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ डेविड रिकार्डों द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के ये प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते हैं।

एडम स्मिथ प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अगुवा माने जाते हैं। उनका 1776 में प्रकाशित होने वाला महान ग्रन्थ 'An Enquiry in to the nature and Causes of wealth of nations' स्वयं में ही आर्थिक विकास के महत्व का एक स्पष्टीकरण है। एडम स्मिथ के प्रगति के सिद्धान्त की प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार वर्गीकृत की जा सकती हैं :

### 5.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा

एडम स्मिथ के विचार में आर्थिक विकास के लिए मुक्त साहस एवं मुक्त प्रतिस्पर्धा अत्यन्त आवश्यक है। इनके द्वारा (प्रकृति) निर्धारित न्याय पूर्ण वैधानिक पद्धति ही विकास करने का सर्वोच्च साधन है। न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति का अर्थ उस व्यवस्था से लिया गया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अपने हितों का अन्य सदस्यों के दबाव से मुक्त रहकर अनुसरण करने के अधिकार को संरक्षण प्राप्त होता है। अर्थव्यवस्था को अदृश्य हाथों द्वारा यदि संचालित होने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाय तो समन्वित एवं लाभकारी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। अदृश्य हाथों से स्मिथ का तात्पर्य मुक्त प्रतिस्पर्धा में उदय हुई शक्तियों से है जो अर्थव्यवस्था में आवश्यक समायोजन स्थापित करती रहती है।

### 5.3.2. श्रम विभाजन

श्रम विभाजन द्वारा श्रम की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण द्वारा श्रमिकों की निपुणता में वृद्धि होती है। वस्तुओं के उत्पादन में लगने वाले समय में कमी होती है तथा अच्छी मशीनों एवं प्रसाधनों का अविष्कार होता है। उत्पादकता में वृद्धि होती है। परन्तु श्रम-विभाजन द्वारा उत्पादकता बढ़ाने की प्रक्रिया की तीन परिसीमाएँ हैं:

- A) श्रम विभाजन का प्रारम्भ मानव की एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा पर होती है।
- B) श्रम विभाजन के प्रारम्भ अथवा विस्तार के लिए पूँजी संचयन होना आवश्यक है। पूँजी संचयन के लिए बचत होना और बचत अथवा पूँजी मितव्ययता से बढ़ती है तथा फिजूलखर्ची एवं दुराचरण से घटती है।
- C) तीसरी सीमा बाजार का आकार होती है। यदि बाजार संकुचित है और उत्पादको को अपने उत्पादन के अतिरेक (Surplus) के विनिमय के अवसर सीमित हो तो व्यक्ति एक रोजगार में रहकर आवश्यकता से अधिक उत्पादन नहीं करेगा। इस प्रकार संकुचित बाजार में श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त नहीं होंगे।

### 5.3.3 विकास प्रक्रिया

पूँजी संचयन की व्यवस्था होने से श्रम विभाजन का उदय होता है जिससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं जनसंख्या में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया धीरे, चलती है और अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैल जाती है एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्रों के विकास को प्रभावित करता है और अन्ततः अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्र विकसित हो जाते हैं।

1. **मजदूरी का निर्धारण** - मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों एवं पूँजी पतियों की सौदा करने की क्षमता पर निर्भर करता है।
2. **लाभ निर्धारण** - विकास की प्रक्रिया में लाभ एवं मजदूरी उस समय तक घटते बढ़ते रहते हैं जब तक कि जनसंख्या में आवश्यकतानुसार पर्याप्त वृद्धि होती है। अन्ततः अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है जहाँ पूँजी संचयन एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया दोनों ही रूक जाते हैं।
3. **लगान का निर्धारण** - भूमि पर एकाधिकार का प्रतिफल लगान होता है।

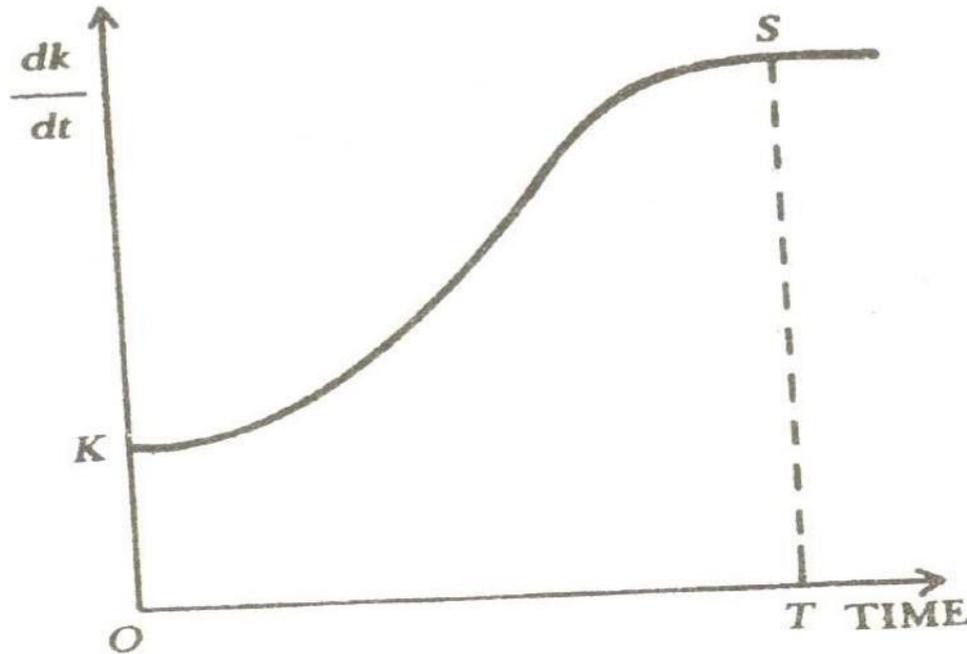
4. विकास के दूत - एडम स्मिथ के अनुसार कृषक उत्पादन तथा व्यापारी आर्थिक उन्नति तथा विकास के दूत है।

### 5.3.4 विकास का क्रम

विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम कृषि का विकास होता है। कृषि के बाद निर्माण प्रक्रिया का अन्त में वाणिज्य का विकास होता है। यद्यपि स्मिथ ने अपने विचार आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में प्रकट नहीं किये परन्तु उनके विचार का प्रभाव बाद में आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर पड़ता है। पूँजी संचयन का महत्व, स्थिर अर्थव्यवस्था का विचार तथा विकास प्रक्रिया में सहकारी हस्तक्षेप के तिरस्कार को बाद के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी मान्यता प्रदान की है।

### 5.3.5 स्थिर अवस्था

यह प्रगतिशील अवस्था सदैव नहीं चलती रहती है। प्राकृतिक साधनों की कमी विकास को रोकती है। जब अर्थव्यवस्था अपने साधनों का पूर्ण विकास कर लेती है ऐसी समृद्ध अवस्था में श्रमिकों में रोजगार के लिए प्रतिस्पर्धा मजदूरी कम करके निर्वाह स्तर पर ला देती है और व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा लाभों को कम कर देती है। जब एक बार लाभ घटते हैं तो घटते ही चले जाते हैं जिससे निवेश – निवेश भी घट जाता है – पूँजी संचय भी रूक जाता है – जनसंख्या स्थिर हो जाती है – लाभ न्यूनतम होने लगते – मजदूरी जीवन निर्वाह स्तर पर पहुँच जाती है – प्रति व्यक्ति आय स्थिर हो जाती है और अर्थव्यवस्था गतिहीनता की अवस्था में पहुँच जाती है। जिसे एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था का नाम दिया।



चित्र 5.1

चित्र से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था T समय में K से S तक बढ़ती है T के बाद अर्थव्यवस्था S से सम्बद्ध स्थिर अवस्था को प्राप्त होती है जहाँ आगे वृद्धि नहीं होती मजदूरी जितना बढ़ती है कि लाभ शून्य हो जाता है। पूँजी

संचय रूक जाता है तथा जनसंख्या अपरिवर्तित रहती है। एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था को दूर करने के उपाय नहीं बताये। एडम स्मिथ का स्थिर अवस्था का विचार अल्प विकास से बिल्कुल ही अलग है। स्मिथ के अनुसार, स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु पर होती है, जहाँ सभी संसाधनों का पर्यावरण अनुकूल समुचित विदोहन किया जाता है, जबकि अल्प विकास अर्थव्यवस्था में स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु से पूर्व में ही गतिरोध की अवस्था में पहुंच जाती है।

## 5.4 रिकार्डों का विकास प्रारूप

डेविड रिकार्डों के विकास सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक ‘**The Principles of political Economy and Taxation**’ (1917) में जगह पर अव्यवस्थित रूप में व्यक्त किये गये। इनका विश्लेषण एक चक्करदार मार्ग है। यह सीमान्त और अतिरेक नियमों पर आधारित है। शुम्पीटर ने कहा रिकार्डों ने कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया केवल स्मिथ द्वारा छोड़ी गयी कड़ियों को अपेक्षाकृत एक अधिक कठोर रूप से जोड़ने का प्रयास अवश्य किया। इसी तरह का विचार **मायर एवं वाल्डविन** आदि का था।

### 5.4.1 विकास प्रारूप की मान्यताएं

1. अनाज के उत्पादन में समस्त भूमि का प्रयोग होता है और कृषि में कार्यशील शक्तियाँ उद्योग में वितरण निर्धारित करने का काम करती है।
2. भूमि पर घटाते प्रतिफल का नियम क्रियाशील है।
3. भूमि की पूर्ति स्थिर है।
4. अनाज की माँग पूर्णतया अलोचशील है।
5. पूँजी और श्रम परिवर्तनशील आगत (Inputs) है।
6. समस्त पूँजी समरूप है।
7. पूँजी में केवल चल पूँजी ही शामिल है।
8. तकनीकी ज्ञान की स्थिति दी हुई है।
9. सभी श्रमिकों को निर्वाह मजदूरी दी हुई है।
10. श्रम की पूर्ति कीमत स्तर पर दी हुई है।
11. श्रम की माँग पूँजी संचय पर निर्भर करती है। श्रम की माँग और श्रम की पूर्ति कीमत दोनों ही श्रम की सीमान्त उत्पादकता से स्वतन्त्र होती है।
12. पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
13. पूँजी संचय लाभ से उत्पन्न होती है।

### 5.4.2 विकास के दूत

इन मान्यताओं के आधार पर रिकार्डों ने कहा कि अर्थव्यवस्था का विकास तीन वर्गों के परस्पर सम्बन्धों पर आधारित है। वे हैं।

1. भूमिपति
2. पूँजीपति
3. श्रमिक

जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है। इन तीन वर्गों में कुल राष्ट्रीय उत्पादन क्रमशः लगान, लाभ और मजदूरी के रूप में बाँट दी जाती है।

### 5.4.3 पूँजी संचय की प्रक्रिया

रिकार्डों पूँजी संचय लाभ से होता है यह जितना बढ़ेगा पूँजी निर्माण के काम आता है। पूँजी संचय दो घटकों पर निर्भर करेगा। प्रथम बचत करने की क्षमता और द्वितीय बचत करने की इच्छा जैसा कि रिकार्डों ने कहा दो रोटियों में से मैं एक बचा सकता हूँ और चार में से तीन यह बचत (अतिरिक्त) भूमिपति तथा पूँजीपति ही करते हैं। जो लाभ की दर पर निर्भर करता है।

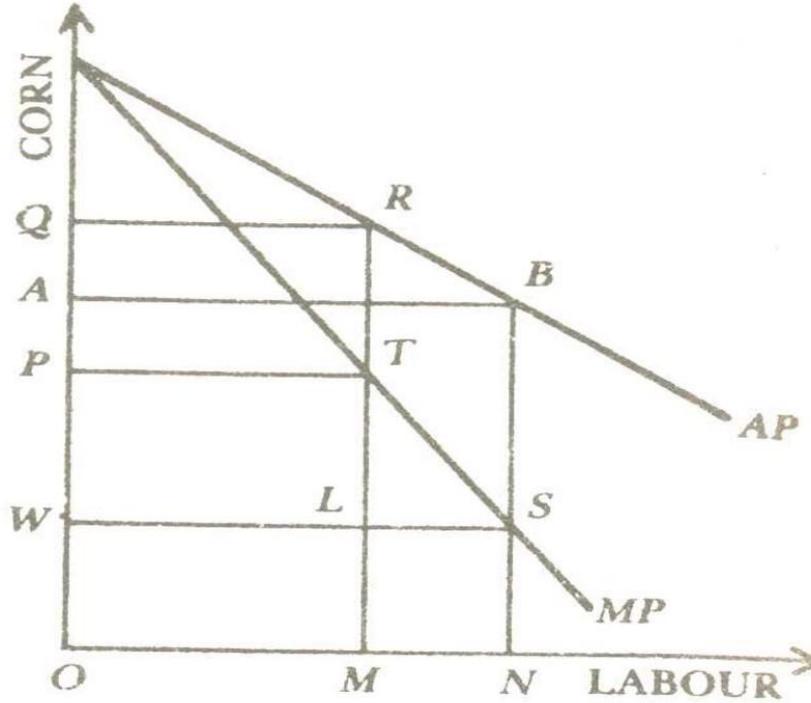
1. **लाभ दर :- लाभ की दर = लाभ/मजदूरी** अर्थात् जब तक लाभ की दर धनात्मक रहेगी, पूँजी संचय होता रहेगा। वास्तव में लाभ मजदूरी पर निर्भर करता है, मजदूरी अनाज की कीमत पर अनाज की कीमत सीमान्त भूमि की उर्वरकता पर। इस प्रकार लाभ तथा मजदूरी में विपरीत सम्बन्ध है। कृषि में सुधार से उर्वरकता बढ़ती है इससे उपज बढ़ेगी कीमत कम होगी निर्वाह मजदूरी कम होगी परन्तु लाभ बढ़ेगा पूँजी संचय अधिक होगा इससे श्रम की माँग बढ़ेगी मजदूरी अधिक होगी लाभ घटेगा।
2. **मजदूरी में वृद्धि :- रिकार्डों** यह बातते है कि पूँजी संचय विभिन्न परिस्थितियों में लाभ को ही कम करेगा। मजदूरी बढ़ेगी तो मजदूर निर्वाह की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी जिससे मूल्य बढ़ेगा। मजदूर उपभोग की वस्तुएँ प्रमुख रूप से कृषि वस्तुएँ होती है। ज्यों, जनसंख्या बढ़ेगी उपज की माँग बढ़ेगी उपजाऊ काश्त में वृद्धि होगी मजदूरी की माँग बढ़ेगी मजदूरी बढ़ेगी अनाज की कीमत बढ़ेगी। लाभ कम हो जायेगा। लगान बढ़ जायेगा जो अनाज कीमत में हुई वृद्धि खपा लेगा। ये दोनों विराधी प्रवृत्तियाँ अंत में पूँजी संचय कम कर देती है।
3. **अन्य उद्योगों में भी लाभों की कमी :-** रिकार्डों के अनुसार “*किसानों के लाभ अन्य सब व्यापारियों के लाभों को नियमित करते है। क्योंकि हर क्षेत्र के लिए आगत (Input) कृषि क्षेत्र से आता है।*”

### 5.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन

रिकार्डों के अनुसार “*आर्थिक विकास उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर पर निर्भर करता है इसलिए वह उत्पादन के बढ़ाने और अनुत्पादक उपभोग में कमी करने पर जोर देता है।*”

1. **कर :-** कर सरकार के हाथ में पूँजी संचय का साधन है रिकार्डों के अनुसार करों को केवल दिखावटी उपभोग को कम करने के लिए ही लगाना आवश्यक होता है अन्यथा इनसे निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. **बचत :-** बचत पूँजी संचय के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाभ की दरों को बढ़ाकर, वस्तुओं के मूल्य कम करने व्यय तथा उत्पादन से की जाती है।
3. **मुक्त व्यापार :-** रिकार्डों मुक्त व्यापार के पक्ष में है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए मुक्त व्यापार महत्वपूर्ण तत्व है।



चित्र 5.2

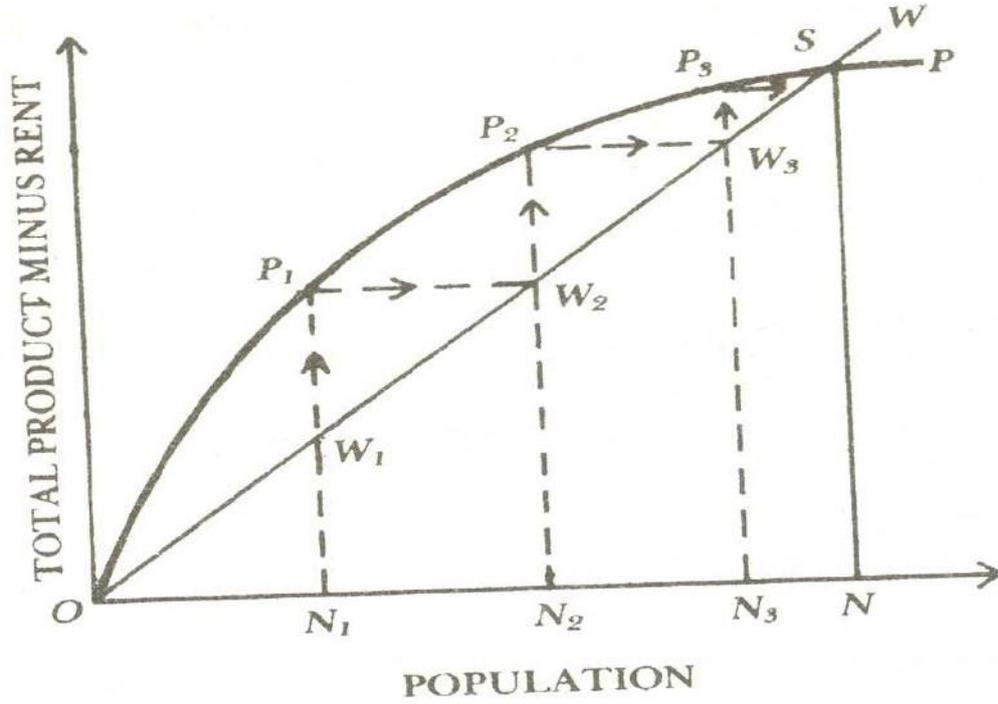
रिकार्डों के मॉडल को रेखाचित्र में व्यक्त किया गया है अनाज की मात्रा अनुलम्ब अक्ष कृषि में लगाई गई श्रम की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर मापते हैं। श्रम के औसत उत्पादन को AP वक्र द्वारा सीमान्त उत्पादन को MP वक्र श्रम की OM मात्रा से OQRM अनाज का कुल उत्पादन होता है। आयताकार क्षेत्र PQRT लगान को व्यक्त करता है जो AP तथा MP का अन्तर है। निर्वाह मजदूरी दर OW पर श्रम की पूर्ति वक्र WL लोचदार है कुल मजदूरी बिल OMLW है कुल लाभ WPTL है जो कुल उत्पादन (OQRM)- मजदूरी लगान (OQRT+OWLM) से प्राप्त होता है।

आर्थिक विकास होने पर कुल उत्पादन बढ़ता है अनाज की माँग एवं कीमत बढ़ती है भूमि पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होने से लगान बढ़ता जाता है और लाभ कम होता है। अतः में बढ़ी श्रम की मात्रा तथा लगान लाभ समाप्त कर देते हैं। चित्र में यह स्थिति ON श्रम लगाने पर कुल उत्पादन OABN है जिसमें OWSN मजदूरी कोष तथा WABS लगान है तथा लाभ शून्य है।

### 5.4.5 स्थिर अवस्था

जिस अवस्था में लाभ शून्य होता है = पूँजी संचय रूक जाता है = जनसंख्या स्थिर होती है = मजदूरी

निर्वाह स्तर पर होती है = लगान ऊँचा होता है आर्थिक विकास रूक जाता है। इस अवस्था को रिकार्डों ने स्थिर अवस्था का नाम दिया है



चित्र 5.3

रिकार्डों ने चित्र में स्थिर अवस्था की गति को बताया है जो उसकी वितरण की धारणा को स्पष्ट करता है। जनसंख्या क्षैतिज अक्ष पर और कुल उत्पादन घटा लगान को अनुलम्ब अक्ष पर वक्र OP जनसंख्या फलन है जो TP- किराया (rent) को जनसंख्या फलन प्रदर्शित करता है।

जनसंख्या बढ़ने के साथ साथ OP वक्र घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से चपटा होता जाता है। किरण OW वास्तविक मजदूरी (Real Wage) को मापती है। जनसंख्या और OW रेखा का अन्तर कुल मजदूरी बिल मापता है। इस प्रकार  $ON_1$ ,  $ON_2$  तथा  $ON_3$  जनसंख्या स्तरों पर  $W_1N_1$ ,  $W_2N_2$  और  $W_3N_2$  क्रमशः कुल मजदूरी बिल है। तथा  $W_1N_1$  मजदूरी बिल पर लाभ  $P_1W_1$  है जो कुल उत्पादन घटाया मजदूरी बिल से प्राप्त होता है  $P_1W_1$  से निवेश बढ़ता है श्रम की माँग  $ON_2$  हो जाती है तो मजदूरी बिल  $W_2N_2$  अब लाभ घटकर  $P_2W_2$  हो जाता है अब निवेश बढ़ने पर श्रम की माँग  $ON_2$  पर बढ़ने से मजदूरी बिल बढ़ता है लाभ घटकर  $P_2W_3$  हो जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था जब तक S बिन्दु पर नहीं पहुँच जाती और स्थिर अवस्था प्रारम्भ हो जाती है लाभ बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं और समस्त उत्पादन लगान मजदूरी में वितरित हो जाता है।

## 5.5 विकास प्रारूप की गणितीय व्याख्या

बैजमीन हिगीन्ज ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास मॉडल की विभिन्न कड़ियों को समीकरणों के माध्यम से भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है

1. उत्पादन फलन (Production Function)- कुल उत्पादन भूमि, श्रम व पूँजी की उपलब्ध मात्रा और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$O = F (L, K, Q, T) \dots\dots\dots(1)$$

जहाँ

O= कुल उत्पादन

F = फलन अथवा निर्भर करता है

L = श्रम शक्ति की मात्रा, K उपलब्ध भूमि की मात्रा

Q = पूँजी का स्टाक

T = प्रयुक्त तकनीक का स्तर

2. पूँजी संचय से प्राविधिक प्रगति को बढ़ावा मिलता है। (Capital accumulation promotes technological progress) पूँजी संचय के बढ़ने के साथ प्राविधिक प्रगति का स्तर बढ़ता है अर्थात् दोनों परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित है। अर्थात्

$$T = T (I) \dots\dots\dots (ii)$$

यहाँ

T = प्राविधिक प्रगति

I = विनियोग

3. निवेश लाभ की मात्रा पर निर्भर करता है। (Investment depends on profits) देश में निवेश की मात्रा पूँजी पति को प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। लाभ जितने अधिक होंगे विनियोग भी उतने ही अधिक होते चले जायेंगे। यहाँ निवेश से अभिप्रायः पूँजी में वास्तविक शुद्ध वृद्धि (net addition to the stock of capital) से है। अर्थात्

$$I = DQ = I(R) \dots\dots\dots (iii)$$

4. लाभ श्रम की पूर्ति और तकनीकी स्तर पर निर्भर करता है

$$R = R(T, L) \dots\dots\dots (iv)$$

यहाँ

R= लाभ

T = तकनीकी का स्तर

L = श्रम शक्ति का आकार

5. (The size of the labor force depends on the size of wage fund)

$$L = L(W) \dots\dots\dots (v)$$

यहाँ

L = श्रम शक्ति की मात्रा

W = मजदूरी कोष

6. मजदूरी कोष, विनियोग की मात्रा पर निर्भर करता है। (The wage fund depends on the level of investments)

$$w = W (I).....(vi)$$

यहाँ

W = मजदूरी कोष

I = विनियोग की मात्रा

7. कुल उत्पादन, कुल लाभ तथा मजदूरी कोष का योग होता है। (Total output equals to profits plus wages)

$$O=R+W.....(vii)$$

यहाँ

O = कुल उत्पादन

R = कुल लाभ

W = मजदूरी कोष

## 5.6 प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएं

1. **अवास्तविक विकास प्रक्रिया :-** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा विकास प्रक्रिया को स्थैतिक माना है अर्थात् जिससे सन्तुलन के आस पास ही परिवर्तन होता है तथा एक रूपता युक्त नियमित निरन्तर प्रगति होती है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास एकरूप व निरन्तर न होकर रूक – रूक का झटकों में होती है।
2. **अवास्तविक मान्यताएँ :-** प्रतिष्ठित विकास सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या एवं उत्पत्ति हास नियम पर आधारित है, जबकि ये दोनों ही सिद्धान्त दोषपूर्ण है।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को न समझ पाना एक बड़ी भूल है।
4. मध्यम वर्ग की उपेक्षा इनके द्वारा की गई और बचतों का सम्पूर्ण श्रेय पूँजी पतियों व भूमिपतियों को प्रदान किया जबकि पूँजी संचय के लिए बचतों में माध्यम वर्ग के वेतनभोगी वर्ग का बड़ा योगदान रहता है।
5. सरकारी हस्तक्षेप की इनके द्वारा उपेक्षा की गई जबकि 1936 के बाद निर्बाधावादी नीति का परित्याग कर दिया गया और सरकारी हस्तक्षेप नीति को अर्थव्यवस्था के विकास में लागू किया जाने लगा है।
6. इस विचारधारा के प्रारूप में परिवर्तित उत्पादन तकनीकों व उन्नत प्रौद्योगिकी को कम महत्व दिया गया जो उचित नहीं है।

## 5.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. The Principles of Political economy and Taxation पुस्तक किसने लिखी?

अ. एडम स्मिथ

ब. रिकार्डो

स. माल्थस

द. जे. बी. से।

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री है-  
 अ. एडम स्मिथ                      ब. रिकार्डो                      स. माल्थस                      द. सभी।
3. रिकार्डो ने स्थैतिक या स्थिर दशा को किस रूप में माना है :  
 अ. निराशा का                      ब. खुशी का                      स. उदासीनता का                      द. कोई नहीं।
4. एडम स्मिथ की गतिहीन अर्थव्यवस्था की विचार किस आधुनिक विकास प्रारूप में मिलता है-  
 अ. हैरोड                      ब. मीड                      स. महालनोबिस                      द. जॉन रॉबिन्सन।

### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एडम स्मिथ का विकास प्रारूप क्या है?
2. रिकार्डो के विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएँ क्या हैं?
3. रिकार्डो के विकास प्रारूप की मुख्य बातें क्या हैं?
4. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारूप की प्रमुख आलोचना कीजिए।

## 5.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के इस प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते हैं।

## 5.9 शब्दावली

- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री- एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्डो, जे. एस. मिल आदि।
- विकास दूत- (1) भूमिपति (2) पूँजीपति तथा (3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है।
- स्थिर अवस्था- अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति जहाँ लाभ शून्य तक गिर जाए और पूँजी-संचय बिल्कुल रुक जाएगा।

## 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

1. ब. रिकार्डो। 2. द. सभी। 3. ब. खुशी का। 4. अ. हैरोड।

## 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

- एम.एल.झिंगन (2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

---

### 5.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

---

- Agarwal, R. C.: “Economics of Development and Planning” , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: “Economics of Development and Planning” Vishal Publishing Co., Delhi, 2010
- अग्रवाल ए. एन., (2006) “इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)” आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), “इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया”, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), “इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट”, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली ।

---

### 5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारूप की गणितीय विवेचना कीजिए?
3. एडम स्मिथ और रिकार्डो के आर्थिक विकास के प्रारूप की विवेचना कीजिए?

---

## इकाई 6 - मार्क्स सिद्धांत (Karl Marx's Theory)

---

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप
  - 6.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
  - 6.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव
  - 6.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप की विशेषताएं
  - 6.3.4 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
  - 6.3.5 पूँजीवादी संकट
- 6.4 संवृद्धि के चरण
- 6.5 गणितीय रूप में मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप
- 6.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप की आलोचना
- 6.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 6.8 सारांश
- 6.9 शब्दावली
- 6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 6.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारूप से सम्बन्धित यह छोटी इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि आर्थिक विकास क्या है? आर्थिक विकास का मापन की विधियाँ कौन-कौन सी हैं। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या-क्या हैं। इस इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अन्तर्गत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारूप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कार्ल मार्क्स विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेंगे, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेंगे।

## 6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ✓ बता सकेंगे कि कार्ल मार्क्स का विकास प्रारूप क्या होता है।
- ✓ अतिरेक मूल्य का सिद्धांत को समझ सकेंगे।
- ✓ कार्ल मार्क्स के विकास प्रारूप की प्रमुख विशेषताएँ को जान सकेंगे।

## 6.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप (Marxian Model of Economic Development)

कार्ल मार्क्स उन प्रभावशाली विचारकों में से एक हैं जिसने स्वयं जो कुछ लिखा उससे कहीं अधिक उनके विचार को द्वारा लिखा गया है। मार्क्स को पूँजी के पतन एवं साम्यवाद के उदय का देवता कहा जाता है। मार्क्स ने समस्त विषयों से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक के **Das Capital** में दिये। यहाँ पर हम मार्क्स के उन्हीं विचारों का विश्लेषण करेंगे जो आर्थिक विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। इनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करते हैं।

### 6.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है। *“It is not the consciousness of men that determines their existence, but on the contrary their social existence determines their consciousness”* मार्क्स अनुसार ऐतिहासिक घटनाएँ समाज के विभिन्न वर्गों के बीच लगातार आर्थिक संघर्ष का परिणाम हैं और इस संघर्ष का मुख्य कारण ‘उत्पादन की विधि’ और ‘उत्पादन के सम्बन्धों’ के बीच विरोध का पाया जाना है। मार्क्स के अपने शब्दों में *“सामाजिक परिवर्तनों का कारण उत्पादन एवं विनिमय की रीतियों में निहित है। संसार की समस्त राजनीतिक क्रियाएँ एवं घटनाएँ जैसे युद्ध आन्दोलन उपद्रव आदि आर्थिक कारणों से उत्पन्न होता है।”* मार्क्स द्वारा आर्थिक कारणों को समाज का सर्वोपरि तत्व माना

गया है जो अन्य सभी तत्वों को नियन्त्रित करता है।

### 6.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव

उत्पादन सम्बन्धों द्वारा समाज की वर्ग संरचना (Class Structure) का प्रकार निर्धारित होता है। मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजों (केवल समाजवाद के अन्तर्गत स्थापित वर्गहीन समाज को छोड़कर) में दो वर्गों से बनती है प्रबल एवं निर्देश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीड़ित वर्ग होता है।

जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते हैं और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। मार्क्स के अनुसार समस्त इतिहास में इस चक्र का अनुसरण होता रहता है।

### 6.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप की विशेषताएं (Capitalistic of Marxian Model of Economic Development)

मार्क्स के पूँजीवादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. **उत्पादन के साधन (Factors of Production)** - मार्क्स ने श्रम को उत्पत्ति का सर्वोपरि साधन माना इन्होंने पूँजी तथा साहस को भी मान्यता दी। पूँजी के अधिक प्रयोग से तकनीकी प्रगति सम्भव है जिससे लाभ बढ़ेगा फिर यही अधिक विनियोग उत्प्रेरणाओं को जन्म देगा।
2. **निवेश (Investment)** - निवेश पर और यह लाभ अतिरिक्त मूल्य पर निर्भर करता है। एक तरफ निवेश वृद्धि से लाभ बढ़ेगा तो दूसरी तरफ अतिरिक्त मूल्य बढ़ने लगता है।
3. **संवृद्धि और गिरावट (Growth and Downfall)** - लाभों के बढ़ने की इस रीति से जहाँ पूँजीपति अधिक समृद्धि वही श्रमिकों का निरन्तर शोषण से उनकी गरीबी और भी व्यापक होने लगती है। **मार्क्स के शब्दों में "पूँजीपति एक बड़ी चमकादड़ (vampire) है जो दूसरे के खून पर जिन्दा रहता है और जितना अधिक खून चूसता है उतना ही और अधिक खून चूसने के लिए उतावला होता जाता है।"**

अन्त में यह पूँजीपति छोटे-छोटे पूँजीपतियों (उत्पादकों) का अन्त करके प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद के स्थान पर एकाधिकारात्मक पूँजीवाद (Monopolistic Capitalism) की स्थापना करते हैं। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवाद अपनी कब्र स्वयं खोदता है।

4. **चक्रीय उच्चावचन** - मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में चक्रीय उच्चावचन (आर्थिक संकट) अवश्यम्भावी है यह तीन कारणों से है।

i. **लाभों के गिरने की प्रवृत्ति** - लाभ अतिरिक्त बढ़ने के लिए पूँजीपति श्रम बचत उपाय अपनाते हैं जिससे उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन लागत दोनों शुरू में ही बढ़ते हैं परन्तु बढ़ी मात्रा की माँग

कम होती है क्योंकि जनसंख्या का अधिकतम भाग श्रमिक है जो मजदूरी जीवन निर्वाह के स्तर के बराबर पाता है जिससे लाभ की मात्रा गिरने लगती है।

ii. **असन्तुलन उत्पादन वृद्धि (Unbalanced production Growth)** - उत्पादन प्रक्रिया में असन्तुलन के कारण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न हो जाता है। **मार्क्स ने जे. बी. से** के प्रसिद्ध नियम **“पूर्ति अपनी माँग स्वयं पैदा कर लेती है”** को स्वीकार नहीं किया।

iii. **अल्पोपभोग (Under Consumption)** - मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में जिन दो वर्गों को बताया प्रथम पूँजीपति जिनकी संख्या कम तथा उपभोग प्रवृत्ति न्यून दूसरा श्रमिक वर्ग जो उच्च उपभोग प्रवृत्ति होने के बावजूद कम मजदूरी के कारण उपभोग कम करता है इससे राष्ट्रीय उत्पादन से कम होता है और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

### 6.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)

मार्क्स का अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त पूँजीवाद के अन्तर्गत होने वाली आर्थिक विकास प्रक्रिया का आधार है मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में जनसंख्या दो वर्गों में विभक्त रहती है पूँजीपति जो उत्पादन के समस्त साधनों (प्रसाधन एवं प्राकृतिक साधन) पर अधिकार रखता है तथा श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम शक्ति को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति श्रम को उसकी उत्पादन क्षमता से कम मूल्य देता है।

उदाहरणार्थ यदि श्रमिक 10 घण्टे कार्य करता है और पूँजीपति केवल 6 घण्टे के श्रम के बराबर मजदूरी दी जाती है। इन 4 घण्टों के श्रम के मूल्य को पूँजीपति लाभ लगान और ब्याज के रूप में हड़प लेता है। मार्क्स ने इस अदत्त (Unpaid) राशि को ही **‘अतिरेक मूल्य’** का नाम दिया।

पूँजीपति का प्रमुख उद्देश्य इस अतिरेक मूल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह

- (1) श्रमिकों से अधिक घण्टे कार्य लेना
- (2) मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना
- (3) कम मजदूरी देना
- (4) श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना।

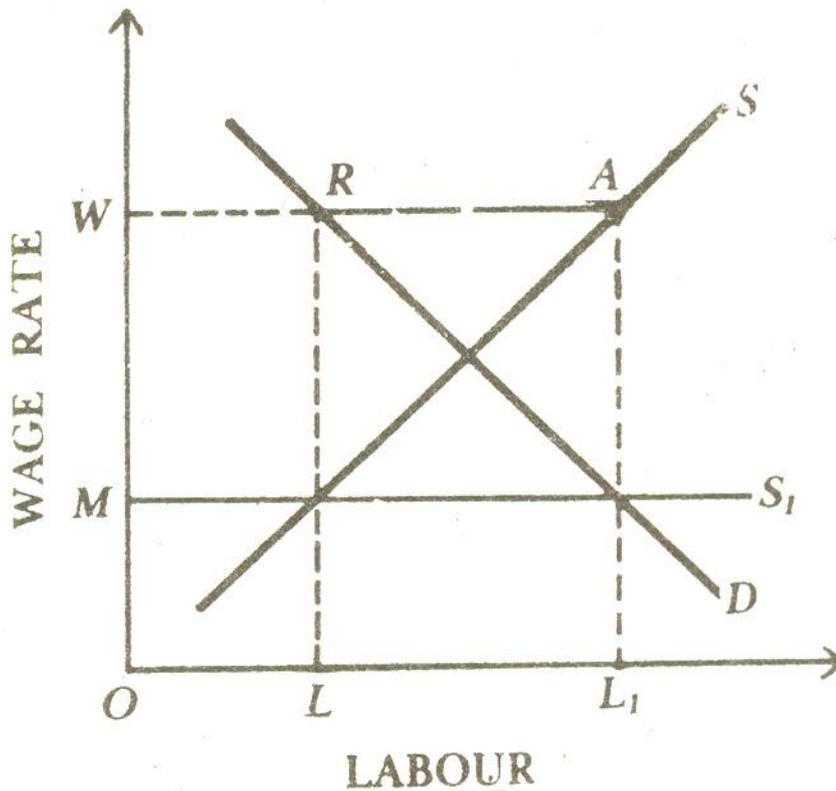
सम्मिलित है। वह इससे सफल भी हो जाता है क्योंकि उसके पास बड़ी मात्रा में **सुरक्षित औद्योगिक सेना (Industrial reserve army or surplus manpower)** उपलब्ध है जिसका नाजायज फायदा वह श्रमिकों के शोषण के रूप में उठाता है।

पूँजी की मात्रा भी लाभों को निर्धारित करती है। जैसा कि **मार्क्स** का कहना है, **“पूँजी वह मृत श्रम है, जो एक मांसखोर जन्तु की भाँति जीवित श्रम का खून चूसकर ही जीवित रहती है और वह जितना अधिक श्रम को चूसती है उतना ही अधिक जीवित रहती है।”** लाभ की उत्पत्ति को समझाने तथा मजदूरी एवं लाभ के सम्बन्ध का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स ने पूँजी को स्थिर पूँजी तथा परिवर्ती पूँजी में विभक्त किया है।

स्टॉक या कच्चे माल या उपकरण में निवेश पूँजी को जो श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है, मार्क्स स्थिर पूँजी (c) कहते हैं। मजदूरी या प्रत्यक्ष निर्वाह के रूप में श्रम शक्ति को खरीदने में लगी पूँजी को वह परिवर्ती पूँजी (v) कहता है। परिवर्ती पूँजी ही अतिरेक मूल्य का प्रमुख स्रोत है, जबकि मशीनों का मूल्य धीरे-धीरे वस्तु में चला जाता है। अतिरेक मूल्य को (s) द्वारा दिखाया गया है।

इस प्रकार वस्तु का कुल मूल्य = स्थिर पूँजी (c) + परिवर्ती पूँजी (v) अतिरेक मूल्य (s),

या  $(c + v) + s$ । स्थिर पूँजी का परिवर्ती पूँजी से अनुपात  $c/v$  पूँजी की संगठित संरचना कहा गया है। अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की कोटि) को  $s/v$  के रूप में परिभाषित किया गया है अर्थात् अतिरेक मूल्य का परिवर्ती पूँजी से अथवा लाभों का मजदूरी से अनुपात की दर और पूँजी की संगठित संरचना का एक दूसरे के साथ उलटा तकनीकी प्रगति का प्रभाव सामान्य रूप से स्थिर पूँजी से परिवर्ती पूँजी का अनुपात बढ़ाने की दशा में पूँजी की संगठित संरचना को बदलने के लिए होती है। इसलिए प्रौद्योगिकीय प्रगति की प्रवृत्ति लाभ की दर (r) को घटाने की होती है क्योंकि  $c/v$  बढ़ती है, भले ही अतिरेक मूल्य की दर में कोई कमी न हो।



चित्र 6.1

मार्क्स के अनुसार परन्तु सक्रिय श्रम सेना के अनुपात में यह रक्षित सेना जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक इकट्ठा अतिरेक जनसंख्या का समूह होगा जिसकी विपत्ति श्रम की यन्त्रणा के उलट अनुपात में होगी। पूँजीपति संचय का यह निरपेक्ष सामान्य नियम है। औद्योगिक रक्षित सेना जितनी अधिक बढ़ी होती है, रोजगार पर लगे

श्रमिकों की स्थिति उतनी अधिक खराब होती है, पूँजीपति असन्तुष्ट तथा झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह भी ला सकते है और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते है। यह पूँजीवाद के अन्तर्गत जनसाधारण की बढ़ती विपत्ति का नियम है।

इसे चित्र में दिखाया गया है जहाँ श्रम शक्ति क्षैतिज अक्ष पर और मजदूरी दर अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए है। D श्रम का मांग वक्र है तथा S श्रम का पूर्ति वक्र OW मजदूरी दर पर औद्योगिक रक्षित सेना में RA (= L L<sub>1</sub>) के के बराबर वृद्धि होती है क्योंकि श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है। जब औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ती है तो पूँजीपति श्रम बचतकारी मशीनें लगाना प्रारंभ कर देते है तथा मजदूरी दर को कम करके न्यूनतम निर्वाह स्तर OM पर ले आते है ताकि वे अधिक अतिरेक मूल्य प्राप्त कर सकें।

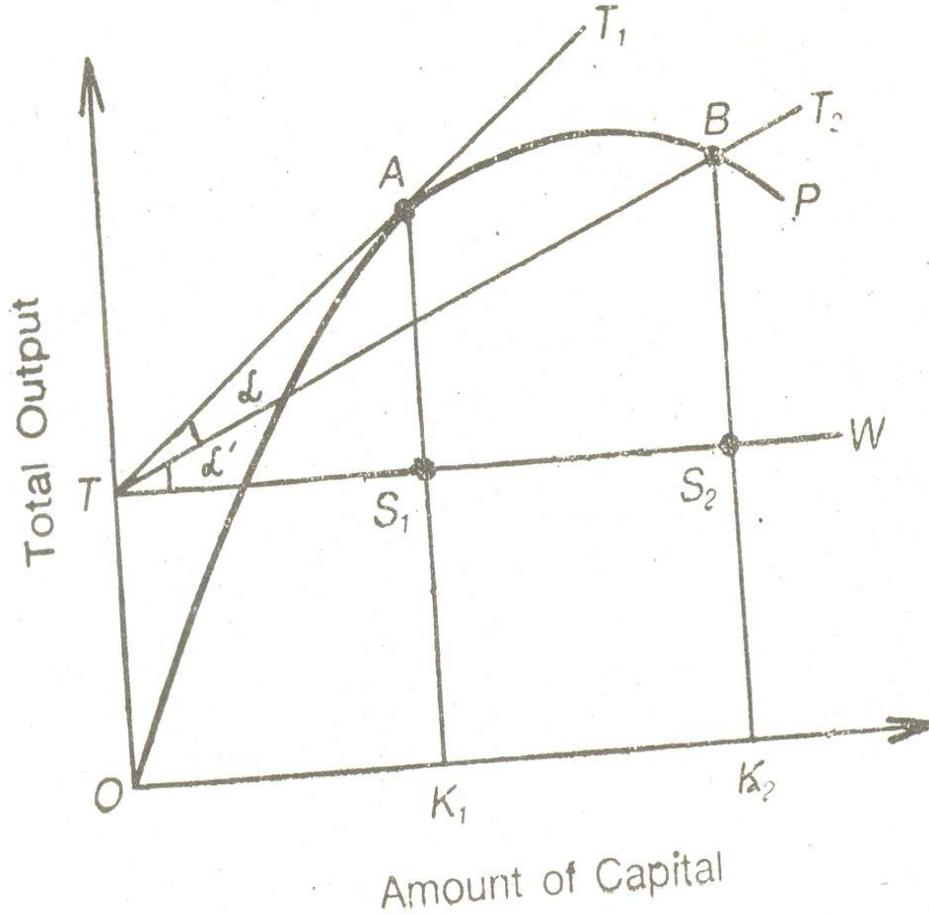
परन्तु जब पूँजीपति श्रमिकों के स्थान पर मशीनों को स्थानापन्न करता है तो वह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का वध करता है। अतिरेक मूल्य लगातार घटता चला जाता है। मार्क्स का विश्वास है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति से पूँजी की संगठित संरचना (c/v) बढ़ने लगती है। क्योंकि लाभों की दर का पूँजी की संगठित संरचना के साथ उलट सम्बन्ध है, इसलिए संचय के साथ लाभों की दर घटने लगती है। मार्क्स ने लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति की व्याख्या निम्नलिखित समीकरण के द्वारा की है।

$$r = s/c + v = s/v / c/v + 1$$

लाभों की दर (r) पूँजी की संगठित संरचना (c/v) के साथ विपरित बदलती है और अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की दर s/v) के साथ सीधा बदलती है, इसलिए लाभों की दर (r) अतिरेक मूल्य की दर s/v के साथ बढ़ती और पूँजी की संगठित संरचना c/v के साथ गिरती है। हम मार्क्स के लाभों की घटती दर के नियम की व्याख्या करते है। मार्क्स यह मानकर चलता है कि ज्यों ज्यों उद्यमी अधिक पूँजी लगाते है श्रम की पूर्ति को स्थिर रखते है।

चित्र में पूँजी की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर जबकि कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर दर्शाया गया है। कुल उत्पादन वक्र OP को प्रारंभिक बिन्दु से खींचा गया है जिसकी ढाल यह बताती है कि कुल उत्पादन बिन्दु A तक बढ़ती हुई दर से है और उसके पश्चात उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, अधिक पूँजी लगाने से तथा श्रम की पूर्ति स्थिर रख कर, घटता प्रतिफल नियम लागू होने लग जाता है। कुल मजदूरी OT के बराबर स्थिर मानी गई है और इसी कारण रेखा TW क्षैतिज अक्ष के समानान्तर खींची गई है जो कि यह बताती है कि अधिक पूँजी लगाने से श्रम की मात्रा स्थिर रहती है।

बिन्दु T से एक रेखा TT<sub>1</sub> खींची गई है जो कि कुल उत्पादन वक्र OP को बिन्दु A पर स्पर्श करती है जबकि बिन्दु A से एक लम्ब AK<sub>1</sub> खींचा गया है जो रेखा TW का S<sub>1</sub> पर काटता है। इसी प्रकार, बिन्दु T से एक अन्य रेखा TT<sub>2</sub> खींची गई है जो कुल उत्पादन वक्र को बिन्दु B पर नीचे से काटती है और बिन्दु B से लम्ब BK<sub>2</sub> खींचा गया है जो रेखा TW को S<sub>2</sub> पर काटता है।



चित्र 6.2

जब पूँजी की मात्रा  $OK_1$  मशीनों पर लगाई जाती है तब कुल उत्पादन  $AK_1$  के बराबर होता है और उद्यमियों को कुल लाभ  $AS_1$  के बराबर प्राप्त होता है जबकि लाभ की दर  $\tan \alpha = \frac{AS_1}{TS_1}$  है। यदि उद्यमी लाभ को बढ़ाने की आशा से  $OK_1$  से अधिक मात्रा पूँजी पर व्यय करते हैं तब लाभ की दर कम हो जाती है। स्पष्ट है कि  $OK_2$  पूँजी लगाने से लाभ की दर  $\tan \alpha' = \frac{BS_2}{TS_2}$  रह जाती है जो कि पहली लाभ दर  $\frac{AS_1}{TS_1}$  की अपेक्षा कम है। अतः अधिक पूँजी को मशीनों पर लगाने से लाभ की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि “जैसे- जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात् यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्वरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।”

### 6.3.5 पूँजीवादी संकट

लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए पूँजीपति मजदूरी घटाकर, कार्यकारी दिन को लम्बा करके और त्वरण इत्यादि के द्वारा शोषण की कोटी बढ़ाते हैं। परन्तु क्योंकि प्रत्येक पूँजीपति नई श्रम बचत तथा लागत घटाने की युक्तियों का प्रचलन करने में लगा रहता है, इसलिए कुल उत्पादन से श्रम का (अतः अतिरेक मूल्य का) अनुपात और भी कम हो जात है। लाभों की दर भी और घट जाती है। तब उत्पादन लाभदायक नहीं रह जाता। ज्यों ज्यों मनुष्यों का स्थान मशीनें लेती है, त्यों त्यों उपभोग कम होता जाता है और औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ जाती है। दिवाले निकलते हैं। प्रत्येक पूँजीपति मार्किट में वस्तुओं के ढेर बेचने का प्रयत्न करता है और इस प्रक्रिया में छोटी फर्मे गायब हो जाती हैं। पूँजीवादी संकट प्रारम्भ हो जाता है।

मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता तथा सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते हैं। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते हैं। ऐसा सदैव नहीं होता रहता। जल्दी ही पुनः प्रवर्तन प्रारम्भ हो जात है। कीमतों का निम्न स्तर, मजदूरी में कटौती, सट्टा संकटों की समाप्ति तथा पूँजी का नाश लाभों की दर को बढ़ाने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप नए निवेश होते हैं।

जैसाकि मार्क्स ने लिखा है, **“संकट सदा ही बढ़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है”** परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है। श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरेक मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता तथा पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान तथा तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादन के विकास का साक्षी है।

संकट की प्रत्येक अवधि में अधिक शक्तिशाली पूँजीपति कमजोर पूँजीपतियों का अधिकार छीन लेते हैं और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध बढ़ता है। और तब अनन्त में पूँजीवाद का प्रलय का दिन आ पहुँचता है जिसे सबसे अच्छे ढंग से मार्क्स के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, रूपान्तरण की इस प्रक्रिया के लाभों को हड़पने और उन पर एकाधिकार जमाने वाले पूँजीपतियों की निरन्तर घटती संख्या के साथ-साथ जनसाधारण की विपत्ति, दमन, दास्ता, अपमान तथा शोषण बढ़ते जाते हैं। परन्तु इसके साथ ही मजदूर वर्ग का विद्रोह भी बढ़ता है, जोकि ऐसा वर्ग है जिसकी संख्या बढ़ती रहती है और जोकि स्वयं पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया के ही ढाँचे द्वारा अधिक अनुशासित, संयुक्त तथा संगठित होता है।

पूँजी का एकाधिकार उत्पादन की विधि के लिए बन्धन बन जाता है। उत्पादन के साधनों को केन्द्रीकरण तथा श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते हैं। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते हैं।

पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और

प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

### 6.4 संवृद्धि के चरण (Stages of Growth)

मार्क्स द्वारा आर्थिक विकास कि अवस्थाओं की जो परिकल्पना की गयी है वे निम्न है

मौलिक अवस्था	आदिम अवस्था (Primitive Communication)
दूसरी अवस्था	दास समाज (Slave Society)
तीसरी अवस्था	सामन्तवादी समाज (Feudal Society)
चौथी अवस्था	पूँजीवाद (Capitalism)
पाँचवी अवस्था	साम्राज्यवाद (Imperialism)
छठी अवस्था	समाजवाद (Socialism)
अन्तिम	साम्यवाद (Communism)

### 6.5 गणितीय रूप में मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप (Equation Form of Marxian Growth Model)

मार्क्स के मॉडल का समीकरण रूप इस प्रकार है।

1. मार्क्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति कुल उत्पादन को भूमि, श्रम पूँजी और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर का परिणाम माना है। अर्थात्

$$O = F(L, K, Q, T) \dots \dots \dots (i)$$

2. प्राविधिक प्रगति विनियोग पर निर्भर करती है। अर्थात्

$$T = T(I) \dots \dots \dots (ii)$$

3. निवेश लाभ दर पर निर्भर करता है। अर्थात् :

$$I = I(R^1)$$

जहाँ

I = निवेश

R<sup>1</sup> = पूँजी पर प्रतिफल की दर

जहाँ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने निवेश को लाभ के बराबर अर्थात् पूँजीपति की आय के बराबर माना वही मार्क्स ने निवेश को पूँजी की प्रतिफल की दर पर निर्भर करता है बताया।

4. लाभ की दर वास्तव में लाभ पूँजी लागत का अनुपात है।

$$R^1 = \frac{O - W}{W + Q^1} = \frac{R}{W + Q^1} \dots \dots \dots (iv)$$

जहाँ

O = उत्पादन की मात्रा

Q = पूँजीगत वस्तुएँ

W = चल पूँजी

O - W = लाभ की मात्रा

5. मजदूरी निवेश के स्तर पर निर्भर करती है। अर्थात्

$$w = W (I) \dots \dots \dots (v)$$

6. रोजगार का स्तर निवेश की मात्रा पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$L = L (I/Q) \dots \dots \dots (vi)$$

7. उपभोग मजदूरी कोष पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$C = C(W) \dots \dots \dots (vii)$$

8. लाभ, तकनीक के स्वरूप और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$R = R \dots \dots \dots (viii)$$

9. उत्पादन की मात्रा लाभ और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$O = R + W \dots \dots \dots (ix)$$

10. अतः कुल उत्पादन, उपभोग और विनियोग के बराबर होगा। अर्थात्

$$O = C + I \dots \dots \dots (x)$$

11. अन्त में यह माना जा सकता है कि चल पूँजी की लागत का पूँजी के कुल स्टॉक से एक निश्चित सम्बन्ध (अनुपात) है। जिसे यदि U (User Cost) से प्रदर्शित किया जाए और यह मानते हुए कि 'U' का मूल्य दिया हुआ है तो समीकरण इस प्रकार होगा। इसमें तीन समानताएँ (and the three ideates)

$$O = R + W$$

$$O = C + I$$

$$O = U \cdot Q$$

प्रतिष्ठित तथा मार्क्स के विकास मॉडल में समानताये समीकरण नंबर (i) (ii) तथा (v) है। समीकरण (vi) देखने में समान है परन्तु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का 'L' से अभिप्राय श्रम शक्ति की कुल मात्रा से जबकि मार्क्स ने इसे रोजगार प्राप्त श्रम शक्ति माना है। समीकरण नंबर (iii) में मार्क्स के अनुसार विनियोग लाभ के स्तर पर नहीं लाभ की दर पर निर्भर करता है। दोनों विकास मॉडल तकनीकी प्रगति को लाभ में वृद्धि करने के लिए आवश्यक तत्व मानते है।

## 6.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारूप की आलोचना (Criticism of Karl Marx's Growth Model)

मार्क्स के विकास सम्बन्धी विचारों की आलोचना अग्रलिखित आधारों पर की जाती है।

### 1. झूठा पैगम्बर (False Prophet)

- (i) भृत्ति – मार्क्स का यह विचार कि पूँजी वादी अर्थव्यवस्थाओं में भृत्ति की दर जीवन निर्वाह स्तर के बराबर रखी जाती है सत्य सिद्ध नहीं हुआ वास्तविक भृत्ति आर्थिक विकास के साथ बढ़ा।
- (ii) समाजवाद का विकास मार्क्स के बताए गए ढंग के अनुसार नहीं हुआ।
- (iii) पूँजीवाद के शीघ्र पतन की धारणा गलत सिद्ध हुई।
- (iv) मार्क्सवाद का अनुकरण उन्ही देशों ने किया जो पूँजीवादी देशों से बहुत पीछे थे।

2. अतिरेक मूल्य अवास्तविक धारणा – पूँजीपति श्रमिकों से अतिरेक मूल्य के रूप में सम्पूर्ण लाभ हड़प लेता है एक विरोधाभास लिए हुए है जैसा मार्क्स ने स्वीकार किया है कि पूँजीपति श्रम बचत उपाय कभी स्वीकार नहीं करता। यही नहीं मार्क्स ने निरपेक्ष अवास्तविक मूल्यों पर जोर दिया जबकि व्यवहार में हमारा सम्बन्ध वास्तविक कीमतों से होता है।

3. गिरती हुई लाभ दर – मार्क्स के अनुसार जैसे विकास होता है वैसे ही वैसे पूँजी की प्रासंगिक (Organic) संरचना में वृद्धि होती है जो लाभ की दर को घटा देगी। परन्तु वह भूल गये तकनीकी नव प्रवर्तनों से पूँजी की बचत होती है। जिससे पूँजी उत्पाद अनुपातों में कमी उत्पादकता में वृद्धि के साथ मजदूरी तथा लाभ दोनों बढ़ता है।

4. तकनीकी प्रगति से रोजगार को बढ़ावा - तकनीकी प्रगति होने पर शुरू में बेरोजगारी होगी परन्तु दीर्घकाल में कुल माँग तथा आय स्तर को बढ़ाकर अपेक्षाकृत अधिक रोजगार उत्पन्न होगा।

5. बैजमीन हिगीन्ज के अनुसार मार्क्स का यह कथन कि समाजवाद सर्वप्रथम उन देशों में आयेगा जहाँ पूँजीवाद चरम सीमा पर होगा सर्वथा गलत सिद्ध हुआ।

6. सम्पूर्ण चक्रीय सिद्धान्त – मार्क्स की यह मान्यता गलत सिद्ध हुई कि पूँजी संचय से उपभोक्ता वस्तुओं की माँग और लाभों में कमी आती है। आर्थिक विकास तेज होने से कुल आय बढ़ाने के साथ मजदूरी बढ़ती है जिससे वस्तुओं की माँग बढ़ेगी।

7. मार्क्स पूँजीवाद के लचीलेपन को समझने में असफल रहें।

8. राज्य के योगदान की उपेक्षा करते हैं।

## 6.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

### वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मार्क्स के अनुसार वस्तु के मूल्य का आधार है:

अ. श्रम

ब. भूमि

स. पूँजी

द. खनिज सम्पदा

2. Das Capital पुस्तक के लेखक है:

3. अ.एडम स्मिथ                      ब. रिकार्डो                      स.माल्थस                      द. मार्क्स
4. 3.मार्क्स का अतिरेक मूल्य है:
- अ.प्रयोग मूल्य                      ब. प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर
- स. विनिमय मूल्य                      द. कोई नहीं।

### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्सवाद क्या है?
2. मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या किस प्रकार की है?
3. मार्क्स का अतिरेक मूल्य का सिद्धांत क्या है?
4. मार्क्स के विकास प्रारूप की मुख्य विशेषताएं क्या है?
5. मार्क्स ने पूँजीवाद के पतन के क्या कारण बताए हैं?

## 6.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि मार्क्स ने समस्त विषयों से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक के चपजंस में दिये। मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है। मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजों में दो वर्गों से बनती है प्रबल एवं निदेश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीड़ित वर्ग होता है। जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते हैं और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है।

इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है। इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। प्रबल एवं निदेश देने वाला वर्ग का प्रमुख उद्देश्य अतिरेक मूल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह (1) श्रमिकों से अधिक घण्टे कार्य लेना (2) मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना (3) कम मजदूरी देना (4) श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना। जो अतिरिक्त श्रमिकों के कारण होता है, पूँजीपति असन्तुष्ट तथा झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह नये श्रमिकों भी ला सकते हैं और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते हैं।

इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि **“जैसे- जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात् यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्रूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।”**

मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता तथा सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्केट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र

कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते हैं। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते हैं। ऐसा सदैव नहीं होता रहता। **“संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है।”** परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है।

श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरिक्त मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता तथा पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान तथा तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादन के विकास का साक्षी है। उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण तथा श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते हैं। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते हैं।

पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

## 6.9 शब्दावली

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री-** एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्डो, जे. एस. मिल आदि।
- **अतिरिक्त मूल्य -** अतिरिक्त मूल्य, श्रमिक के श्रम द्वारा बनायी गयी वस्तुओं के मूल्य तथा श्रमिक के मजदूरी के अन्तर के बराबर होता है।

$$v = d - e$$

यहाँ  $v$ = अतिरिक्त मूल्य,  $d$ =वस्तुओं की कीमत जो पूँजीपति को प्राप्त होती है,  $e$ =मजदूरी।

## 6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अ. श्रमा
2. द. मार्कसी
3. ब. प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर।

## 6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

## 6.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- अग्रवाल ए. एन., (2006) “इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)” आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), “इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया”, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), “इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट”, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- Agarwal, R. C.: “Economics of Development and Planning”, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007.
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: “Economics of Development and Planning” Vishal Publishing Co., Delhi, 2010.

## 6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्क्स के विकास प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. "मार्क्स के विकास प्रारूप पश्चिमी पूँजीवाद के उदभव एवं विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।" व्याख्या कीजिए?
3. मार्क्स के विकास प्रारूप गणितीय व्याख्या की विवेचना कीजिए?
4. कार्ल मार्क्स के विकास प्रारूप का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?

---

## इकाई 7 - शुम्पीटर सिद्धान्त (Schumpeterian Theory)

---

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप
- 7.4. शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना
- 7.5 शुम्पीटर का मॉडल तथा अल्पविकसित देश
- 7.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व
- 7.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण
- 7.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचना (सीमाये)
- 7.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 7.10 सारांश
- 7.11 शब्दावली
- 7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.14 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने मार्क्स के विकास प्रारूप के विषय में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में हम आर्थिक विकास के प्रारूप से संबंधित शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगे। परम्परावादी विचारधारा तथा कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्धान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर हासमान नियम तथा जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अर्न्तनिहित विरोधाभाषों के कारण पूँजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विश्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त है। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है। शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में नवप्रवर्तन को महत्वपूर्ण माना है। प्रस्तुत मॉडल के अध्ययन से आप विकास के शुम्पीटर मॉडल को भेली-भांति समझ सकेंगे।

## 7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह समझ सकेंगे कि -

- ✓ अर्थिक विकास का क्या अर्थ है।
- ✓ शुम्पीटर का विकास प्रारूप किस पर आधारित है।
- ✓ शुम्पीटर के विकास प्रारूप के प्रमुख तत्व क्या है।
- ✓ चकीय उच्चावचन से क्या अर्थ है। यह आप ठीक प्रकार से बता सकेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास की असतत् प्रक्रिया का क्या अर्थ है।
- ✓ नवप्रवर्तनों की क्या भूमिका है। इससे अर्थव्यवस्था के संबंध में अध्ययन कर सकेंगे।
- ✓ पूँजी, लाभ एवं ब्याज का क्या महत्व है।
- ✓ पूँजीवादी विकास की चकीय प्रक्रिया क्या है।
- ✓ पूँजीवादी के विनाश की क्या प्रक्रिया है।
- ✓ शुम्पीटर के विकास मॉडल की क्या सीमायें हैं।

## 7.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप

शुम्पीटर ऑस्ट्रेलिया के मोराविया प्रान्त (जो आजकल जैकोस्लोवेकिया में है) में पैदा हुये थे। उन्होने रूस ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कोलाम्बिया व अमेरिका के हावर्ड विश्वविद्यालयों में पढ़ाया उनके विकास के सिद्धान्तों को हम तीन पुस्तकों से लेते हैं :

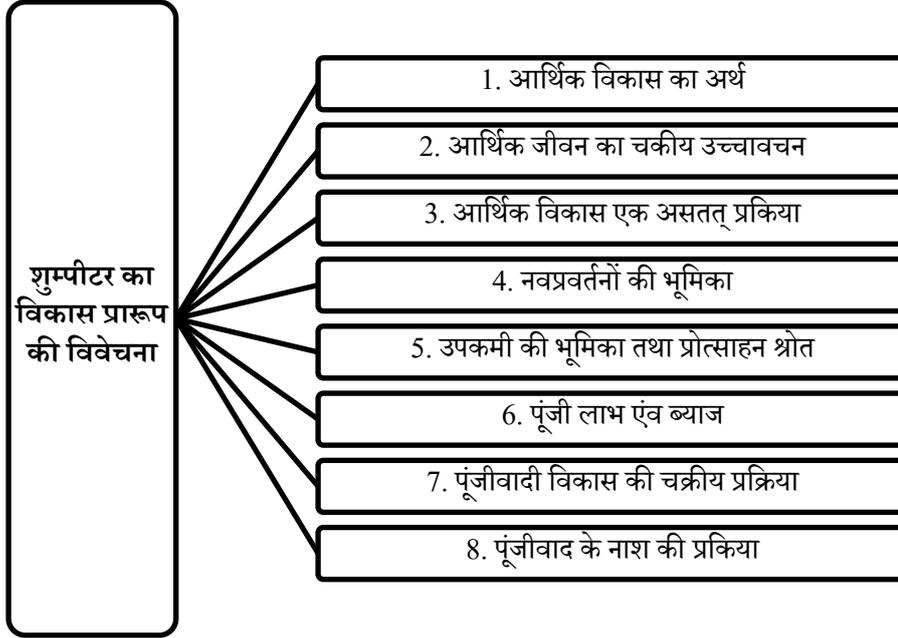
1. The Theory of economic development - 1912
2. Business cycles (2 Volumes, 1939)
3. Capitalism, socialism and democracy

बेन्जामिन हिगिन्स के अनुसार शुम्पीटर 20वीं सदी में विकास मॉडल देने वाले प्रथम अर्थशास्त्री थे। आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम में शुम्पीटर का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परावादी विचार-धारा तथा कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्धान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर हासमान नियम तथा जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अतर्निहित विरोधाभासों के कारण पूँजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विश्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त है। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से समझ सकेंगे कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है।

शुम्पीटर के अनुसार “आर्थिक विकास वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक तथा असतत् परिवर्तन है। अर्थात् संतुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है।”

1. **शुम्पीटर के विकास प्रारूप का इतिहास** - जोसेफ एलोइ शुम्पीटर (Josepn Alois Schumpiter) ने पहली बार 1911 में जर्मनी भाषा में प्रकाशित ‘**The Theory of Economic Development**’ में अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसका अंग्रेजी संस्करण 1934 में प्रकाशित हुआ। बाद में ‘**Business cycles**’ (1939) और ‘**Capitalism, Socialism and Democracy**’ (1942) में इस सिद्धान्त को परिष्कृत एवं परिवर्धित किया गया। इन्होंने विकास के सम्बन्ध में पूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। शुम्पीटर के विकास प्रारूप का आर्थिक जगत में महत्वपूर्ण स्थान है। शुम्पीटर के मॉडल में प्रतिष्ठित मॉडलों से भिन्नता है परन्तु यह प्रतिष्ठित मॉडलों से ज्यादा प्रभावपूर्ण है। इन्होंने साहसी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।
2. **शुम्पीटर के विकास प्रारूप की मान्यताएं** - शुम्पीटर का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है
  1. शुम्पीटर ने ऐसी अर्थव्यवस्था की परिकल्पना की है जहां पूर्ण प्रतियोगिता है जो स्थिर साम्य की अवस्था है।
  2. स्थिरावस्था साम्य जहां, जहां न तो अधिक लाभ की स्थिति है और न तो हानि की स्थिति है न बचत है न निवेश है और न ही बेरोजगारी की स्थिति है। इन सारी चीजों को शुम्पीटर ने एक आर्थिक चक्र से बताया है। जो कृमिक रूप से चलता रहता है। चकीय प्रक्रिया में एक समान उत्पादन होता रहता है।
  3. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकास नवप्रवर्तनों पर निर्भर करता है। और नवप्रवर्तन का कार्य उद्यमी के ऊपर निर्भर करता है।
  4. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को एक असतत् चलने वाली प्रक्रिया माना है।

## 7.4 शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना



### 7.4.1 आर्थिक विकास से अर्थ

आपको शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के लिए आर्थिक विकास के अर्थ को जानना आवश्यक शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास से हमारा अभिप्राय आर्थिक जीवन में घटित होने वाले केवल उन्ही परिवर्तनों से हैं जिनको उपर से लादा नहीं जाता हैं। बल्कि वे स्वयंभूत प्रेरणाओं से भीतर से ही प्रकट होते हैं।

### 7.4.2 आर्थिक जीवन का चकीय उच्चावचन

शुम्पीटर आर्थिक विकास की प्रक्रिया की ब्याख्या चकीय प्रवाह (Circular flow) से प्रारम्भ करते हैं। जो बिना विनाश के निरंतर चलती रहती हैं। अर्थात् जो प्रति वर्ण एक ही तरह से उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति करता रहता है। जिस प्रकार जीवों में रक्त का संचरण होता है। इस वृत्तीय प्रवाह में प्रत्येक वर्ष उसी ढंग से वहीं वस्तुये उत्पादित होती है। आर्थिक प्रणाली में कहीं प्रत्येक पूर्ति के समान मांग प्रतीक्षा करती हैं तथा प्रत्येक मांग के लिए समान पूर्ति/ दूसरे शब्दों में, समस्त आर्थिक क्रियाएं एक समय समस्त अर्थव्यवस्था में पुनरावृत्ति करती हैं।

शुम्पीटर के लिए वृत्तीय प्रवाह एक सरिता है। जो कि श्रम शक्ति और भूमि पर निरन्तर प्रवाह हो रहे झरनों की संतुष्टि में रूपान्तरण किया जाये। उनके अनुसार विकास वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक तथा अनिरन्तर परिवर्तन संतुलन की फलन है जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देती है। शुम्पीटर के अनुसार “अर्थव्यवस्था स्थिर संतुलन में रहती है तथा स्थिर संतुलन में अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता मूलक संतुलन में रहती है। अर्थात् निम्नलिखित स्थितियां पायी जाती है।”

1. उत्पादन की मांग उत्पादन की पूर्ति,  $D=S$
2. कीमत = औसत लागत,  $P=AC$

3. लाभ = शून्य,  $P=0$
4. ब्याज की दर = लगभग शून्य,  $R_i = \text{Just } 0$
5. बेरोजगारी = नहीं के बराबर,

$D = \text{Demand}$ ,  $S = \text{Supply}$ ,  $P = \text{Profit}$

$R = \text{Rate of interest}$ ,  $N = \text{unemployed}$

### 7.4.3 आर्थिक विकास एक असतत् प्रक्रिया (Economic development is a discontinuous process)

ऊपर के अध्ययन से आप समझ गए होंगे कि आर्थिक विकास एक चक्रिय प्रक्रिया है। शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को वृत्तीय प्रवाह का असतत् विचलन माना है। उनका विकास प्रारूप यह है कि - आर्थिक विकास इस वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक तथा असत् परिवर्तन है अर्थात् सन्तुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है। तो वृत्तीय प्रवाह में बाधा या विचलन किस रूप में होता है शुम्पीटर के अनुसार यह बाधा या विचलन नव प्रवर्तनों के रूप में आती है।

### 7.4.4 नवप्रवर्तनों की भूमिका

अब आप यह समझ चुके हैं कि शुम्पीटर ने अपने मॉडल में आर्थिक विकास को असतत् प्रक्रिया माना है, अब हम नवप्रवर्तनों की भूमिका का अध्ययन करेंगे।

1. नवप्रवर्तनों के रूप शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन निम्न प्रकार हो सकता है।
  - a. किसी नवीन वस्तु का उत्पादन करना।
  - b. उत्पादन की किसी नवीन प्रविधि का प्रचलन होना नये बाजारों की खोज होना।
  - c. कच्चे माल के लिए नये पूर्ति श्रोतों का पता लगाना।
  - d. एकाधिकार स्थापित करने की तरह किसी उद्योग के नये संगठन को कार्यान्वित करना।
2. नवप्रवर्तनों के कार्य (Role of Innovator)- शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास का कार्य स्वतः नहीं होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयास व जोखिम के साथ शुरू करना होता है। यह कार्य नवप्रवर्तक अर्थात् उद्यमी करता है। पूँजीपति नहीं। पूँजीपति केवल पूँजी प्रदान करता है जबकि उद्यमी उसके प्रयोग का निदेशन करता है। शुम्पीटर का कहना है कि साहसी के सम्बन्ध में स्वामित्व नहीं बल्कि नेतृत्व अधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः साधारण प्रबन्धकीय योग्यता वाले व्यक्ति में जोखिम उठाने व अनिश्चतता वहन करने की योग्यता नहीं होती। यह कार्य उद्यमी द्वारा किया जाता है इस प्रकार उद्यमी शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त की केन्द्रीय शक्ति है। साहसी विकास का मुख्य प्रेरक श्रोत है। वह नवीनताओं का सृजनकर्ता है उत्पादन की तकनीक में कान्ति का अधिष्ठाता है और बाजारों के विस्तार का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। **“साहसी अथवा उद्यमी की तुलना युद्ध की व्यूह रचना करने वाले उस निडर व कुशाग्र बुद्धि वाले कमाण्डर से की जा सकती है, जो लड़ाकू फौज में प्रतिक्षण**

साहस, रणकौशल व उत्साह की भावना भरता रहता है।” शुम्पीटर के शब्दों में “स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी बहाव के साथ तैरता है, गतिशील अर्थव्यवस्था में उसे बहाव के विपरीत तैरना होता है। साहसी विकास मंच का नेता है अन्य उसके अनुगामी होते हैं। वह स्वाभिमानी तथा विवकेशील होता है। उसमें जूझने की प्रवृत्ति होती है। वह जीतने का संकल्प रखता है। और उसमें अपने आपको जीतने दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रबल इच्छा होती है। वह केवल लाभ के लिए ही जोखिम नहीं उठाता बल्कि सफलता प्राप्त करना भी उसका एक लक्ष्य होता है।”

#### 7.4.5 उद्यमी की भूमिका, तथा प्रेरित करने वाले तत्व

अब तक के अध्ययन से आप उद्यमी के भूमिका तथा कार्यों से परिचित हो गए हैं। अब आप उद्यमी की भूमिका को प्रेरित करने वाले तत्व के विषय में अध्ययन करेंगे। उद्यमी को मुख्य रूप से तीन बातें प्रेरित करती हैं :

1. नवीन वाणिज्य साम्राज्य की स्थापना करने की लालसा।
2. अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इच्छा
3. अपनी शक्ति तथा प्रवीणता के प्रयोग करने की प्रसन्नता।

उद्यमी को अपना आर्थिक कार्य करने के लिए दो चीजों की आवश्यकता है। **प्रथम** - नई वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता। **द्वितीय** - ऋण के रूप में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण की शक्ति अर्थात् बैंक साख की सुविधा। शुम्पीटर की धारणा थी कि समाज में तकनीकी ज्ञान का एक ऐसा भंडार विद्यमान रहता है। जिसे अभी तक खोला नहीं गया है। और इसका प्रयोग पहले उद्यमी द्वारा किया जाता है।

इस तरह, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिवर्तन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है और यह सक्रियता स्तर नये उद्यमियों के प्रकट होने तथा षाखा निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।

#### 7.4.6 पूँजी, लाभ एवं ब्याज (Capital Profit and interest)

शुम्पीटर के अनुसार पूँजी केवल वह स्तर है जिसके द्वारा उद्यमी जिन वस्तुओं को चाहता है। उनको अपने नियंत्रण में रखता है। अन्य शब्दों में पूँजी उत्पादन के साधनों को नये प्रयोगों की ओर ले जाने अर्थात् उत्पादन को नया मोड़ देने का साधन है। उनके अनुसार लाभ लागतों का अन्तर है।

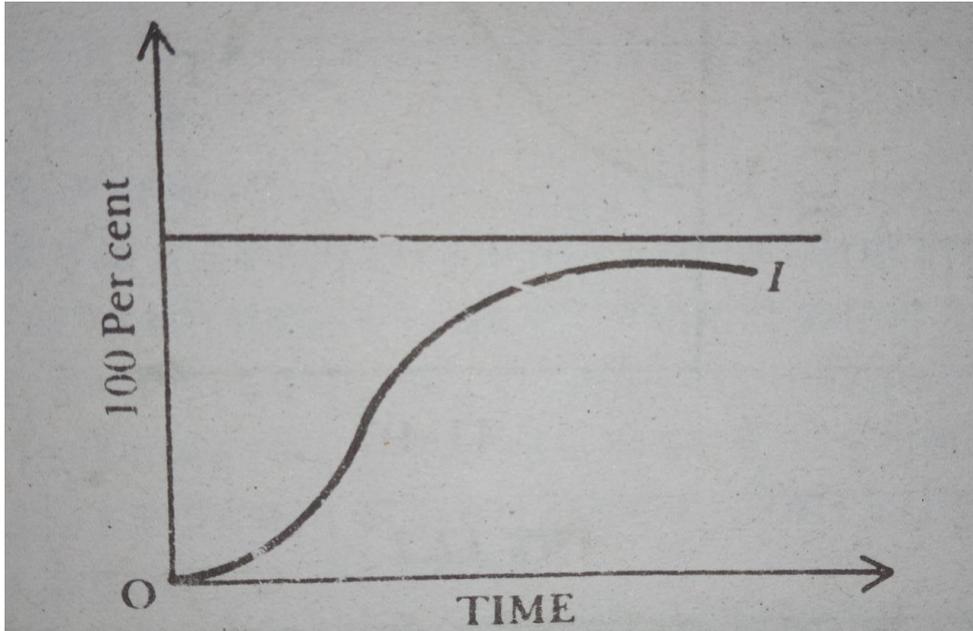
शुम्पीटर के अनुसार - प्रतियोगी संतुलन में प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन लागत के बराबर होती है। अतः लाभ नहीं उत्पन्न होते। नवप्रवर्तन से होने वाले गत्यात्मक परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होते हैं। वे उतनी देर तक बने रहते हैं। जब तक कि नवप्रवर्तन सामान्य नहीं हो जाते। पूँजी और लाभ की तरह शुम्पीटर ब्याज को भी विकास की देन मानता है।

यह वर्तमान उपभोग का भविष्य के उपभोग पर अधिमान है। परन्तु लाभ की तरह यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है अर्थात् यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है बल्कि यह विकास पर

रूकावट की तरह है। यह उद्यमीय लाभ पर एक कर की तरह है।

**वृत्तीय प्रवाह को तोड़ना** - शुम्पीटर का मॉडल वृत्तीय प्रवाह को एक नवप्रवर्तन से भंग करने से प्रारम्भ होता है। जो एक उद्यमी लाभ कमाने के लिए एक नई वस्तु के रूप में करता है। शुम्पीटर की धारणा के अनुसार चूँकि एक पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों के नये व अच्छे संयोग की सम्भावनायें सदा विद्यमान रहती है। अतः साहसी इन लाभ सम्भावनाओं का फायदा उठाने के लिए नये प्रयोग अर्थात् नवप्रवर्तन करते हैं जिनके लिए बैंको से ऋण लिया जाता है। चूँकि नवप्रवर्तनों में निवेश में जोखिम होती है। अतः उन्हें ऋण पर ब्याज देना होगा। नवप्रवर्तन जब एक बार सफल हो जाता है। और लाभ देने लगता है तब अधिक संख्या में अन्य उद्यमी उसका अनुकरण करने लगते हैं। एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन सम्बन्ध क्षेत्रों में नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहन दे सकता है। मोटरकार उद्यमी प्रारम्भ होने के परिणाम स्वरूप सड़कों रबर टायरों तथा पेट्रोल इत्यादि के उत्पादन में नये निवेशों की लहर फैला सकता है। परन्तु एक नव प्रवर्तन कभी शत-प्रतिशत नहीं होता है।

**नवप्रवर्तन का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण** - रेखाचित्र में एक विशेष नवप्रवर्तन अपना रही फर्मों के प्रतिशत को अनुलम्ब अक्ष पर तथा समय को क्षतिज अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है।



चित्र 7.1

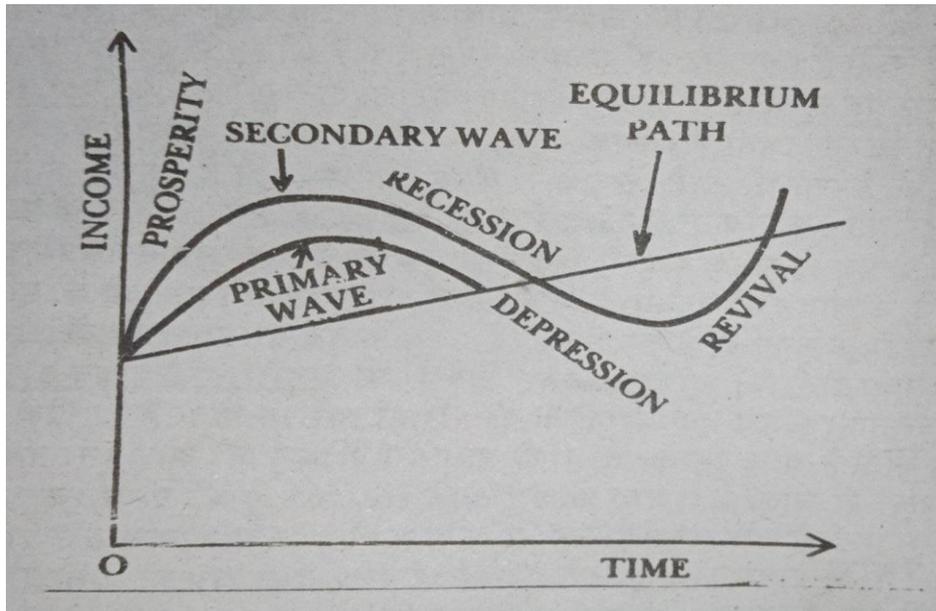
वक्र प्रदर्शित करता है कि प्रारम्भ में फर्मों एक नवप्रवर्तन को धीरे-धीरे अपनाती है। शीघ्र नवप्रवर्तन अपना जोर पकड़ता है। परन्तु शत-प्रतिशत फर्मों इसे नहीं अपना पाती है।

#### 7.4.7 पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया

प्रो. शुम्पीटर ने नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्री प्रो. वॉलरस के सामान्य संस्थिति के सिद्धान्त के आधार पर विकास में चक्रीय प्रवाह की कल्पना की।

शुम्पीटर ने पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया की तीन अवस्थाओं को स्वीकार किया है-

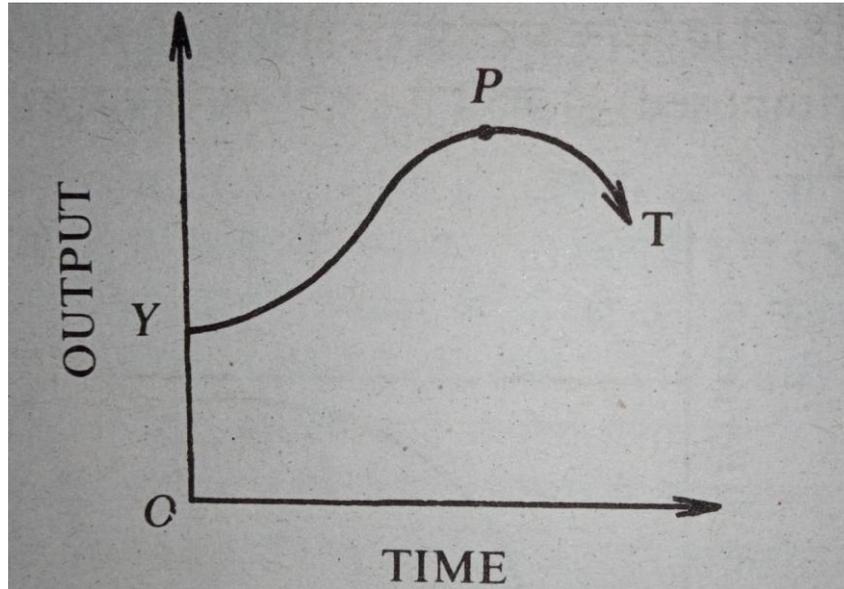
1. **प्राथमिक लहर-** शुम्पीटर का विचार था कि नवप्रवर्तन हेतु जब बैंको से ऋण लिया जाता है तो साख का विस्तार होता है। नवप्रवर्तन हेतु किए गए निवेश में वृद्धि से मौद्रिक आय और कीमतें बढ़ने लगती है। जो आगे चलकर समस्त अर्थ समस्याओं के संचयी विस्तार की दशाएं उत्पन्न कर देती है। शुम्पीटर ने इस आर्थिक चेतना को उद्यमी ने नवप्रवर्तन की **प्राथमिक लहर** की संज्ञा दी है।
2. **द्वितीयक लहर-** बढ़ती हुई कीमतें लाभ को बढ़ाती है इससे उत्साहित होकर उद्यमी बैंको से ऋण लेकर निवेश को बढ़ाते है इससे उत्पादन का और अधिक विस्तार होता है लाभ की प्रवृत्तिया जहां से फर्म को प्रोत्साहन देती है वहां आय व लाभ की सम्भावना नये विनियोगी को जन्म देने लगती है। फलस्वरूप बैंको से अधिक मात्रा में ऋण लिये जाते है। इससे साख-स्फीति की द्वितीयक लहर प्रेरित होती है। जो नवप्रवर्तन की प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे **समृद्धि की आवश्यक दर** कहा है।
3. **तृतीयक लहर-** तृतीयक लहर में जब कुछ समय पश्चात नई वस्तुयें बाजार में आना शुरू हो जाती है जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती है। और दिवालियापन पुनः समायोजन तथा खपत की प्रक्रिया शुरू होती है। बाजार में नई वस्तुओं तथा फर्म के प्रवेश से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है। शुम्पीटर ने इसे **सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया का प्रथम चरण** कहा है। पुरानी वस्तुओं की मांग घट जाती है। उनकी कीमते घट जाती है। लाभ के कम होने से पुरानी फर्में जमा उद्यमी घटाती है और कुछ का तो दीवाला भी निकल जाता है। इस तरह नई फर्मों के सामने पुरानी फर्में बाजार में ठहर नहीं पाती। जब नवप्रवर्तक लाभों में से बैंक ऋण वापस करना शुरू कर देते है तो मुद्रा की मात्रा घट जाती है। और कीमते गिरने लगती है। लाभ कम हो जाते है अनिश्चितता तथा जोखिम बढ़ जाती है नवप्रवर्तक की प्रेरणा घटती है। और अन्त में समाप्त हो जाती है। असंतुलन एवं असामान्य की प्रक्रिया के फलस्वरूप बैंक अपना रूपया वापस लेने लगते है। जिससे मुद्रा विस्फीति की दशा उत्पन्न होती है। प्रवर्तन क्रियाओं से शिथिलता आती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में हास होना शुरू हो जाता है। शुम्पीटर ने इस समस्या को **प्रतिसार अवस्था** कहा है।



इस अवस्था के पश्चात नये सिरे से तथा नये ढंग से नवप्रवर्तन किये जाते हैं। इससे नई तेजी प्रारम्भ हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे **पुनरूत्थान की अवस्था** कहा है। इस तरह विकास की यह पूरी प्रक्रिया अपने को पूर्व की भाँति दोहराती है। और अंततः देश की आर्थिक प्रणाली पुनः साम्य की स्थिति प्राप्त कर लेती है मन्दी के बाद का यह संतुलन बिन्दु पुराने संतुलन बिन्दु से ऊँचा होता है। शुम्पीटर के अनुसार - इस चक्रों की निश्चित अवधि नहीं होती और इन चक्रों को गम-खुशी के चक्र कहते हैं।

### शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया का चित्र द्वारा प्रदर्शन-

क्षैतिज अक्ष पर समय तथा अनुलम्ब अक्ष पर राष्ट्रीय उत्पादन दर्शाया गया है। वक्र YPT दीर्घकालीन चक्रीय उतार-चढ़ावों को दर्शाता है जब एक नवप्रवर्तन होता है तो अर्थव्यवस्था Y से ऊपर की ओर गति करती है। और वस्तुओं का उत्पादन बिन्दु P तक बढ़ता जाता है। कुछ समय पश्चात् जब यह नवप्रवर्तन समाप्त होना प्रारम्भ होता है। और नया नव प्रवर्तन इसका स्थान लेना शुरू कर देता है तो अर्थव्यवस्था P से खिसकर T पर आ जाती है। इस प्रकार सृजनात्मक विकास की प्रक्रिया के कारण अर्थव्यवस्था का नया संतुलन बिन्दु T पूर्व बिन्दु P से ऊपर है। जो अर्थव्यवस्था के विकास को प्रदर्शित करता है। शुम्पीटर के आर्थिक विकास की समस्त चक्रीय प्रक्रिया को चित्र 7.3 में दिखाया गया है।



चित्र 7.3

जहाँ नवप्रवर्तन की द्वितीयक लहर को प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित किया गया है। अति आशावादिता और सट्टे से समृद्धि की अवस्था में विकास तीव्र गति से होता है। जब सुस्ती प्रारम्भ होती है तो व्यापार चक्र संतुलन से नीचे मन्दी की अवस्था में चलता है। अन्ततः एक अन्य नवप्रवर्तन आता है।

### 7.4.8 पूँजीवाद के विनाश की प्रक्रिया

शुम्पीटर के विश्लेषण में उद्यमी ही प्रमुख व्यक्ति है। वह आकास्मिक तथा असतत ढंग से आर्थिक विकास करते हैं। **“चक्रीय उतार-चढ़ाव पूँजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास की कीमत है।”** जो उसके गत्यात्मक समय मार्ग की स्थायी विशेषता है। दीर्घकाल में निरंतर प्रौद्योगिकीय प्रगति का परिणाम होगा कि कुल तथा प्रति व्यक्ति

उत्पादन में असीम वृद्धि हो जायेगी क्योंकि ऐतिहासिकता से प्रौद्योगिकीय प्रगति के घटते प्रतिफल नहीं होते। जब तक प्रौद्योगिकीय प्रगति होती रहेगी तब तक लाभों दर की धनात्मक रहेगी इसलिए न तो निवेश योग्य कोणों के श्रोत ही सूख सकते हैं। और न ही निवेश के अवसर ही समाप्त हो सकते हैं। परन्तु पूँजीवाद पद्धति के इस गुणगान का यह कदापि अर्थ नहीं है कि पूँजीवाद पद्धति को रहने दिया जाये, यह पद्धति मानव जाति के कन्धे से गरीबी का बोझ दूर नहीं कर सकती। इसलिए पूँजीवादी समाज में प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर कोई ऊँची सीमा नहीं होती है। फिर भी पूँजीवाद की आर्थिक सफलता का परिणाम अंत में उसकी तबाही होगी। पूँजीवाद के भविष्य पर अंतिम टिप्पणी देते हुये शुम्पीटर ने लिखा था **“क्या पूँजीवाद क्या रहेगा? नहीं, मैं समझता हूँ कि वह बच नहीं पायेगा। उनके अनुसार- पूँजीवाद की सफलता ही, इन सामाजिक संस्थाओं की जड़ खोदती है। और उसकी रक्षा करती है, और अनिवार्य रूप से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है, जिसमें पूँजीवाद नहीं जी सकता, और प्रबलता से समाजवाद के स्पष्ट वारिस होने का संकेत करता है।”** कार्ल मार्क्स की ही भाँति शुम्पीटर भी इस धारणा के समर्थक थे कि पूँजीवाद का अन्त सुनिश्चित है। अन्य शब्दों को पूँजीवाद व्यवस्था अपने विनाश की दशाएँ स्वयं उत्पन्न करती है। शुम्पीटर ने पूँजीवाद के पतन के लिए तीन प्रमुख कारणों को उत्तरदायी बताया है। उद्यमीय कार्य का हास, बुर्जुआ परिवार का बिखराव और पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढाँचे का विघटन।

1. **उद्यमी कार्य का महत्व समाप्त होना** - प्रारम्भ में उद्यमी चकीय प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करके विकास क्रम को चालू करता है लेकिन धीरे-धीरे चक एक प्रकार से दैनिक कार्य हो जाता है। बड़े-बड़े उद्योगों में यह उनकी कार्य प्रणाली का ही एक आवश्यक अंग हो जाता है और इस प्रकार के उद्यमियों को अलग से कोई विशिष्ट महत्व नहीं रह जाता है।

शुम्पीटर के शब्दों में – उद्यमियों के लिए कुछ भी करने को नहीं रह जाता लाभ गिरने लगता है। ब्याज शून्य हो जाता है उद्योग और व्यापार का प्रबन्ध एक सामान्य प्रशासन का रूप ले लेता है। और प्रबन्धक अन्ततोगत्वा नौकरशाही (मैनेजर) का रूप धारण कर लेते हैं।

2. **बुर्जुआ परिवार का बिखरना** - धीरे-धीरे बुर्जुआ परिवार बिखरने लगता है। तर्क और बुद्धिमान पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। परिवार का भी लाभ, लागत के अनुसार लोग विचार करते हैं। फलस्वरूप घर का विचार ध्वस्त हो जाता है। और इसमें संग्रह की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है जो कि पूँजीवाद की प्रेरक शक्ति है।
3. **पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढाँचे का विघटन** - उद्यमी के न केवल आर्थिक तथा सामाजिक कार्य समाप्त हो जाते हैं वरन् धन के एकीकरण तथा बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थाओं के स्थापित हो जाने से निजी सम्पत्ति तथा प्रसंविदा की स्वतन्त्रता आदि महत्वहीन होने हो जाती है जो पूँजीवादी की प्रमुख संस्थायें हैं। शुम्पीटर का कहना है कि पूँजीवाद की मौत का घंटा बजाने के लिए उपर्युक्त शक्तियाँ ही काफी नहीं हैं पूँजीवाद एक ऐसे असंतुष्ट बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है जो बेरोजगार हैं तथा जिसके पास विचार स्वतन्त्रता जीवन के प्रति साहसी रहा है (नवप्रवर्तन) ये बुद्धिजीवी वर्तमान सामाजिक ढाँचे के प्रति असंतोष को संगठित करके उसे नेतृत्व प्रदान करता है। जो पूँजीवाद की धारणा का विरोध करते हैं।

चूँकि बुद्धिजीवी स्वतः के संगठन द्वारा पूँजीवाद को समाप्त नहीं कर सकता अतः वह श्रमिकों को संगठित करके इसका सहारा लेता है। धीरे-धीरे पूँजीवाद रूपा किला रक्षाहीन हो जाता है।

## 7.5 शुम्पीटर का सिद्धान्त तथा अल्प विकसित देश

अल्पविकसित देशों के साथ भी शुम्पीटर के सिद्धान्त की व्यवहार्यता सीमित है :

- 1. भिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था - शुम्पीटर का सिद्धान्त** उस विशेष सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप है जो 18वीं तथा 19वीं, 21 शताब्दियों में अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप में वर्तमान थी। उस अवधि में वृद्धि की कुछ प्रत्याशाएँ पहले से विद्यमान थीं। परन्तु अल्पविकसित देशों में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों बिल्कुल भिन्न होती हैं और सामाजिक एवं आर्थिक उपरिसुविधाओं के रूप में विकास की प्रत्याशाएँ नहीं होती हैं। इस प्रकार उद्यमी के लिए प्रेरणा नहीं होती है।
- 2. उद्यमता का अभाव - शुम्पीटर का विकास** वर्ग के अस्तित्व पर निर्भर करता है परन्तु अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की बाधाओं में से एक यह है कि उनमें समुचित उद्यमता का अभाव होता है। ऐसे देशों में तकनीकी ज्ञान और लाभ की संभावनाएँ कम होने के कारण नये प्लांट एवं उपकरण में निवेश की प्रेरणा नहीं पाई जाती है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त विद्यत यातायात प्रशिक्षित सेवावर्ग की कमी उद्यमी कार्य को हतोत्साहित करती है।
- 3. सामाजवादी देशों पर लागू नहीं - शुम्पीटर का विश्लेषण** अधिकांश अल्पविकसित देशों पर व्यवहार्य नहीं है जिनकी प्रवृत्ति समाजवाद की ओर है। उदाहरण के लिए सामाजिक सुरक्षा के तरीकों का प्रवर्तन तथा उंचे आरोग्य आयकर उद्यमी वर्ग के विकास के शत्रु हैं क्योंकि वे लाभों को कम करते हैं।
- 4. मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नहीं - शुम्पीटर का नवप्रवर्तन** निजी उद्यमी हैं जो आज की मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के उपयुक्त नहीं हैं। अल्पविकसित देशों में सरकार सबसे बड़ा उद्यमी होता है। विकास के लिए प्रमुख प्रेरणा सार्वजनिक तथा अर्द्ध सार्वजनिक क्षेत्रों से मिलती है। इस प्रकार शुम्पीटर का नवप्रवर्तक अल्पविकसित देशों में सीमित कार्य ही कर सकता है।
- 5. नवप्रवर्तन नहीं बल्कि संस्थानिक परिवर्तन चाहिए - विकास प्रक्रिया** को शुरू करने और उसे आत्म निर्भर बनाने के लिए केवल नवप्रवर्तन ही नहीं बल्कि संगठनात्मक ढाँचों व्यापार प्रथमों कुशल श्रम तथा उचित मूल्यों, वृत्तियों और प्रेरणाओं जैसे अनके साधनों का संयोग आवश्यक होता है।
- 6. नवप्रवर्तन नहीं उनका परिपाचन चाहिए - हैनरी बालिच** के अनुसार – अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रक्रिया नवप्रवर्तन पर नहीं बल्कि वर्तमान नवप्रवर्तन की खपत पर आधारित होती है। क्योंकि अल्पविकसित देशों में उद्यमी नवप्रवर्तन करने की स्थिति में नहीं होते बल्कि वो उन्नत देशों में होने वाले नवप्रवर्तनों को अपनाते हैं।
- 7. उपभोग की अवहेलना - शुम्पीटर की प्रक्रिया** उत्पादन की ओर झुकी है जबकि विकास प्रक्रिया उपयोग की ओर झुकी होती है। यह मूल्यांकन कल्याणकारी राज्य के प्रति वर्तमान समय के रूझान में लागू किया जाता है जिसमें मांग तथा उपभोग प्रमुख काम करते हैं। इसलिए शुम्पीटर का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता है।

8. **बचतों की अवहेलना** - शुम्पीटर का बैंक ऋण पर एकमात्र बल निवेश में वास्तविक बचतों के भाग की अवहेलना कर देता है। यह आर्थिक विकास में घाटे के वित्त प्रबन्ध बजट की बचतों, सार्वजनिक ऋण तथा अन्य राजकोषीय तरीकों के महत्व को क्षति पहुंचाता है।
9. **बाहरी प्रभावों की अवहेलना करता है** - शुम्पीटर के अनुसार विकास उन प्रवर्तनों का परिणाम है जो अर्थव्यवस्था के अपने भीतर से उत्पन्न होते हैं। परन्तु अल्पविकसित देशों में परिवर्तन, अर्थव्यवस्था के भीतर से नहीं उत्पन्न होते बल्कि वे आयातित विचारों, औद्योगिकी तथा पूँजी का परिणाम होते हैं। अल्पविकसित देशों में पिछड़ी हुई प्रौद्योगिकी निम्न बचत संभाव्यता और पुरानी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक संस्थाएं अर्थव्यवस्था के भीतर से विकास लाने की क्षमता नहीं रखती हैं।
10. **जनसंख्या तथा धन वृद्धि के प्रभाव की अवहेलना** - शुम्पीटर किसी देश के आर्थिक विकास पर जनसंख्या तथा धन की वृद्धि के प्रभाव को आंकने में असफल रहा। जनसंख्या वृद्धि की उंची दर विकासशील अर्थव्यवस्था की वृद्धि - दर घटा देती है। जबकि प्राकृतिक साधनों के नये श्रोत या उनका अधिक अच्छा प्रयोग विकास की गति को बढ़ा देता है।
11. **स्फीतिकारी शक्तियों का असन्तोषजनक विवेचन** - शुम्पीटर की पद्धति में विस्फितिकारी प्रेरणाएं विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती हैं। परन्तु इनमें दीर्घकालीन स्फीति नहीं होती है। दीर्घकालीन कीमत स्तर स्थिर रहता है पर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी शक्तियां बहुत प्रबल होती हैं। राजनैतिक तथा श्रमसंघ मार्गों के माध्यम से सामाजिक मांग अर्थव्यवस्था से उतने की अपेक्षा अधिक खींच लेना चाहती हैं। जितना घरेलू उत्पादन तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से उससे प्राप्त किया जा सकता है। केवल विकास तथा सम्बन्ध निवेश नहीं बल्कि मांग अनुस्थापित अर्थव्यवस्था का समस्त सामाजिक वातावरण ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी है।

## 7.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व

अब तक के अध्ययन से आप शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया से भली प्रकार परिचित हो गए होंगे अब हम शुम्पीटर मॉडल के महत्व का अध्ययन करेंगे-

शुम्पीटर का सिद्धान्त आर्थिक विकास के मुख्य साधन के रूप में स्फीतिकारी वित्त एवं नवप्रवर्तनों के महत्व को रेखांकित करता है। स्फीतिकारक वित्त व्यवस्था उन शक्तिशाली ढंगों में से एक मानी जाती है जिसे प्रत्येक अल्पविकसित देश किसी न किसी समय अपनाएने का अवश्य प्रयास करता है। नवप्रवर्तनों से एक ओर उत्पादकता व दूसरी ओर से रोजगार में वृद्धि में होती है। यद्यपि यह पाश्चात्य पूँजीवाद की समस्याओं में सम्बन्ध रखता है। फिर भी जब एक बार औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो यह निश्चित रूप से उन समस्याओं की ओर संकेत दे सकता है कि व्यर्थ तथा अतिरिक्त कठिनाईयों से कैसे बचा जाए जो आयोजनाओं तथा असमन्वित विकास में रहती हैं। व्यापार चक्रों को पैदा करने के सम्बन्ध में शुम्पीटर नव प्रवर्तनों के महत्व पर प्रकाश डाला है।

**Benjamin Higgins, "Tautological though the theory may be, there can be little doubt of**

*its relevance (To under developed countries)”*

Henry c. Wallich इन्होंने अपने एक लेख ‘Some Notes Towards a theory of Derived development’ में शुम्पीटर मॉडल का अध्ययन किया इनके अनुसार – “It is full of internal unity”

**7.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण**

1. उत्पादन फलन (Production function)

$$O = F(L, K, Q, T) \dots\dots\dots (1)$$

जहाँ

O = उत्पादन स्तर                      L = श्रम शक्ति के आकार                      K = ज्ञात साधनों की पूर्ति को  
Q = पूँजी की मात्रा का                      T = तकनीकी स्तर

2. बचत, मजदूरी, लाभ और ब्याज दर पर निर्भर होती है। (Saving Depends upon wages, profits and interest rate.)

$$S = \Delta(W, R, r) \dots\dots\dots(2)$$

जहाँ

S = बचत                      W = मजदूरी दर                      R = लाभ की दर                      r = ब्याज की दर

3. कुल विनियोग को प्रेरित विनियोग तथा स्वतः विनियोग में बाँटा जा सकता है।

$$I = I_A + I_I \dots\dots\dots (3)$$

जहाँ

I = कुल निवेश (Total investment)  
I<sub>I</sub> = प्रेरित निवेश (induced investment)  
I<sub>A</sub> = स्वायत निवेश (Automous investment)

4. प्रेरित विनियोग लाभ के स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर होता है।

$$I_I = I(R, r, Q) \dots\dots\dots (4)$$

जहाँ

R = लाभ का स्तर                      r = ब्याज की दर                      Q = पूँजी का स्टॉक

5. स्वतः विनियोग साधनों की खोज तथा तकनीकी प्रगति पर निर्भर होता है

$$I_A = I_a(K, T) \dots\dots\dots (5)$$

जहाँ

K = साधनों की खोज की दर                      T = तकनीकी प्रगति की दर

6. तकनीकी प्रगति और साधनों की खोज की दर साहसियों की पूर्ति पर निर्भर होती है।

$$T = T (E)..... (6)$$

$$K = K (E) ..... (7)$$

जहाँ  $E =$  साहसियों की पूर्ति

7. साहसियों की पूर्ति लाभ की दर और सामाजिक वातावरण पर निर्भर करती है।

$$E = E(R, X) ..... (8)$$

8. कुल राष्ट्रीय उपज बचत और विनियोग के सम्बन्ध तथा अति गुणक पर निर्भर होती है।

$$O = K (I-S).....(9)$$

जहाँ

$I =$  विनियोग                       $S =$  cpr                       $K =$  अति गुणक

9. मजदूरी बिल विनियोग के स्तर पर निर्भर होता है।

$$W = W (I) ..... (10)$$

10. सामाजिक वातावरण आय के वितरण से निर्धारित होता है।

$$X = X (R/W) ..... (11)$$

जहाँ

$X =$  सामाजिक वातावरण                       $R =$  लाभ                       $W =$  मजदूरी

11. कुल राष्ट्रीय उपज लाभ तथा मजदूरी के बराबर होती है।

$$O = R+W..... (12)$$

## 7.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचना

मॉयर तथा वाल्डविन के अनुसार शुम्पीटर के सिद्धान्त को एक ऐसा प्रमुख कार्य कहना चाहिये जिसे निष्चय से स्मिथ, रिकार्डो मिल, मार्क्स, मार्शल तथा कीन्स जैसे अर्थशास्त्रियों के योग्य तथा समकक्ष माना जा सकता है। यह शानदार तर्क एक बड़े सैद्धान्तिक की अंतर्दृष्टि से आपूरित है। फिर भी वे इस सिद्धान्त की कटु आलोचनाएँ करते हैं।

1. नवप्रवर्तन उद्यमी का कार्य नहीं - शुम्पीटर के सिद्धान्त की समाप्त प्रक्रिया उद्यमी व नवप्रवर्तन पर आधारित है जिसे वह एक आदर्श व्यक्ति मानता है। यह भी 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में सम्भवस्तः जब नवप्रवर्तक उद्यमी या आविष्कारों द्वारा किये जाते हैं। परन्तु वर्तमान में सभी प्रकार के नवप्रवर्तन कम्पनियों के कार्य कम का एक आय है। इनके लिए किसी विशेष प्रकार की व्यक्ति आवश्यकता नहीं समझा गया है।
2. आर्थिक विकास के लिए चकीय प्रक्रिया आवश्यक नहीं - शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तनों से आर्थिक विकास चकीय प्रक्रिया में होता है। परन्तु यह सही नहीं। आर्थिक विकास के लिए मंदी वेतन का चक आवश्यकता नहीं। इसका सम्बन्ध निरंतर परिवर्तनों से होता है। जैसा कि नर्कसे में कहा है।
3. नवप्रवर्तन ही विकास का मुख्य कारण नहीं - शुम्पीटर नवप्रवर्तन को ही विकास का मुख्य कारण

मानता है परंतु यह वास्तविकता से दूर है, क्योंकि आर्थिक विकास केवल नवप्रवर्तनों पर निर्भर नहीं करता बल्कि कई अन्य आर्थिक एवं सामाजिक तत्वों पर निर्भर करता है।

4. **चर्कीय परिवर्तन नवप्रवर्तनों के कारण नहीं** - फिर मंदी व तेजी नवप्रवर्तनों के ही कारण नहीं होती इसके कई मनोविज्ञानिक, प्राकृतिक, वित्तीय आदि कारण भी होते हैं।
5. **बैंक साख को अधिक महत्व** - शूम्पीटर पूँजी निर्माण में बैंक साख को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान अल्पकाल में तो बैंक से साख ऋण प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु दीर्घकालीन नवप्रवर्तनों के लिए जिसमें पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है बैंक ऋण अपर्याप्त होते हैं। इसके लिए ऋण पत्र तथा नये शेयरों को बेचकर ही पूँजी प्राप्त की जा सकती है।
6. **पूँजीवाद से समाजवाद की प्रक्रिया सही नहीं** - शूम्पीटर का पूँजीवादी से समाजवादाकी ओर जाने का विश्लेषण सही नहीं, वह इस बात का विश्लेषण नहीं करता कि पूँजीवाद समाज समाजवाद की ओर कैसे अग्रसर होता है। वह केवल यह बताता है कि उद्यमी के कार्यों में परिवर्तन होने से पूँजीवादी समाज का संस्थानिक ढांचा परिवर्तित हो रहा है। उसका पूँजीवाद के नाश का विश्लेषण भावुक है न कि वास्तविक।

अन्त में, मायर तथा बाल्डविन के शब्दों में “शूम्पीटर विकास का बृहत सामाजिक आर्थिक विश्लेषण किया है उसकी सर्वत्र प्रशंसा की जाती है परंतु बहुत कम लोग उसके निष्कर्षों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। उसका तर्क उत्तेजक है। उसका विश्लेषण उच्चयिक है पर वह पूर्ण रूपेण विश्वनीय नहीं है। उसका विश्लेषण एक तरफा है तथा उसने कई बातों पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया।”

## 7.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

रिक्त स्थान भरें

1. शूम्पीटर ने जर्मनी भाषा में प्रकाशित ..... में अपना मॉडल प्रस्तुत किया।
2. कार्ल मार्क्स का विचार ..... की ओर ले जाता है।
3. शूम्पीटर के विकास सिद्धान्त में ..... की झलक मिलती है।
4. शूम्पीटर का विकास प्रारूप ..... आधारित है।
5. शूम्पीटर के अनुसार वित्तीय प्रवाह एक ..... है।
6. आर्थिक विकास के कार्य को ..... के साथ करना होता है।
7. किसी नवीन वस्तु का उत्पादन करना ..... है।
8. आर्थिक विकास का कार्य ..... करता है।
9. शूम्पीटर का कहना है कि साहसी के संबंध में स्वामित्व नहीं बल्कि ..... अधिक महत्वपूर्ण होता है।
10. शूम्पीटर ने पूँजीवाद के पतन के लिए ..... प्रमुख कारणों को उत्तरदायी बताया है।
11. पूँजीवाद के पतन का अन्तिम कारण ..... है।

**सत्य असत्य बताइए**

1. आर्थिक विकास के सतत प्रक्रिया है।  
(सत्य / असत्य)
2. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकास नवप्रवर्तन पर निर्भर करता है।  
(सत्य/ असत्य)
3. The Thryory of Economic Development का अंग्रेजी संस्करण 1936 में प्रकाशित हुआ।  
(सत्य /असत्य)
4. नवप्रवर्तन से एक ओर उत्पादकता तथा दूसरी ओर रोजगार में वृद्धि होती है।  
(सत्य/असत्य)
5. व्यापार चकों को पैदा करने के सन्दर्भ में शुम्पीटर में श्रमिकों को महत्वपूर्ण होता है।  
(सत्य/असत्य)

**बहुविकल्पीय प्रश्न**

1. आर्थिक विकास का कार्य स्वतः नहीं होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयास और जोखिम के साथ करना होता है  
A. पूँजीपति  
B. उद्यमी  
C. श्रमिक  
D. एकाधिकारी
2. शुम्पीटर मॉडल की मान्यताओं में नीहित है  
A. अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगी है।  
B. स्थिरावस्था साम्य है।  
C. आर्थिक विकास नवप्रवर्तन पर निर्भर है।  
D. उपर्युक्त सभी।
3. पूँजीवाद के पतन का कारण नहीं है  
A. व्यापार चक में तेजी।  
B. उद्यमी कार्य का समाप्त होना।  
C. बुर्जुआ परिवार का बिखरना।  
D. पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन।
4. अल्पविकसित देशों के साथ शुम्पीटर का सिद्धान्त हैं  
A. भिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था।  
B. उद्यमता का अभाव।  
C. उपभोग की अवहेलना।  
D. उपर्युक्त सभी।

**अतिलघु प्रश्न**

1. शुम्पीटर का विकास प्रारूप किस किस पुस्तक में प्रकाशित हुआ?
2. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास का प्रमुख कारण किये माना है?
3. शुम्पीटर के विकास प्रारूप में व्यापार चक का प्रमुख कारण क्या है।
4. पूँजीवाद के नाश के तीन प्रमुख कारण क्या है।
5. पूँजीवाद के विनाश के बाद किस बाद की शुरुआत की बात कही है।

## 7.10 सारांश

शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के पश्चात् आप स्पष्ट रूप से इस बात से परिचित हो गए हैं कि शुम्पीटर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करते हैं जो स्थिर संतुलन में है। अर्थात् जहाँ पूर्ण प्रतियोगी संतुलन होता है, जहाँ न कोई लाभ न कोई बचत की दर और न कोई निवेश होते हैं, और न ही कोई अनैच्छिक बेरोजगारी होती है। इसे शुम्पीटर ने वृत्तिय प्रवाह की संज्ञा दी है। शुम्पीटर कहते हैं कि कोई भी परिवर्तन बाहर से नहीं होता है बल्कि स्वयंभूत प्रेरणाओं से उत्पन्न होता है। शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में स्पष्ट रूप से बताया है कि आर्थिक विकास एक असतत् प्रक्रिया है, अर्थात् संतुलन की ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है, और यह हलचल या बाधा नवप्रवर्तन के रूप में उत्पन्न होती है।

आप नवप्रवर्तनों की भूमिका से भली प्रकार से परिचित हैं और यह ठीक प्रकार से जानते हैं कि शुम्पीटर ने नवप्रवर्तनों के किन-किन कारणों को बताया है, जैसे-नई वस्तु का प्रचलन, उत्पादन की नई विधि का प्रचलन, नए बाजार खोजना आदि।

इस प्रकार शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में उपकमी की भूमिका तथा उसे प्रोत्साहित करने वाले श्रोतो का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार “विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान के भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिवर्तन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है, और यह सक्रियता स्तर नए उद्यमियों के प्रकट होने तथा साख निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।”

शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में साख के महत्व को भी बताया है। आप जानते हैं कि शुम्पीटर अपने विकास प्रारूप में पूँजीवाद के विकास प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में बताते हैं। और इस प्रक्रिया के बाद शुम्पीटर ने पूँजीवाद के विनाश की भी बात कही है। शुम्पीटर के शब्दों में “पूँजीवाद का अन्त सुनिश्चित है, जिसके पश्चात् समाजवाद का जन्म होना अनिवार्य है।”

## 7.11 शब्दावली

- **वृद्धि** - वृद्धि से तात्पर्य कुछ समयावधि में पहले समयावधि की तुलना में उत्पादन में हुई मात्रा वृद्धि से है। वृद्धि विकसित देशों से सम्बन्धित है। यह नियमित घटनाओं का परिणाम है। तथा स्थैतिक साम्य से सम्बन्धित है। संवृद्धि से अर्थ, अधिक उत्पादन से है। यह स्वाभाविक कृमिक व स्थिर गतिवाला परिवर्तन होता है।
- **विकास** - विकास एक व्यापक संकल्पना है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय व प्रतिव्यक्ति आय में निरंतर व दीर्घकालीन वृद्धि होती है। आर्थिक विकास, अधिक उत्पादन, नवीन तकनीक व संस्थागत सुधारों के समन्वय से है। यह प्रेरित एवं असतत् प्रकृति का परिवर्तन होता है। विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है। रिचर्डसन के अनुसार “**आर्थिक विकास से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं को अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध करने से है जिसमें की जनसामान्य के भौतिक कल्याण में निरंतर एवं दीर्घकालीन वृद्धि हो सके।**”

- **वृत्तीय प्रवाह** - शूम्पीटर ने अपने विकास मॉडल में वृत्तीय प्रवाह का महत्वपूर्ण माना है। यह एक क्रम में चलता रहता है और यह नवप्रवर्तनों के कारण भय होता है।
- **नवप्रवर्तन** - नवप्रवर्तन से तार्पय विकास धीरे-धीरे न होकर एक साथ बड़े प्रयत्न के कारण होता है। नवीन प्रवर्तनों से प्रेरित होकर अन्य विनियोजक भी प्रोत्साहित सट्टे की क्रियाओं को बढ़ाते हैं। पूँजीगत उद्योगों का विकास होता है। प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होकर लाभ की सम्भावनाये बढ़ती है।
- **पूँजीवाद** - पूँजीपति वह व्यक्ति होता है जो आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में निवेश करने का साहस रखता है। एक प्रकार से पूँजीपति नवप्रवर्तनों के लिए मार्ग दर्शक होता है।
- **सृजनात्मक विनाश** - शूम्पीटर के अनुसार जो नवप्रवर्तन होता है वह चकीय प्रक्रिया से होता है। और सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया शुरू होती है। जब नई वस्तुयें बाजार में आना शुरू होती हैं जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती हैं। बाजार में नई वस्तुओं के प्रयोग से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है जिसे सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया का प्रथम चरण कहा है।
- **मंदी** - मंदी से तात्पर्य मुद्रा विस्फीति से है शूम्पीटर के विकास प्रारूप में मंदी की स्थिति तब दृष्टिगोचर होती है। जब बैंक अपना रूपया वापस लेने लगती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में हास होना शुरू हो जाता है।
- **पुनरूत्थान** - पुनरूत्थान से तात्पर्य नई तेजी से है। मंदी की स्थिति के बाद जब अर्थव्यवस्था इस दुष्चक्र से धीरे-धीरे निकलने का प्रयास करती है। तो यह पुनरूत्थान की अवस्था कहलाती है।
- **स्फीति** - स्फीति से तार्पय तेजी से है स्फीति मंदी से विपरीत स्थिति है। स्फीति की स्थिति में मुद्रा का मूल्य दिए रहा होता है। तथा कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। इसमें अर्थव्यवस्था का तेजी का समय भी कहा जाता है।
- **अल्पविकसित देश** - अल्पविकसित देश से तात्पर्य उन देशों से है जो विकास के स्तर पर नहीं पहुंच पाये हैं। और पिछड़े हुये हैं। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी आदि मूल्य विकसित देशों में सर्वाधिक पाये जाते हैं।

## 7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### रिक्त स्थान भरो

1. 1911 2. निराशावादिता। 3. आशावादी। 4. नवप्रवर्तन। 5. सरिता। 6. जोखिम 7. नवप्रवर्तन 8. तीन 9. पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढाँचे का विघटन

### सत्य/ असत्य बताइए—

1. असत्य। 2. सत्या 3. असत्य। 4. सत्य 5. असत्य

### बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. उद्यमी। 2. उपर्युक्त सभी। 3. व्यापार चक्र में तेजी। 4. उपर्युक्त सभी।

## अतिलघु उत्तरीय

1. 'The Theory of economic development' 2. नवप्रवर्तन 3. नवप्रवर्तन
4. (i) उद्यमीय कार्य का हास (ii) बुर्जुआ परिवार का बिखराव (iii) पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन 5. समाजवाद

## 7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कुलवन्त राय गुप्त 2009-विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन इतिहास, सिद्धान्त।
- टी. आर. जैन, वी. के. ओरी-2006-07 "डेवलेपमेंट इकोनोमिक्स' वी. के. पब्लिकेशन।
- Development Studies, Vols 1&2, Ed. Robin Gnosh, K.R. Gupta and Premjit Malti.
- Kenneth K. Kurihava, the Keynesian theory of Economic Development (London-1961) P. 79-80.

## 7.14 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- अग्रवाल ए. एन., (2006) 'इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)' आशीष पब्लिशिंग हाऊस
- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिंह (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम. एल. झिंगन (2002) आर्थिक विकास एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया", एस.चन्द्र, नई दिल्ली।

## 7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक विकास के सम्बन्ध में शुम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
2. शुम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये कि आर्थिक विकास आर्थिक जीवन के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक तथा असतत् परिवर्तन है की दिशाओं में जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देता है?
3. शुम्पीटर का आर्थिक विकास का सिद्धान्त स्पष्ट कीजिए। अल्पविसिती देशों के योजनावद्ध विकास में यह कहां तक लागू होता है?
4. शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए और इसकी सीमाएँ बताइये?

---

## इकाई 8 - सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास का सिद्धान्त (Theory of Balanced and Unbalanced Development)

---

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 संतुलित विकास सिद्धान्त
  - 8.3.1 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा
  - 8.3.2 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार
  - 8.3.3 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार
  - 8.3.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की आलोचना
- 8.4 असंतुलित विकास सिद्धान्त
  - 8.4.1 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा
  - 8.4.2 सामाजिक उपरि व्यय पूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं की भूमिका
  - 8.4.3 असंतुलित विकास सिद्धान्त का सार
  - 8.4.4 सिद्धान्त की आलोचनायें
- 8.5 दोनो सिद्धान्तों की तुलना
- 8.6 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 8.7 सारांश
- 8.8 शब्दावली
- 8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 8.1 प्रस्तावना

अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की नीति क्या हो, इस सम्बन्ध में विकास अर्थशास्त्रियों में एक गहरा मतभेद है। कुछ विचारकों की राय है कि अल्प विकसित देशों को विकास की सन्तुलित पद्धति को अपनाना चाहिए तो दूसरे पक्ष की राय में असन्तुलित विकास नीति, आर्थिक विकास के लिये एक श्रेष्ठतम विकल्प है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास, सन्तुलित आधार पर किया जाये अथवा असन्तुलित आधार पर, यह विचार आज भी एक विवाद ग्रस्त समस्या बनी हुई है। अतः इस दृष्टि से किसी वास्तविक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह अधिक उचित होगा कि पहले इन दोनों पद्धतियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाये।

## 8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ संतुलित वृद्धि से क्या तात्पर्य है।
- ✓ विकास में असंतुलन का क्या महत्व है।
- ✓ घरेलू तथा विदेशी व्यापार में संतुलन कैसे होता है।
- ✓ क्या सरकार संतुलित विकास के लिये कोई प्रयास करती है।
- ✓ क्या आर्थिक विकास असंतुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है।
- ✓ सामाजिक उपरिव्यय पूँजी क्या होती है।
- ✓ प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से क्या तात्पर्य है।
- ✓ संतुलित एवं असंतुलित विकास के लाभ-हानि क्या है।

## 8.3 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त

### 8.3.1 संतुलित विकास विकास सिद्धान्त की अवधारणा

सन्तुलित विकास शब्द का अर्थ अलग अलग अर्थशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न ढंग से लगाया है। एक मत के अनुसार सन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का समान रूप से विकास करना अर्थात् उनमें एक साथ निवेश करना है। इसके विपरीत एक अन्य अर्थ में सन्तुलित विकास, उपभोक्ता उद्योगों और पूँजीगत उद्योगों के समान विकास का प्रतीक है। कुछ अन्य लोगों ने सन्तुलित विकास को निर्माणकारी उद्योगों और कृषि उद्योग का सन्तुलित विकास माना है। कुछ लोगों ने उद्योग और कृषि, तथा घरेलू क्षेत्र और निर्यातक क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करने के विचार को सन्तुलित विकास का नाम दिया है। एक अन्य विचारधारा के अनुसार परोक्ष उत्पाद निवेश अर्थात् आर्थिक व सामाजिक उपरि सुविधाओं में निवेश तथा प्रत्यक्ष उत्पादक निवेश में सन्तुलन और अनुलम्ब तथा क्षैतिज बाहरी बचतों के बीच सन्तुलन बनाए रखने को सन्तुलित विकास की संज्ञा दी है। सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या करने की दृष्टि से नीचे कुछ परिभाषायें दी जा रही हैं

प्रो. अलक घोष के शब्दों में “नियोजन के साथ सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक ही अनुपात में विकास हो ताकि उपभोग, निवेश समान दर से बढ़ सके।”

प्रो. रैडावे के अनुसार “सन्तुलित विकास का अर्थ, अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन प्राप्त करना है जैसे उत्पादन तथा उपभोग के ढांचे के बीच, उपभोग क्षेत्र तथा पूँजीगत क्षेत्र के मध्य, और उत्पादन की विभिन्न प्रणालियों के बीच, जिससे कि एक तरफ कच्चे माल व अर्न्तवर्ती वस्तुओं तो दूसरी तरफ औद्योगिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित हो सके।”

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि – “सन्तुलित विकास से आशय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का एक साथ विकास करना है जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों की उपज के लिये बाजार मिल सके और असन्तुलन उत्पन्न हो पाये।”

**सन्तुलित वृद्धि का औचित्य** - सन्तुलित विकास का सिद्धान्त मुख्य रूप से समन्वित एवं सजातीय विकास की मान्यता पर आधारित है। हमारी राय में विकास की कोई भी नीति अथवा सिद्धान्त इस बात की अनुमति नहीं देता कि राष्ट्रीय विनियोग केवल निजी लाभ की भावना को दृष्टि में रखकर किये जायें अथवा केवल पूर्व उन्नत उद्योगों में ही किये जायें अथवा केवल उन्हीं उद्योगों में किये जायें जहां सम्भावित प्रतिफल अधिक होने की संभावना है। “चूंकि देश के आर्थिक विकास का विचार किसी एक उद्योग या वर्ग विशेष के विकास का प्रश्न नहीं, बल्कि देश के सभी उद्योगों और समाज के सभी लोगों के सामूहिक व सजातीय विकास का प्रश्न है।” इसलिए उपलब्ध क्षेत्रों को पूरक न बनाकर उन्हें परस्पर प्रतियोगी बनाया जाये और आर्थिक असन्तुलनों, संघर्षात्मक प्रवृत्तियों व हीन भावनाओं को उत्पन्न न होने दिया जाये। सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का यही मुख्य सार है। सन्तुलित विकास की नीति निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने, बाहरी बचतों को उत्पन्न करने, अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण प्राप्त करने, उत्पादकता में वृद्धि करने तथा आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान में सहायक होती है।

**सन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक** - सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में एडम स्मिथ तथा फ्रेडरिक लिस्ट का नाम लिया जा सकता है। वर्तमान समय में रोजेन्स्टीन रोडान, रागनर नर्कसे, आर्थर लेविस, सिटोवास्की, रोस्टोव तथा हार्वे लिवेन्स्टीन इस विकास नीति के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं।

#### 8.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार

सन्तुलित विकास सिद्धान्त से सम्बंधित प्रो. नर्कसे, रोडान तथा लेविस द्वारा की गयी व्याख्या इस प्रकार है –

##### 1. प्रो. रागनर नर्कसे का विचार नर्कसे-

प्रो. रागनर नर्कसे का विचार नर्कसे के अनुसार अल्प विकसित देशों में निर्धनता का दुश्चक्र कार्यशील रहता है जो आर्थिक विकास में सदैव बाधा पैदा करता है। यह दुश्चक्र मांग और पूर्ति दोनों ही पक्षों में लागू होता है। पूर्ति पक्ष की दृष्टि से अल्प विकसित देशों में बचत करने की क्षमता कम होती है क्योंकि वास्तविक आय का स्तर काफी नीचा होता है। कम वास्तविक आय निम्न उत्पादकता का परिणाम होती है जो स्वयं पूँजी के अभाव के कारण पैदा होती है। इसी प्रकार मांग पक्ष की दृष्टि से अल्प

विकसित देशों में विनियोग करने की प्रेरणा शिथिल होती है क्योंकि लोगों द्वारा वस्तुओं की मांग कम की जाती है। वस्तुओं की मांग इसलिये कम होती है क्योंकि क्रय शक्ति कम होती है और क्रय शक्ति, निम्न आय के कारण कम होती है जबकि आय का निम्न स्तर स्वयं नीची उत्पादकता का परिणाम होता है। इस प्रकार अल्प विकसित देशों में निम्न उत्पादकता के कारण – कम आय – अल्प बचतें - तथा अल्प वस्तु मांग के फलस्वरूप - निवेश की प्रेरणा कम होती है जिससे बाजार का आकार सीमित बना रहता है।

### **इस दुश्चक्र को किस प्रकार तोड़ा जाए?**

इसका अत्यन्त सरल व सीधा उपाय यह है कि उत्पादकता में वृद्धि की जाए। लेकिन उत्पादकता में वृद्धि तभी हो सकती है जब बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा पूँजी का निवेश किया जाए। और यह दोनों बातें तभी सम्भव हैं जब लोगों द्वारा वस्तुओं की पर्याप्त मांग की जाती हो, उनके हाथ में पर्याप्त क्रय शक्ति उपलब्ध हो। चूँकि खरीदने की क्षमता ही, सही अर्थों में, राष्ट्रीय उत्पादन करने की क्षमता है। इसलिये उत्पादकता वृद्धि का प्रश्न मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन में पूँजी का प्रयोग किस सीमा तक किया जा रहा है किन्तु इस निवेश सीमा का निर्धारण स्वयं बाजार के आकार पर निर्भर करता है।

नर्कसे का कहना है कि कोई भी अकेला उद्योग अपने माल की मांग स्वयं पैदा नहीं कर सकता बल्कि मांग का सृजन उद्योगों की विविधता और आवश्यकताओं की विभिन्नता के कारण होता है। उन्होंने अपने तर्क की पुष्टि हेतु रोडान की तरह जूता उद्योग का उदाहरण देते हुए कहा कि मान लीजिए एक नया जूता उद्योग लगाया गया है। यदि क्रय शक्ति (उत्पादकता) के बढ़ने की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में कोई अन्य प्रयास नहीं किये जाते तो जूता उद्योग की अतिरिक्त उपज की पूरी खपत बाजार में नहीं हो सकेगी और कुछ माल बिना बिके रह जाएगा। इसका कारण यह है कि एक तो इस उद्योग में लगे हुए व्यक्ति अपनी अन्य आवश्यकताओं के कारण समस्त आय जूतों पर खर्च नहीं करेंगे और दूसरे, इस उद्योग के बाहर के लोग भी प्रत्येक वर्ष जूता नहीं खरीदेंगे क्योंकि उनके पास अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहले से ही धन का अभाव है।

अतः स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में लगे लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाने का प्रयास नहीं किया गया तो नीची वास्तविक आय पर बेलोच मांग बाजार के आकार को सीमित कर देगी जिससे निवेश की प्रेरणा घटेगी और फलस्वरूप यह 'नया उद्योग' फेल हो जायेगा।

### **बाजार का विस्तार किस प्रकार किया जाए?**

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिए बाजार का विस्तार करना अत्यावश्यक है। इसके लिए मौद्रिक प्रसार, विक्रय कला, विज्ञापन या व्यापार नियंत्रण हटाकर अथवा आर्थिक अर्द्धसंरचना का विकास करके बाजार का विस्तार किया जा सकता है। इसके अलावा कीमतें घटाकर अथवा मौद्रिक आय में वृद्धि करके भी वस्तुओं की मांग को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन इसके लिये आवश्यक है कि उत्पादकता व आय स्तर में पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाये ताकि उत्पादन की लागतें कम हो सकें। एक अल्प विकसित देश में ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता क्योंकि उपभोक्ता मांग लोच रहित होती है, उन्नत तकनीक व उद्यम का अभाव होता है और फलस्वरूप पूँजी निवेश की प्रेरणा के अभाव में बाजार का आकार सीमित बना रहता है।

इसलिये नर्कसे का कहना है कि इस दलदल से निकलने का एक मात्र उपाय यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों अर्थात् विभिन्न उद्योगों में एक साथ पूँजी लगायी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि सभी क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाओं तथा कुशलताओं के बढ़ने के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होने लगेगा। सन्तुलित विकास का उद्देश्य, वास्तव में पूरक उद्योगों का विकास करना है जो एक दूसरे के माल के ग्राहक बनकर पूँजी की मांग को बढ़ा देते हैं। नर्कसे के अपने शब्दों में अनेक पूरक परियोजनाओं में अधिक और उत्तम औजारों से काम करने वाले लोग एक दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं। सामान्य उपभोग की वस्तुयें पैदा करने वाले अधिकांश उद्योग इसलिये एक दूसरे के पूरक होते हैं क्योंकि वे परस्पर, एक दूसरे की वस्तुओं की मांग उत्पन्न करके बाजार का विस्तार करते रहते हैं, और इस प्रकार एक दूसरे का पोषण करते हैं। अतः सन्तुलित विकास का प्रश्न 'सन्तुलित आहार' की आवश्यकता पर आश्रित है।

नर्कसे का कहना कि विभिन्न उद्योगों के अंतर्गत परियोजनाओं के विस्तृत क्षेत्र में पूँजी का एक साथ तथा एक समय में किया गया निवेश आर्थिक दक्षता तथा बाजार के कुल आकार का विस्तार करता है। नर्कसे के अनुसार **“इस प्रकार का सीधा आक्रमण अर्थात् अनेक विभिन्न उद्योगों में पूँजीगत निवेशों की लहर ही वास्तव में सन्तुलित विकास है।”** विस्तृत क्षेत्र वाले निवेश बाजार के आकार को बढ़ाकर बाहरी बचतें उत्पन्न करते हैं। जो प्रायः एक व्यक्तिगत फर्म के लिए सम्भव नहीं होती। विभिन्न प्रकार के उद्योगों में निवेश करने से उद्योगों का अनुलम्ब तथा क्षैतिक समाकलन होता है, श्रम विभाजन अधिक श्रेष्ठ हो जाता है, कच्चा माल तथा तकनीकी ज्ञान की पूर्ति सहज हो जाती है, बाजार का आकार विस्तृत होता है और सामाजिक तथा आर्थिक उपरिव्यय पूँजी का श्रेष्ठतर उपयोग होने लगता है। कुल मिलाकर सन्तुलित विकास की नीति बाहरी बचतों को सम्भव बनाती है जो कि तीव्र आर्थिक विकास के लिये अत्यंत आवश्यक है।

### घरेलू तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन

आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में बाजार का सीमित आकार उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सबसे बड़ी बाधा है। पिछड़े हुए कृषि प्रधान देश निम्न उत्पादकता तथा कम क्रय शक्ति के कारण न तो आयात और न ही निर्यात करने की स्थिति में होते हैं। संतुलित विकास नीति के अंतर्गत जब विविध क्षेत्रों में निवेश किया जाता है तो इससे एक तरफ उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होने से आयातों को बढ़ावा मिलता है तो दूसरी तरफ उद्योगों की पूरकता तथा विविधता के फलस्वरूप निर्यात व्यापार बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार संतुलित विकास की नीति घरेलू तथा विदेश व्यापार दोनों में संतुलन बनाए रखती है। नर्कसे के अनुसार, **“संतुलित विकास अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए एक अच्छा आधार है और उसका सबसे बड़ा मित्र भी और परिवेश की रिक्तता को उभरने का श्रेष्ठतम ढंग भी है।”** नर्कसे ने कृषि और उद्योग में उचित संतुलन बनाये रखने पर जोर दिया है क्योंकि यह दोनों क्षेत्र एक दूसरे के पूरक हैं।

### संतुलित विकास और सरकार की भूमिका

संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था का केन्द्रिय नियोजन तथा नियमन करना जरूरी है। यद्यपि नर्कसे का यह मत रहा है कि निजी उद्यम मूल्य प्रेरणाओं (अर्थात् कीमत यंत्र) के द्वारा पूरक उद्योगों की स्थापना करके संतुलित विकास को संभव बना सकता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्री कई कारणों से

इस मत से सहमत नहीं हैं जिसकी विवेचना निम्नवत है -

1. निजी उद्यम लाभ भावना से प्रेरित होने के कारण सभी प्रकार के उद्योगों में निवेश करने के लिए तैयार नहीं होता।
2. निजी उद्यमियों द्वारा साधनों के दोषपूर्ण आवंटन की संभावना प्रायः बनी रहती है।
3. कीमत यंत्र पूंजीगत निवेशों की परस्पर पोषक लहर उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है।
4. तीव्र विकास के लिए भौतिक तथा मानवीय पूँजी में एक साथ निवेश करना जरूरी है और मानव पूँजी में बड़े पैमाने पर निवेश केवल सरकार ही कर सकती है निजी उद्यमी नहीं।
5. सामाजिक उपरि पूँजी या अधःसंरचना का निर्माण, जो कि संतुलित विकास की पूर्व शर्त है, केवल सरकार द्वारा ही संभव है।

## 2. रोजेन्स्टीन रोडान का मत

रोजेन्स्टीन रोडान का मत नर्कसे की भांति रोडान ने भी अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। परन्तु उनकी विचाराधारा नर्कसे से इस दृष्टि से भिन्न है कि वे सन्तुलित विकास की नीति को एक 'बड़े धक्के' के रूप में लागू करना चाहते हैं। बड़े धक्के से उनका अभिप्राय सभी क्षेत्रों में एक साथ 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में विनियोग करना है।

सन्तुलित विकास के समर्थन में एक अन्य तर्क का सहारा लेते हुए रोडान का कहना है कि आमतौर पर निवेश का 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' (SMP) उसके 'निजी सीमान्त उत्पाद' (PMP) से भिन्न होता है और जब विभिन्न उद्योगों के एक समूह का उनकी 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' के अनुसार एक साथ नियोजन किया जाता है तो अर्थव्यवस्था की विकास दर निश्चित ही अधिक होती है। इसका कारण यह है कि एक व्यक्तिगत उद्यमी की रूचि केवल निवेश के 'निजी सीमान्त उत्पाद' में होती है और दूसरा उसके लिए 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' का सही-सही अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है। रोडान ने इस बात की पुष्टि में कि निवेश का 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' उसके 'निजी सीमान्त उत्पाद' से अधिक होता है, एक जूता फैक्टरी का उदाहरण भी दिया है। मान लीजिये एक नयी शुरू की गयी जूता फैक्टरी में 20 हजार बेरोजगार श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। यदि ये सभी कार्यरत श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर व्यय कर दें तो जूतों के लिए आवश्यक बाजार उपलब्ध होने लगेगा। लेकिन ऐसा हो नहीं पायेगा। सभी श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर इसलिये खर्च नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें अपनी अन्य आवश्यकताओं को भी पूरा करना है। हां! इसके विपरीत यदि सभी प्रकार की उपभोगीय वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों का जाल (श्रृंखलाएं) फैला दिया जाये (जिन पर श्रमिक अपनी आय व्यय करें) तो ऐसी स्थिति में उद्योगों का विस्तार गुणक प्रक्रिया के रूप में होगा। इस प्रकार परस्पर पूरक उद्योगों का योजनाबद्ध ढंग से विकास होने पर बाजार के आकार का विस्तार होता है, माल के न बिकने की जोखिम घटती है, और औद्योगिक विकास तीव्र होने लगता है।

संक्षेप में प्रो. रोडान द्वारा सन्तुलित विकास के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस प्रकार हैं -

तीव्र आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि परस्पर पूरक उद्योगों में एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए।

1. सन्तुलित विकास का अर्थ है श्रम प्रधान तकनीक का अपनाया जाना। यह वह तकनीक है जिसमें पूँजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग किया जाता है। श्रम प्रधान तकनीक के अपनाने से रोजगार के साथ साथ क्रय शक्ति बढ़ती है जिससे **प्रभावपूर्ण मांग** में वृद्धि होकर आर्थिक विकास तेज हो जाता है।
  2. विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक साथ विनियोग करने पर निजी क्षेत्र के लाभ कम हो जायेंगे और **सामाजिक लाभ** में वृद्धि हो जायेगी। यही आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य है।
  3. सन्तुलित विकास पद्धति, बाहरी बचतों को पैदा करके अन्य क्षेत्रों में निवेश के अवसर बढ़ा देती है।
3. प्रो. आर्थर लेविस के विचार

प्रो. लुइस ने आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को ही उचित ठहराया है। उनके मतानुसार “**विकास योजनाओं में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए जिससे कि कृषि एवं उद्योगों के बीच तथा घरेलू उपभोग हेतु उत्पादन और निर्यात हेतु उत्पादन के बीच एक उचित सन्तुलन बनाये रखा जा सके। हां ! यह धारणा देखने में जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण भी, किन्तु फिर भी, इसे आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता।**” सन्तुलित विकास का सबसे बड़ा गुण यह है कि विकास के मार्ग में आने वाले विभिन्न प्रकार के अवरोध स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं। कुछ लोगों द्वारा सन्तुलित विकास की आलोचना प्रायः इस आधार पर की जाती है। सभी क्षेत्रों में समान दर से विकास करना सम्भव नहीं है। प्रो. लुइस ने इस आलोचना का उत्तर देते हुए कहा है कि, “**सन्तुलित विकास का अर्थ, सभी क्षेत्रों का समान विकास नहीं है बल्कि विकास के वे अनुपात हैं जो विकास की भिन्न दरों की मांगों से चालित होते हैं। दूसरे शब्दों में, सभी क्षेत्रों का उनकी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार वांछनीय दर से विकास होना, सन्तुलित विकास कहलाता है।**”

### 8.3.3 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार

1. सन्तुलित विकास का अर्थ एक साथ सभी उद्योगों में निवेश करना है। जिस प्रकार शरीर के लिए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास का होना आवश्यक है।
2. सन्तुलित विकास की प्रक्रिया एक ‘बड़े धक्के’ से आरम्भ की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में, सन्तुलित विकास के लिये सभी क्षेत्रों में आवश्यक न्यूनतम निवेश किया जाना जरूरी है।
3. सन्तुलित विकास पूरक उद्योगों का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है जिससे बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं।
4. यह सिद्धान्त बहुमूल्य विकास के सिद्धान्त की धारणा पर आधारित है।
5. यह सिद्धान्त मांग की दृष्टि से प्रभावपूर्ण मांग एवं पूरक मांग को उत्पन्न करने और पूर्ति की दृष्टि से

- विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देता है।
6. अल्प विकसित देशों में व्याप्त विषैले वृत्तों विशेषकर निर्धनता के दृष्टिक्र को तोड़ने के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को अपनाया जाना अत्यावश्यक है, ताकि उपलब्ध पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग हो सके।
  7. सन्तुलित विकास से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।
  8. सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के लिये अधिक उपयोगी है, किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में इसका महत्व बहुत कम है।
  9. सन्तुलित विकास के अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं जिसमें अतिरिक्त बाहरी बचतें, सामाजिक लाभ में वृद्धि, जोखिम में कमी। रोजगार में वृद्धि, मूल्य स्थिरता, देश का सर्वांगीण विकास, सन्तुलित विदेशी व्यापार तथा आर्थिक नियोजन के लिए स्वस्थपूर्ण वातावरण के निर्माण इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

### 8.3.4 सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना

जहां सन्तुलित विकास के विचार के समर्थकों की कमी नहीं, वहां इसके आलोचकों का भी अभाव नहीं है। प्रो. सिंगर, मार्क्स फ्लेमिंग, प्रो. एलबर्ट तथा हर्षमैन सन्तुलित विकास सिद्धान्त के मुख्य आलोचक माने जाते हैं। सिद्धान्त की मुख्य आलोचनार्यें इस प्रकार हैं -

1. **अल्प विकसित देशों की सामर्थ्य से बाहर** - सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिये पर्याप्त पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है। जबकि इन सभी साधनों का अल्प विकसित देशों में अभाव होता है। ऐसी दशा में एक तरफ पर्याप्त साधनों के उपलब्ध होने की शर्त और दूसरी ओर उनका अभाव स्वयं में ही एक विरोधाभास है अर्थात् एक असंगत समीकरण है। इससे भी अजीब बात तो यह है कि जो देश (अल्प विकसित) खण्डगत विकास करने की स्थिति में नहीं होता, वह सम्पूर्ण विकास एक साथ कैसे कर सकता है। यह बात बिल्कुल ऐसी है जैसे भवन की पहली मंजिल बनाने की सामर्थ्य न रखने वाले शिल्पी को, अगली दो मंजिलें बनाने का सुझाव देना।

अतः प्रो. हिगीन्स का कहना है कि अल्प विकसित देशों को 'बड़ा सींचने' की सलाह देना तो अच्छा है लेकिन सामर्थ्य न होने पर 'बड़ा काम करने' इनके लिए मूर्खता का सुझाव है। सिद्धान्त की इस अव्यावहारिकता को देखते हुए प्रो. सिंगर ने कहा है कि बहुमुखी विकास के लाभ अर्थशास्त्रियों के पढ़ने के लिये रोचक तो हो सकते हैं किन्तु अल्प विकसित देशों के लिए वे वास्तव में निराशाजनक समाचार है।

2. **उद्योगों के पूरक होने की दोषपूर्ण मान्यता** - सन्तुलित विकास के समर्थकों की यह एक बहुत बड़ी भूल रही है कि उन्होंने विभिन्न उद्योगों को परस्पर पूरक माना है। वास्तविकता तो यह है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न उद्योगों के बीच सम्बन्ध पूरक न होकर प्रतियोगी होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन लागतों के बढ़ने, आर्थिक प्रेरणाओं के घटने और अपव्ययों के अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रो. मार्क्स एवं फ्लेमिंग का भी कहना है कि "सन्तुलित विकास का

*सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि उद्योगों के बीच सम्बन्ध अधिकांशतः पूरक होता है किन्तु व्यवहार में साधनों की पूर्ति की सीमितता इस सम्बन्ध को अधिकांश रूप से प्रतिरोधी बना देती हैं।”*

3. **सीमित साधनों का अपव्यय** - अगर थोड़ी देर के लिए सन्तुलित विकास के सिद्धान्त को स्वीकार भी कर लिया जाय, तो यह हो सकता है कि सभी क्षेत्रों में थोड़े-थोड़े पूँजीगत विनियोग के कारण किसी भी क्षेत्र में प्रगति न होने पाये। जिसका अर्थ होगा - राष्ट्र के सीमित साधनों का पूर्ण अपव्यय। वास्तव में, यह बात ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार यह कहना कि *‘एक आदमी तब तक कुछ नहीं कर सकता जब तक कि वह सब कुछ करने के काबिल न हों।’* सच तो यह है कि *‘जो आदमी सब कुछ करने की सोचता है वह कुछ भी नहीं कर पाता।’* प्रो. बैजामिन हिगीन्स का कहना है कि *“वहां सैकड़ों फूल कैसे खिल सकते हैं जहां पर एक फूल भी उचित देखभाल के अभाव में मुरझा जाता हो।”*
4. **साधनों का अभाव** - सन्तुलित विकास का सिद्धान्त ‘से’ के बाजार नियम पर आधारित है कि *“पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेती है।”* लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुओं की पूर्ति का सम्बन्ध साधनों (विशेष रूप से पूँजी) की मांग से होता है जो अपनी पूर्ति नहीं कर सकती। जब अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश किया जायेगा तो साधनों के लिये मांग प्रतियोगी बन जायेगी। परन्तु अल्प विकसित देशों में साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है। इस प्रकार सिद्धान्त का प्रमुख तर्क ही गलत सिद्ध हो जाता है। आर्थिक विकास की सर्वोपयुक्त नीति यह होगी कि उपलब्ध साधनों का उन क्षेत्रों में निवेश किया जाए जो पहले से है अपेक्षाकृत विकसित हैं और जिनमें शीघ्र फल देने, जल्दी विकसित होने तथा देश की अर्थव्यवस्था को लचीला बनाने की सम्भावनाएं विद्यमान हैं। इसलिये डॉ. सिंगर का कहना है कि *“अल्प विकसित देशों की परिस्थितियों के लिये सामने से प्रहार करने की अपेक्षा छामामार युद्ध कला अधिक उपयोगी कही जायेगी।”*
5. **साधनों की लागत में वृद्धि** - इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश करने पर उत्पादन की वास्तविक तथा मौद्रिक लागतें घट जाती हैं। लेकिन सच यह है कि लागतें घटने के बजाय बढ़ती हैं। इसका कारण यह है कि नये उद्योग पुराने उद्योगों के साथ सीमित साधनों की पूर्ति के लिये प्रतियोगिता करते हैं। जिससे इन साधनों की कीमत बढ़ जाती है। इस सम्बन्ध में प्रो. किण्डलबर्जर का कहना है कि नर्कसे मॉडल का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह नए उद्योगों की स्थापना की बात तो करता है लेकिन वर्तमान उद्योगों में उत्पादन लागत को घटाने की सम्भावना पर विचार नहीं करता है। ध्यान रहे, जब नए उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो इससे वर्तमान फार्मों के माल की मांग कम हो जाने से वे अलाभप्रद हो जायेंगी। यह बात तो ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार कि *“नये पौधे लगाते रहो; भले ही पुराने सूखते रहें।”*
6. **साधनों में व्यनुपातिक** - सन्तुलित विकास नीति को लागू करने की एक बड़ी कठिनाई अल्प विकसित देशों में उत्पादन के साधनों के बीच व्यनुपातिका का पाया जाना है। कुछ देशों में श्रम की अधिकता होती है तो पूँजी तथा उद्यम का अभाव होता है। जबकि अन्य देशों में यह स्थिति अन्यथा हो सकती है। इस प्रकार साधनों की पूर्ति गैर-आनुपातिकता सन्तुलित विकास की नीति को सार्वभौमिक रूप से लागू करने

- में एक रूकावट सिद्ध होती है।
7. **विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल - एल्बर्ट हर्षमैन** के मतानुसार सन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल है अर्थात् इसे विकास का सिद्धान्त माना ही नहीं जा सकता। विकास से आशय है एक प्रकार की अर्थव्यवस्था को दूसरी प्रकार की उन्नत अर्थव्यवस्था में बदलना। जब कि यह सिद्धान्त इसमें असफल रहा है।
  8. **बाधाओं की उपेक्षा** - इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसमें विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं, कमियों व आधिक्य क्षमताओं आदि की पूर्णतया उपेक्षा की है।
  9. **सिद्धान्त की अल्प विकसित देशों के लिये अव्यवहार्यता** - हर्षमैन का कहना है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकसित देशों के लिये तो उपयुक्त है लेकिन उसे अल्प विकसित देशों पर लागू करना गलत होगा। **“वास्तव में यह सिद्धान्त कीन्स की अल्प रोजगार स्थिति का एक अल्प विकसित देश पर निरर्थक प्रयोग है।”** इसका कारण यह है कि विकसित देशों में व्यापार चक्र के कारण आर्थिक क्रियाओं में जो एक अस्थायी शिथिलता आ जाती है। सन्तुलित विकास से इस आर्थिक क्रिया का समुत्थान होना सम्भव है क्योंकि विकास की सभी शक्तियां एवं घटक जो कि अस्थायी रूप से निलम्बित होते हैं, फिर से विकास शुरू किये जाने की प्रतीक्षा में मौजूद रहते हैं। किन्तु अल्प विकसित देशों की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न होती है। इन देशों में आर्थिक क्रियाएं विकसित देशों की भांति अस्थायी रूप से रूकी न होकर स्थैतिक अर्थात् अवरूद्ध होती है इसलिये सन्तुलित विकास का सिद्धान्त अल्प विकसित देशों पर लागू करना गलत है।
  10. **सफल सरकारी निर्देशन तथा निवेश की दोषपूर्ण मान्यता** - यह सिद्धान्त आर्थिक विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार को सौंपता है और केन्द्रीय नियोजन तथा निर्देशन की सफलता को पहले से ही मानकर चलता है, आलोचकों ने सरकारी निर्देशन तथा निवेश की कुशलता पर सन्देह व्यक्त किया है और यह ठीक भी है क्योंकि निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र की कुशलता से हम सभी लोग पूरी तरह से परिचित हैं। फिर केन्द्रीय नियोजन तथा सार्वजनिक निवेश तभी विकास कारक हो सकते हैं जब आर्थिक बचतें आन्तरिक बनाई जा सकें। अमितव्ययिताएं कम की जा सकें और सामाजिक लागतें समाप्त की जा सकें। चूंकि सन्तुलित विकास में इन परिमाणों की आशा करना व्यर्थ है इसलिये इसकी सफलता भी सन्देहप्रद है।
  11. **बढ़ते प्रतिफल की दोषपूर्ण मान्यता** - इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि सन्तुलित ढंग से निवेश करने पर मांग में वृद्धि होती है और पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। किन्तु यह मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि ये दोनों शक्तियां विपरीत दिशाओं में जोर लगाती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि पैमाने के प्रतिफल बहुत अधिक हो जाएं तो ऐसी दशा में एक अल्प विकसित देश उन्हीं क्षेत्रों में निवेश करने के बजाए अब दीर्घकालीन पूंजीगत परियोजनाओं में निवेश में करेगा तो इससे कच्चे माल, कीमतों, साधन न्यूनताओं इत्यादि की अड़चनें उत्पन्न होगी, जिसका परिणाम होगा घटते प्रतिफल का प्राप्त होना। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बढ़ते प्रतिफल के स्थान पर घटते प्रतिफल प्रदान करता है।

**12. आर्थिक विकास बाधाओं से प्रेरित होता है - पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि आर्थिक इतिहास इस बात का गवाह है कि आज उन्नत कहे जाने वाले देश अपना आर्थिक विकास असन्तुलित विकास पद्धति से ही कर सकते हैं। वास्तव में संतुलित विकास नहीं बल्कि अभाव, दुर्लभताएं तथा अड़चनों ने ही आविष्कारों को जन्म दिया है और इंग्लैण्ड तथा संसार की अर्थव्यवस्थाओं में क्रान्ति पैदा की है। उन आविष्कारों ने असन्तुलन उत्पन्न किये और इस प्रकार आर्थिक विकास असाम्यों के बने रहने अथवा असन्तुलनों की श्रृंखला का परिणाम होता है।**

## 8.4 असंतुलित विकास सिद्धान्त

### 8.4.1 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त सन्तुलित विकास की धारणा के बिल्कुल विपरीत है। असन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास न करके कुछ चुने हुए प्रमुख क्षेत्रों का गहन विकास करना। असन्तुलित विकास पद्धति का 'औचित्य' इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों के पास पूँजी व अन्य आवश्यक साधन इतने नहीं होते कि सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जा सके फिर उपलब्ध सीमित साधनों का सभी क्षेत्रों में समान वितरण करना न केवल अनार्थिक सिद्ध होता है बल्कि अल्प विनियोग से सभी क्षेत्रों में विकास की दर या तो शून्य बनी रहती है अथवा उसमें नाम मात्र की वृद्धि होती है। इस कारण ऐसे देशों में कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण क्षेत्रों या उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश करके विकास की गति तीव्र की जाती है और उनसे उत्पन्न होने वाली बचतों में वृद्धि होने से अन्य क्षेत्रों का भी सामाजिक विकास होने लगता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था धीरे धीरे असन्तुलित विकास से सन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती है। असन्तुलित विकास में विकास की शुद्ध दर, सन्तुलित विकास की औसत दर से अधिक होती है। इसको एक उदाहरण द्वारा आगे स्पष्ट किया गया है।

**काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण -** मान लीजिए एक पिता के तीन पुत्र हैं। बड़ा पुत्र बुद्धिमान है और उसमें प्रगति करने की क्षमता और आकांक्षायें विद्यमान हैं। इसके विपरीत मंझला डफर (मूर्ख) है और छोटा लोफर है। उदाहरण की मान्यता यह है कि पिता के पास 30 हजार रूपया है जो वह तीनों लड़कों के भविष्य निर्माण के लिये शिक्षा आदि पर खर्च करना चाहता है। अगर पिता समदर्शी है अर्थात् तीनों बच्चों का सन्तुलित विकास चाहता है तो यह राशि तीनों पर लगभग समान रूप से व्यय की जायेगी। फलस्वरूप बड़ा लड़का एम. ए. पास करता है, मंझला हाई स्कूल की सीमा पर रूक जाता है और छोटा प्राइमरी से आगे न बढ़ने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। इस दशा में परिवार की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं होगा। हां! इसके विपरीत अगर पिता यह सारा धन बड़े लड़के पर व्यय करे और उसे विदेश में जाकर अध्ययन करके विकास करने की पूर्ण सुविधा हो तो यह निश्चित है कि उसके विकास का प्रतिफल पहले वाली स्थिति से अधिक होगी। रही बात दोनों छोटे लड़कों की, यह उचित होगा कि मंझले को बिना पढ़ाई का कष्ट दिये हुए पहले से ही, साईकिल मरम्मत की दुकान खुलवा दी जाये और छोटे को सिनेमा की गेट कीपरी का उम्मीदवार बनाया जाये। धन के विनियोग की इस व्यवस्था से परिवार की आय में वृद्धि, पहले की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक होगी। वास्तव में, असन्तुलित विकास का भी यही

अभिप्राय है। (उदाहरण को सन्तुलित विकास पर पूर्णतया लागू न किया जाये, यह तो केवल एक संकेत मात्र है) **असन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक -**

प्रो. हर्षमैन तथा सिंगर असन्तुलित विकास के प्रवर्तक हैं। जबकि इस पद्धति का समर्थन करने वालों में मार्क्स फ्लेमिंग, बौर एवं यामी, प्रो. रूजीना जे. शीहान और किन्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रियों का नाम उल्लेखनीय है। नीचे हम कुछ विचारों का अध्ययन करेंगे -

**प्रो. हर्षमैन की कूट नीति -**

असन्तुलित विकास सिद्धान्त के प्रवर्तक प्रो. हर्षमैन का कहना है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में निवेश ऐसे क्षेत्रों (पूँजीगत उद्योगों) में केन्द्रित किये जाने चाहिए जो आगे चलकर विकास की दर को बढ़ाने वाले हों। चूँकि आर्थिक विकास असन्तुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है इसलिये **“एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था का जानबूझ कर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है।”** असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है। इसलिये उनका मत है कि **“सामान्यता विकास नीति का उद्देश्य असन्तुलनों को समाप्त करने के बजाय उन्हें जीवित रखने का होना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाते रहना है तो विकास नीति का कार्य तनाव, व्यनुपातों तथा असन्तुलनों को बनाए रखना होना चाहिए।”** एक आदर्श स्थिति वह होती है जब एक असन्तुलन ऐसे विकास को प्रेरित करे जिसके फलस्वरूप फिर उसी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न हो और यह क्रम इसी प्रकार निरन्तर बढ़ता रहे।

हर्षमैन के सिद्धान्त का सार यह है कि अर्थव्यवस्था को असन्तुलित करके ही विकास किया जा सकता है और यह तभी सम्भव है जब तो सामाजिक उपरि व्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) में विनियोग किया जाये, क्योंकि उपरिव्यय पूँजी बाह्य मितव्ययिताओं को पैदा करती है और प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियायें मितव्ययिताओं का पुनर्विनियोजन सम्भव बनाती है।

#### 8.4.2 सामाजिक उपरि व्यय पूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं की भूमिका

##### ❖ सामाजिक उपरिव्यय पूँजी द्वारा निर्मित असन्तुलन

सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) से अभिप्राय उन आधारभूत सेवाओं से है जिनके बिना प्राथमिक, द्वितीयक, एवं तृतीयक प्रकार की उत्पादक क्रियाएं नहीं चल सकतीं। उदाहरणार्थ, शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, परिवहन, जल विद्युत तथा सिंचाई आदि पर किये गये निवेश को सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) की संज्ञा दी जाती है। **डॉ. हर्षमैन** का मत है कि यदि सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) में बड़ी मात्रा में निवेश किया जाये तो यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) में निजी निवेश को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के तौर पर यदि देश में विद्युत शक्ति की पूर्ति सस्ती दरों पर

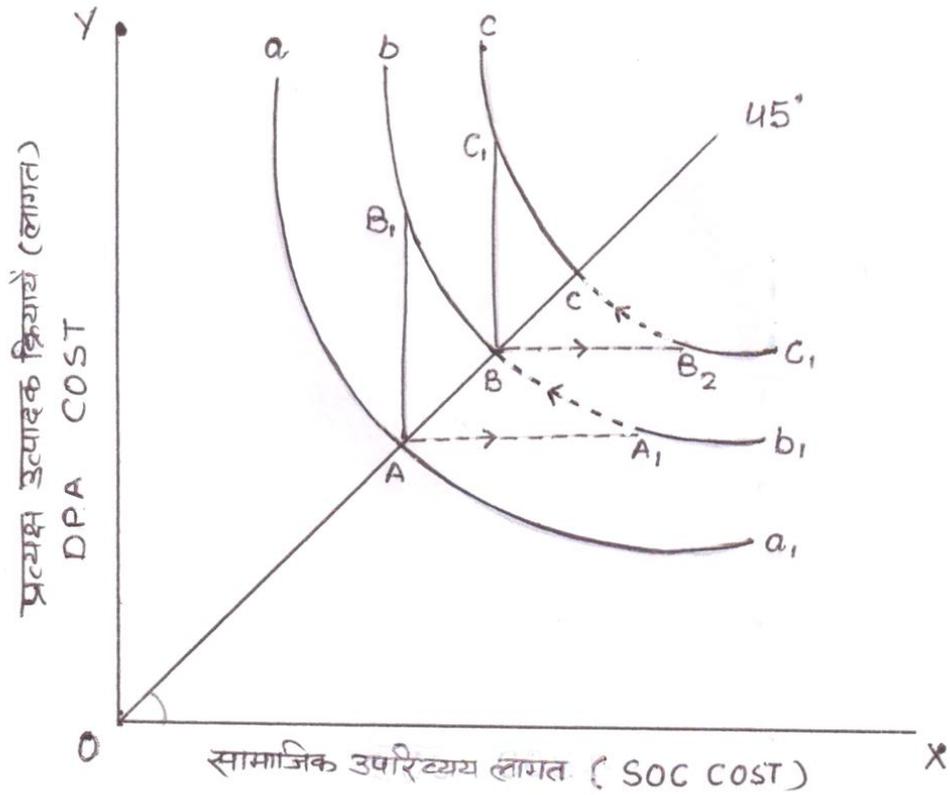
होने लगे अथवा यातायात की सुविधाओं का पूरा विकास हो जाये तो इससे कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास को बढ़ावा मिलता है क्योंकि इससे इन क्षेत्रों में एक तरफ उत्पादकता बढ़ती है तो दूसरी ओर उत्पादन लागत घट जाती है। अतः आर्थिक विकास की व्यूह रचना का तरीका यह होना चाहिए कि सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) को बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाया जाए ताकि आगे चलकर प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) में निवेशों को प्रोत्साहन मिल सके। **हर्षमैन** ने स्वयं कहा है कि “सामाजिक उपरिव्यय मदों में निवेश का समर्थन इसलिए नहीं किया जाता कि इससे अन्तिम उत्पादक पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है यह तो वास्तव में, प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) को आगे बढ़ने का एक निमंत्रण है..... अतः प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) निवेश के लिये सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) निवेश का होना एक आवश्यक शर्त है।

### प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाना -

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से आशय निर्माणी उद्योगों के विस्तार से है। यदि कोई सरकार सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) में निवेश करने की बजाए पहले प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct Productive Activities - DPA) में निवेश करती है तो, इससे सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के अभाव में उत्पादन की लागतें बढ़ जायेंगी और विकास की गति धीमी बनी रहेगी। हां! यह बात अलग है कि कुछ समय पश्चात् राजनैतिक दबावों के कारण सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital - SOC) में निवेश की मात्रा बढ़ा दी जाये, परन्तु इससे समय-अन्तराल के कारण उत्पन्न लागत वृद्धि प्रभाव को रोका नहीं जा सकता है।

### विकास का मार्ग -

उपर्युक्त दोनों स्थितियों को हर्षमैन ने विकास के दो विभिन्न मार्ग बताए हैं। पहले क्रम को उसने “**सामाजिक उपरिव्यय पूँजी की अतिरिक्त क्षमता के मार्ग से विकास**” और दूसरे को “**सामाजिक उपरिव्यय पूँजी की न्यूनता के विकास मार्ग**” की संज्ञा दी है। हर्षमैन का कहना है कि इन दोनों क्रमों में से उस क्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपेक्षाकृत अधिक ‘**प्रबल आत्म प्रणोदी**’ हो। इसे रेखाचित्र से नीचे स्पष्ट किया गया है -



चित्र संख्या 8.1

चित्र में तीन वक्र  $AA_1$ ,  $BB_1$  तथा  $CC_1$  सम-मात्रा वक्र हैं जो DPA और SOC के उन विभिन्न संयोगों अर्थात् मात्राओं को प्रकट करते हैं जिनके किसी भी बिन्दु पर राष्ट्रीय आय की कुल मात्रा समान होगी। हां ! दायीं ओर का प्रत्येक वक्र राष्ट्रीय आय के उच्च स्तर को बतलाता है। मूल बिन्दु व् से खींची गयी  $45^\circ$  की रेखा तीनों सम मात्रा वक्रों के अनुकूलतम बिन्दुओं को मिलाती है और साथ ही यह रेखा SOC तथा DPA की सन्तुलित वृद्धि का दर्शाती है। हर्षमैन ने विकास प्रक्रिया नीति के लिये दो **मान्यताएं** मानी हैं- **प्रथम** SOC और DPA का एक साथ विस्तार नहीं किया जा सकता और **दूसरा**, विकास की वह रूप रेखा अपनाईजाये जो प्रेरित निर्णयकरण को अधिकतम कर दे।

यदि कोई देश प्रथम क्रम अर्थात् SOC की ‘अतिरिक्त क्षमता के मार्ग’ से विकास की नीति को अपनाता है तो ऐसी दशा में अर्थव्यवस्था बिन्दुकिंत रेखा मार्ग  $AA_1$ ,  $BB_1C$  का अनुसरण करेगी। यदि SOC को A से  $A_1$  तक बढ़ाया जाता है तो इससे प्रेरित DPA निवेश  $B_1$  तक लगातार बढ़ता रहेगा जब तक कि B बिन्दु पर पुनः सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस बिन्दु पर समस्त अर्थव्यवस्था उत्पादन के पहले से अधिक ऊंचे स्तर पर होगी। अब यदि सरकार इस बढ़े हुए राष्ट्रीय उत्पादन से प्रेरित होकर SOC को और अधिक बढ़ाकर B से  $B_2$  पर लाती है तो इससे DPA भी बढ़कर बिन्दु C पर पहुँच जायेगा।

हां! उपरोक्त के विपरीत यदि SOC की न्यूनता वाले विकास मार्ग को अपनाया जाये तो अर्थव्यवस्था सपाट रेखा  $AB_1BC_1C$  के मार्ग से आगे बढ़ती है। जब DPA की मात्रा में  $B_1$  तक वृद्धि की जाती है तो SOC को  $A_1$  बिन्दु तक और फिर B बिन्दु तक बढ़ना पड़ता है। इसी प्रकार यदि DPA को आगे  $C_1$  बिन्दु तक बढ़ाया जाता है तो सन्तुलन से लिए आवश्यक है कि SOC भी बढ़कर C बिन्दु पर आ जाये।

अतः स्पष्ट है कि निवेश का प्रथम विकल्प अर्थात् विकास की पहली नीति दूसरे की अपेक्षा अधिक निर्विघ्न एवं सपाट है और आत्म प्रणोदी भी। हर्षमैन के अपने शब्दों में, **“न्यूनता के मार्ग से विकास की व्यूह रचना अव्यवस्थित एवं विवशताकारी अनुक्रम का प्रतीक है जबकि SOC की अतिरिक्त क्षमता का विकास मार्ग मूलतः अनुज्ञापक है।”**

**अनुबन्धन या सहलग्नता प्रभाव -**

हर्षमैन के अनुसार अब समस्या यह उठती है कि अर्थव्यवस्था में असन्तुलन किस प्रकार उत्पन्न किए जायें अर्थात् असन्तुलनों का वह तरीका ढूंढा जाए जो कि अधिकतम प्रभावशाली सिद्ध हो सके। किसी भी निवेश परियोजना के अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (Forward Linkage Effects - FLE) तथा प्रतिगामी अनुबन्धन प्रभाव (Backward Linkage Effects - BLE) दोनों हो सकते हैं। अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (Forward Linkage Effects - FLE) उत्पादन की आगामी अवस्थाओं में निवेश को बढ़ावा देते है जबकि प्रतिगामी अनुबन्धन प्रभाव (Backward Linkage Effects - BLE) उत्पादन की पिछली या **‘प्रारम्भिक अवस्थाओं’** में निवेश की प्रोत्साहित करते हैं। हर्षमैन का कहना है कि हमारा उद्देश्य पहले उन उद्योगों का पता लगाना होना चाहिए। जिनका **‘कुल अनुबन्धन प्रभाव’** (Total Linkage Effects) अधिकतम हो। यद्यपि अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (Forward Linkage Effects - FLE) वाली परियोजनाएं अलग अलग देशों में भिन्न भिन्न समय पर अलग अलग हो सकती है तथापि हर्षमैन के अनुसार लौह एवं इस्पात उद्योग का अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (Forward Linkage Effects - FLE) सबसे अधिक होता है। यही कारण है कि अल्प विकसित देश प्रायः इस्पात उद्योग को सर्वाधिक महत्व देते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक देश में लौह इस्पात उद्योग से विकास शुरू किया जाये। इसका यह अर्थ नहीं कि अल्प विकसित देशों में परस्पर निर्भरता तथा अनुबन्ध का प्रायः अभाव होता है जैसे कृषि या खनन उद्योगों में अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (Forward Linkage Effects - FLE) तथा प्रतिगामी अनुबन्धन प्रभाव (Backward Linkage Effects - BLE) दोनों निर्बल होते हैं। इसलिये हर्षमैन का कहना है **“अन्तिम उद्योग पहले स्थापित किये जाने चाहिये क्योंकि उनमें अधोगामी अनुबन्धन अधिक होने के कारण वे अन्य उद्योगों की स्थापना को बल प्रदान करते हैं।”**

❖ **प्रो. रोस्टोव के विचार -**

प्रो. रोस्टोव के अनुसार **“किसी भी देश में आर्थिक विकास का कार्य कुछ अग्रगामी और**

आधारभूत क्षेत्रों के विकास के प्रत्यक्ष प्रभावों पर निर्भर करता है। वास्तव में, इन क्षेत्रों की उत्पादकता में होने वाली वृद्धि ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करती है।” इसलिए उनका कहना है कि प्राविधिक ज्ञान, उत्पादन तकनीक और सीमान्त उत्पादकता की दृष्टि से जो क्षेत्र दूसरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ हैं, सर्वप्रथम उन्हीं क्षेत्रों में ही विनियोग किया जाना चाहिए। असन्तुलित विकास की पद्धति अर्थ व्यवस्था के विकास को स्वयं संचालिकता प्रदान करती है।

#### ❖ प्रो. सिंगर का मत -

यद्यपि प्रो. सिंगर ने कुछ दशाओं में अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के संतुलित विकास पद्धति को ही उचित माना है, तथापि उनका कहना है कि तीव्र आर्थिक विकास का प्रश्न, मूलरूप से असन्तुलित विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। मांग और पूर्ति के असन्तुलन और साधनों के बेलोचपूर्ण होने के कारण विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का सन्तुलित ढंग कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये उनके मतानुसार “एक अधिक अच्छी नीति यही मानी जा सकती है कि उपलब्ध साधनों को उस प्रकार के निवेशों पर केन्द्रित किया जाये जो अर्थ व्यवस्था को अधिक लोचदार तथा बढ़ती हुई मांग तथा बढ़ते हुए बाजारों की प्रेरणा के अंतर्गत विकास करने के अधिक योग्य बनाते हों।” अतः अल्प विकसित देशों को प्रारम्भ से ही असन्तुलित विकास पद्धति को स्वीकार कर लेना चाहिए।

### 8.4.3 असन्तुलित विकास सिद्धान्त का सार

असन्तुलित विकास के मुख्य तत्व इस प्रकार है –

1. असन्तुलित विकास का सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है।
2. विकास की यह पद्धति बड़े धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार करती है परन्तु यह बड़ा धक्का सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विकेन्द्रित न होकर कुछ खास क्षेत्रों में केन्द्रित होना चाहिये।
3. असन्तुलित विकास प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के असन्तुलनों की एक कड़ी है। अर्थ व्यवस्था में असन्तुलन की एक कड़ी दूसरी नवीन कड़ी को उत्पन्न कर देती है और यही आर्थिक प्रेरणाओं के उत्पन्न होने के मूल सार है।
4. विकास की इस पद्धति में, निवेश सदैव कुछ विशेष क्षेत्रों में ही किये जाते हैं जिसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आर्थिक दबाव, अन्य क्षेत्रों के विकास को सरल बना देते हैं।
5. असन्तुलित विकास प्रक्रिया में सामाजिक ऊपरी पूंजी का विशेष महत्व है।

असन्तुलित विकास के लाभ -

1. तीव्र औद्योगिक एवं आर्थिक विकास - असन्तुलित विकास पद्धति का सबसे बड़ा लाभ देश का तीव्र आर्थिक एवं औद्योगिक विकास माना जाता है। पूंजी प्रधान तथा भारी उद्योगों की विकास दर ऊंची होती है जिससे देश प्रगति के मार्ग पर शीघ्रतः आरूढ हो जाता है।

2. **आधारभूत उद्योगों की स्थापना** - किसी भी देश का आर्थिक मोक्ष आधार भूत उद्योगों की स्थापना पर निर्भर करता है जो केवल असन्तुलित विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत ही पनप सकते हैं।
3. **सहायक उद्योगों का विकास** - असन्तुलित विकास के अंतर्गत जब भारी उद्योगों की स्थापना की जाती है तो इससे उपभोक्ता उद्योगों का विकास भी स्वतः ही होने लग जाता है।
4. **आर्थिक विकास का स्थायी स्वरूप** - असन्तुलित विकास के अंतर्गत जो परियोजनाएं शुद्ध की जाती है यद्यपि वे दीर्घकाल में प्रतिफल देती है लेकिन कालान्तर में चलकर ये योजनाएं देश की औद्योगिक नींव को मजबूत करके अर्थव्यवस्था को पूर्ण स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बना देती है।
5. **साधनों का अधिक उपयुक्त उपयोग** - अल्प विकसित देशों में पूंजी जैसे साधनों का सर्वथा अभाव होता है। जो थोड़ी बहुत पूंजी उपलब्ध होती है, उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में सभी क्षेत्रों में बांट देने पर पूंजी का सार्थक उपयोग नहीं हो पाता। सीमित साधनों का सर्वोपयुक्त उपयोग तभी माना जा सकता है जब उससे मिलने वाला प्रतिफल पर्याप्त हो और यह केवल असन्तुलित विकास के अंतर्गत ही सम्भव हो पाता है।
6. **आर्थिक अधो-संरचना का सृष्टि आधार** - किसी देश के आर्थिक विकास की आधार शिला उसकी अधः संरचना अर्थात् यातायात, संचार, जल शक्ति, विद्युत, बैंक व बीमा आदि के विस्तार पर निर्भर करती है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सामाजिक ऊपरी पूंजी के रूप में पर्याप्त विनियोग किया जाता है। जिससे इन क्षेत्रों का विधिवत विकास होने पर आर्थिक प्रगति की दर तीव्र हो जाती है।

#### 8.4.4 असंतुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनायें

1. **असन्तुलन प्रक्रिया की अपूर्ण व्याख्या** - असन्तुलित विकास के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में असन्तुलनों को पैदा किया जाना जरूरी समझा जाता है। लेकिन **पॉल स्ट्रीटन** तथा **प्रो. मायर** का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'महत्वपूर्ण' प्रश्न यह नहीं कि असन्तुलन पैदा किया जाए, अथवा नहीं, बल्कि यह देखना कि असन्तुलन की इष्टतम मात्रा 'क्या' हो? तथा शीघ्र विकास के लिये 'कहाँ' और 'कितना' असन्तुलन पैदा किया जाए, तथा बुद्धिशील बिन्दु कौन से हैं? इस प्रकार यह सिद्धान्त विकास बिन्दुओं की खोज करने में असमर्थ रहा है और इसमें विकास की संरचना, दिशा व समय पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका।
2. **प्रतिरोधों की अवहेलना** - इस सिद्धान्त का एक दोष यह बताया जाता है कि यह विस्तार की प्रेरणाओं पर तो ध्यान देता है लेकिन असन्तुलित विकास के फलस्वरूप प्रतिरोधों की सर्वथा उपेक्षा करता है।
3. **विकास का अपव्ययपूर्ण ढंग** - असन्तुलित विकास की यह रीति अपव्ययपूर्ण है क्योंकि इसके अंतर्गत फालतू उत्पादन क्षमता को अनावश्यक रूप से बनाए रखना पड़ता है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित नहीं होते बल्कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के मुकाबले में ऊंची दर से बढ़ते हैं। अतः कम गति से बढ़ने वाले क्षेत्रों के लिए पूंजीगत उपकरण उपलब्ध तो रहते हैं लेकिन उनका प्रयोग नहीं किया जा पाता जो कि एक प्रकार से साधनों का अपव्यय मात्र है।
4. **स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना** - असन्तुलित विकास की प्रक्रिया अर्थ व्यवस्था के अन्दर

स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करती है। जब अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास बिन्दुओं (पूँजीगत परियोजनाओं) पर बड़ी मात्रा में निवेश किया जाता है तो उससे मौद्रिक आय बढ़ती है जो उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति की तुलना में उनकी मांग बढ़ा देती है। फलस्वरूप कीमत स्तर में स्फीतिकारी वृद्धि होती है जिससे उपभोक्ताओं को भी अतिरिक्त आर्थिक भार और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है।

5. **आधारभूत सुविधाओं का आभाव** - असन्तुलित विकास पद्धति के लिये उच्चस्तरीय तकनीकी ज्ञान, पर्याप्त शक्ति व परिवहन तथा विस्तृत बाजार जैसी आधारभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है जिनका अल्प विकसित देशों में सर्वथा अभाव होता है।
6. **अनुबन्धन प्रभाव की कम उपयुक्तता** - हर्षमैन द्वारा प्रस्तुत अनुबन्धन प्रभाव विश्लेषण दोषपूर्ण है क्योंकि वह अल्प विकसित देशों के आंकड़ों पर आधारित नहीं है। इन देशों में सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के पूर्णतः विकसित न होने के कारण अनुबन्धन प्रभाव काफी कमजोर होता है।
7. **अल्प विकसित देशों की क्षमता से बाहर** - असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार निवेश असन्तुलनों को जन्म देते हैं जिनसे आर्थिक प्रक्रिया में दबाव तथा तनाव उत्पन्न होते हैं। आलोचकों का कहना है कि अल्प विकसित देशों में दबाव तथा तनाव गम्भीर परिणाम लिए होते हैं क्योंकि ये विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते हैं। इसलिये असन्तुलनों के माध्यम से विकास करना इन देशों के लिये उचित नहीं माना जा सकता।

## 8.5 संतुलित विकास सिद्धान्त और असंतुलित विकास सिद्धान्त की तुलना

विकास की कौन सी पद्धति अधिक श्रेष्ठ है? जहां तक इन दोनों पद्धतियों की श्रेष्ठता निर्धारण की बात है, यह कहना बहुत कठिन है कि इनमें से कौन सी पद्धति अधिक उपयुक्त समझी जाए, क्योंकि इन दोनों पद्धतियों के अपने कुछ गुण व दोष हैं। विकास की इन दोनों पद्धतियों का अन्तिम ध्येय तीव्र आर्थिक विकास करना है। अन्तर केवल इतना है कि विकास प्रक्रिया को क्या स्वरूप दिया जाए? अतः **प्रो. पॉल स्ट्रीटन** का कहना है कि सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के बीच चुनाव सम्बन्धी विवाद उत्पन्न करना निःसन्देह एक निरर्थक विचार है। यह दोनों पद्धतियां सही अर्थों में, प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इसलिए इन दोनों पद्धतियों में चुनाव करने की अपेक्षा इनके समन्वित उपयोग की चर्चा करना अधिक उपयोगी होगा।

फिर भी अल्प विकसित देशों की मूल विशेषताओं को देखते हुए अधिकांश विचारक असन्तुलित विकास नीति का ही समर्थन करते हैं क्योंकि इससे निवेश वृद्धि, आय-वृद्धि की अपेक्षा अधिक होती है और राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग की अपेक्षा ऊंची दर से बढ़ती है। दूसरा, भारी उद्योगों को अधिक महत्व दिए जाने के कारण बाह्य मितव्ययिताएं अधिक प्राप्त होती हैं जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। चूंकि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में असन्तुलनों का होना अनिवार्य है इस लिए **प्रो. मायर** का कहना है कि **“जब विकास देश असन्तुलन से बच नहीं सकता भले ही वह इसे पसन्द करे या न करे, तो फिर जान-बूझकर असन्तुलन पैदा करना (अर्थात् असन्तुलित विकास नीति को ही अपनाया अच्छा होगा) जिससे तीव्र विकास की सम्भावना अधिक हो सके।”**

भारत में आर्थिक विकास की रणनीति के अर्न्तगत **प्रथम पंचवर्षीय योजना** में के कृषि को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया और प्राथमिकताओं की दृष्टि से यातायात व संचार और सामाजिक सेवाओं को क्रमशः दूसरा व तीसरा स्थान मिला। भारी उद्योगों के विकास पर कोई विशेष बल नहीं दिया जा सका जो कि इस बात का संकेत है कि भारत की प्रथम योजना में, विकास की सन्तुलित रणनीति का अनुकरण किया गया था। सच तो यह है कि प्रथम योजना में संसाधनों का आवंटन करते समय विकास की रणनीति के प्रश्न पर कोई विचार ही नहीं किया जा सका। योजना में जो प्राथमिकताएं निर्धारित की गई थीं वह महज अनुमान, आवश्यकता और वातारण का परिणाम थीं। इसकी पुष्टि प्रो. जॉन पी. लेविस के इन शब्दों से भी होती है कि **“भारत की प्रथम योजना किसी सुनिश्चित कूटनीति के अभाव से ग्रसित थी।”** यह योजना विभिन्न राज्यों और राजकीय परियोजनाओं का मात्र एकत्रीकरण थी जिनमें परस्पर संबद्धता भी कम रही।

**दूसरी योजना** प्रो. महालनोबिस के नियोजन मॉडल पर आधारित थी, सरल अर्थों में असन्तुलित विकास की रणनीति थी। योजना की कूटनीति थी **“भारी उद्योगों में अपेक्षाकृत अधिक निवेश द्वारा और सेवाओं पर खर्च बढ़ाकर क्रय शक्ति को बढ़ाया जाए और नई मांग उत्पन्न की जाए। नयी मांग को पूरा करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों में जहां तक सम्भव हो सके, निवेश एवं उत्पादन बढ़ाकर उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ाई जाए।”** इस प्रकार दूसरी योजना की कूटनीति का लक्ष्य अर्थव्यवस्था के भीतर ही अधिक रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करना, सुदृढ़ पूंजी आधार का निर्माण करना और उत्पादन की तकनीकी दक्षता को बढ़ाना था। दुर्भाग्यवश विकास की यह व्यूह रचना अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुई और भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी असन्तुलनों, दबावों और तनावों का सामना करना पड़ा।

फलस्वरूप योजना निर्माता अधिक सतर्क हो गए और **तीसरी योजना** के लिए विकास की सन्तुलित नीति का चयन कर लिया गया। इस कूटनीति का सार था **“एक साथ कृषि और उद्योग, आर्थिक और सामाजिक विकास, प्रादेशिक और राष्ट्रीय विकास की परस्पर निर्भरता पर तथा घरेलू और विदेशी संसाधन जुटाने पर बल देना।”** इस कूटनीति का अंजाम भी सुखद नहीं रहा। सन्तुलित रणनीति के बावजूद व्यवहार में यह असन्तुलित विकास रणनीति बनी रही क्योंकि दीर्घकालीन परियोजनाओं में एकदम परिवर्तन न कर पाने के कारण निवेश ढांचा काफी हद तक भारी और पूंजी पदार्थ उद्योगों के पक्ष में बना रहा। इस कूटनीति से हमारे वित्तीय दृष्टि से लक्ष्य तो पूरे हो गए परन्तु उत्पादन एवं क्षमता के भौतिक लक्ष्य अधूरे ही बने रहे। चौथी योजना में भी सन्तुलित विकास की रणनीति का अनुसरण किया गया परन्तु उसके साथ साथ कृषि के प्रौद्योगिकी आधुनिकीकरण (अर्थात् हरित क्रान्ति) का भी इसमें समावेश कर लिया गया।

**पांचवी योजना** से ‘निवेश के पुनर्वितरण’ द्वारा विकास की नयी रणनीति अपनाई गयी जो नवी योजना सहित आगामी सभी पंचवर्षीय योजनाओं का आधार है। इस कूटनीति में सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास दोनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। यह कूटनीति प्रति व्यक्ति वृद्धि दर बढ़ाने के साथ साथ असीम दरिद्रता, बेरोजगारी और असमानताओं को उत्तरोत्तर कम करने पर बल देती है। स्पष्ट है कि इस रणनीति का आर्थिक संवृद्धि की दर को त्वरित करने (अर्थात् असन्तुलित विकास) और दूसरी ओर असमानताओं को कम करने (अर्थात् सन्तुलित विकास) की नीति से कोई टकराव नहीं है।

## 8.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

### बहुविकल्पीय प्रश्न

- गरीबी का दुश्चक्र तोड़ने के लिए रैगनर नर्स ने किस बात पर बल दिया।  
A. सन्तुलित विकास      B. असन्तुलित विकास  
C. कृषि विकास      D. औद्योगिक विकास
- असन्तुलित विकास की रणनीति का परामर्श दिया:  
A. रैगनर नर्स      B. हर्षमैन      C. रोजेस्टीन रोडन एन.काल्डोर
- निर्धनता का दुश्चक्र किस पक्ष से सम्बन्धित है?  
A. मांग पक्ष      B. पूर्ति पक्ष      C. उपर्युक्त दोनों उपर्युक्त में कोई नहीं
- "एक देश इसलिए दरिद्र है क्योंकि वह दरिद्र है।" यह कथन है  
A. रैगनर नर्स का      B. डी0 ब्राइट सिंह का      C. लेविस का      D. हिक्स का
- "विकास मानवीय प्रयत्नों का परिणाम है।" यह कथन है:  
A. एडम स्मिथ      B. शुम्पीटर      C. लुइस कोलिन क्लार्क
- निम्न में से कौन अर्थशास्त्री सन्तुलित विकास का समर्थक नहीं था।
- A. नर्स      B. रोडन      C. हर्षमैन लेविस
- हर्षमैन के अनुसार निम्न उद्योग में कूल सहलग्नता उच्चतम होता है:  
A. सीमेन्ट      B. चीनी      C. कपड़ा      D. लोहा एवं इस्पात
- आर्थिक आधारित उपरि संरचना आर्थिक विकास में:  
A. आवश्यक है किन्तु अनिवार्य नहीं      B. आवश्यक और अनिवार्य है  
C. अनावश्यक है      D. अवरोधक है
- वाणिक वादियों के अनुसार आर्थिक विकास है:  
A. रोजगार में वृद्धि      B. सोने एवं चांदी में वृद्धि  
C. कुल उत्पादन मात्रा में वृद्धि      D. उपरोक्त में से कोई नहीं

### सत्य/असत्य

- "Problem of Capital formation in Under Developed countries" पुस्तक को रैगनर नर्स ने लिखी।
- असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है।
- निर्धनता का दुश्चक्र मांग पक्ष से सम्बन्धित है।
- गरीबी का दुश्चक्र अल्पविकसित देशों में गरीबी की संचयी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है।

## 8.7 सारांश

संतुलित तथा असंतुलित वृद्धि के बीच वाद-विवाद बहुत अधिक बढ़ाया गया है जो कि प्रायः निरर्थक रहा

है। एक विकासशील देश में संसाधनों के अभाव को दृष्टिगोचर रखते हुए, सबसे उत्तम तरीका असंतुलित वृद्धि की कूटनीति को अपनाना है। इस कूटनीति के अंतर्गत पहले SOC को विकसित किया जाए जो आगे क्व्। में निवेश को प्रोत्साहित करेंगे तब अर्थव्यवस्था संतुलित वृद्धि की ओर अग्रसर होगी। भारत जैसे अनेक विकासशील देशों का अनुभव यह बताता है कि जब तक विद्युत, सिंचाई, मानवशक्ति, परिवहन आदि DPA का विकास नहीं किया जाता, कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का विकास रूक जाता है। वास्तव में, रूस का तीव्र विकास इसी तरह हुआ है जिसमें मुख्य क्रियाओं के विकास से अन्य क्रियाओं में विकास हुआ परन्तु वे अल्प विकसित देश जो प्रजातंत्र पर कायम हैं उन्हें विकास की इस कूटनीति पर चलते हुए स्फीति तथा विपरीत भुगतान शेषों की जुड़वां समस्याओं को नियंत्रित करना चाहिए तभी वे तीव्र आर्थिक विकास करने में सफल होंगे।

सन्तुलित विकास सिद्धान्त की मौलिक समस्या इसकी अल्पविकसित देशों की मूल तथा गम्भीर समस्या को समझने की असफलता है। सिंगर ने बताया है कि बड़े पैमाने पर सोचना अल्पविकसित देशों के लिए उचित राय है पर **“बड़े पैमाने पर कार्य करना एक बुद्धिमानीपूर्ण राय नहीं, यदि यह उनको साधनों की सीमा के बाहर जाकर प्रयास करने को कहता है।”** सिंगर के अनुसार सन्तुलित विकास दृष्टिकोण गलत नहीं है बल्कि अपरिपक्व है। इसको स्वपोषित विकास की अगली अवस्थाओं में लागू किया जा सकता है पर गतिहीनता की स्थिति को तोड़ने के लिए नहीं। अधिक अच्छी विकास नीति होगी तथा उपलब्ध संसाधनों को उन विनियोगों पर केन्द्रित किया जाय जो आर्थिक विकास को अधिक लोचदार बनाये तथा बढ़े हुए बाजार तथा बढ़ी हुई मांग से जनित प्रेरणा के संदर्भ में उसे विकसित होने के लिए अधिक सक्षम बनायें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास के लिए- कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के बीच समन्वय, विदेशी विनिमय की बचत तथा रोजगारपरक उद्योगों पर बल दिया गया ताकि विकास सुनिश्चित हो सके योजना आयोग ने दूसरी योजना की गणनायें यह मानकर की कि जनसंख्या की वृद्धि दर 1.25 प्रतिशत वार्षिक होगी पर वास्तव में जनसंख्या की वृद्धि दर 2 प्रतिशत वार्षिक से भी अधिक रही है। इस गलत अनुमान के फलस्वरूप खाद्यान्न की मांग को कम अनुमानित किया गया, अगर ऐसा नहीं रहा होता तो कृषि को और अधिक महत्व दिया गया होता। पर क्या गलत अनुमान के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तुलन को असन्तुलित आर्थिक विकास नीति का द्योतक मान लिया जाय, नहीं। इस प्रकार के असन्तुलन निश्चित रूप से जानबूझकर किये गये असन्तुलन से भिन्न होंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में संतुलित विकास नीति का ही अनुसरण किया गया है।

## 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### बहुविकल्पीय प्रश्न

1. असन्तुलित विकास, 2. रैगनर नक्स , 3. उपर्युक्त दोनों 4. रैगनर नक्स , 5. कोलिन क्लार्क , 6. नक्स, 7. लोहा एवं इस्पात, 8. आवश्यक और अनिवार्य है। , 9. कुल उत्पादन मात्रा में वृद्धि

### सत्य/असत्य

1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य

## 8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- एम. एल. झिगन, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन बिन्द्रा पब्लिशिंग हाउस ,दिल्ली, 2010
- एस. एन.लाल, आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद 1999
- एस. पी. सिंह, आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन “एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन, दिल्ली 2009

## 8.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Vakil and Branmanand Planning for in Expanding Economy.
- Second Five Year Plan.
- External Economic and Balanced Growth" in Aggarwal and Singh (*Eds.*) *op. cit.*,
- A.O. Hirschman, *The Strtegy of Economic Development*,.
- H.W. Siger, *Economic Progress in Undeveloped Countries*..
- Increasing Returns and Economic Progress, *Economic Journal* vol. 38, 1928.
- Scitovsky ‘Two Concepts of External Economices’ *Journal of Political Economy*. Vol. LXII. – 1954

## 8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'संतुलित आर्थिक वृद्धि की धारणा को समझाइए और अल्पविकसित देशों में इसकी रूकावटों को बताइए।
2. आर्थिक विकास के लिए संतुलित वृद्धि की धारणा के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. 'संतुलित विकास' के सम्बन्ध में नर्कसे और असंतुलित विकास के संबंध में हर्षमैन तथा रोस्टोव के विचारों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि पर एक टिप्पणी लिखिए।
5. 'संतुलित आर्थिक वृद्धि' की असंतुलित आर्थिक वृद्धि से भिन्नता प्रकट कीजिए। इन दोनों में भारतीय स्थिति के लिए कौन सी अधिक उपयुक्त है?
6. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि के विवाद को समझाइए। आप कौन सी तकनीक को श्रेष्ठ मानते हैं?
7. 'चूंकि संतुलित विकास के लिए साधन सम्पन्नता आवश्यक है जो एक सामान्य अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के पास नहीं होती है, इसलिए इनके विकास के लिए आयोजित असंतुलित ही एक आवश्यक शर्त है।' विवेचना कीजिए।
8. हर्षमैन के असंतुलित वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

---

## इकाई 9 - हार्वे लीबन्स्टीन का सिद्धान्त (Theory of Harvey Leibenstein)

---

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
  - 9.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
  - 9.3.2 सिद्धान्त की मान्यतायें
  - 9.3.3 सिद्धान्त की व्याख्या
  - 9.3.4 विकास के दूत/प्रतिनिधि
  - 9.3.5 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास
  - 9.3.6 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
- 9.4 रोडान बनाम हार्वे लीबन्स्टीन का मत
- 9.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 9.6 सारांश
- 9.7 शब्दावली
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.10 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री
- 9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 9.1 प्रस्तावना

1957 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘Economic Backwardness and Economic Growth’ में प्रो. एच. लीबन्स्टीन ने नेल्सन की ही तरह ‘अल्प प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति पाश’ की चर्चा की जिसमें विकासशील तथा अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएँ निरन्तर फंसी रहती हैं इस भंवर से निकालने के लिए लीबन्स्टीन ने ‘आवश्यक न्यूनतम प्रयास’ की आवश्यकता पर बल दिया जिससे प्रति व्यक्ति आय में इतनी अधिक वृद्धि आ जाये कि आय की वृद्धि दर जन संख्या की वृद्धि दर से अधिक हो जाये इस ‘निम्न संतुलन पाश’ से किसी देश को बाहर निकालकर सतत विकास की स्थिति में लाना किसी वायुयान को भूमि की सतह से उड़ाकर ऊपर ले जाने के समान हैं किसी वायुयान को हवा में उड़ने वाला बनाने के पहले यह आवश्यक है कि उसे एक न्यूनतम आवश्यक गति प्रदान की जाय, ठीक उसी प्रकार जब तक आवश्यक न्यूनतम प्रयास न किया जाये, अर्थव्यवस्था इस जाल से मुक्त नहीं हो सकती हैं।

## 9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ अर्थव्यवस्था कैसे अपने न्यूनतम प्रयास द्वारा आर्थिक विकास करती है।
- ✓ किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक न्यूनतम प्रयास क्यों जरूरी होता है।
- ✓ किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के दूत कौन-कौन से होते हैं।
- ✓ शून्य राशि प्रेरणाओं से क्या तात्पर्य है।
- ✓ धनात्मक राशि प्रेरणायें क्या होती है।
- ✓ विनियोग कसौटी की नीति कैसे आर्थिक विकास लाती है।

## 9.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

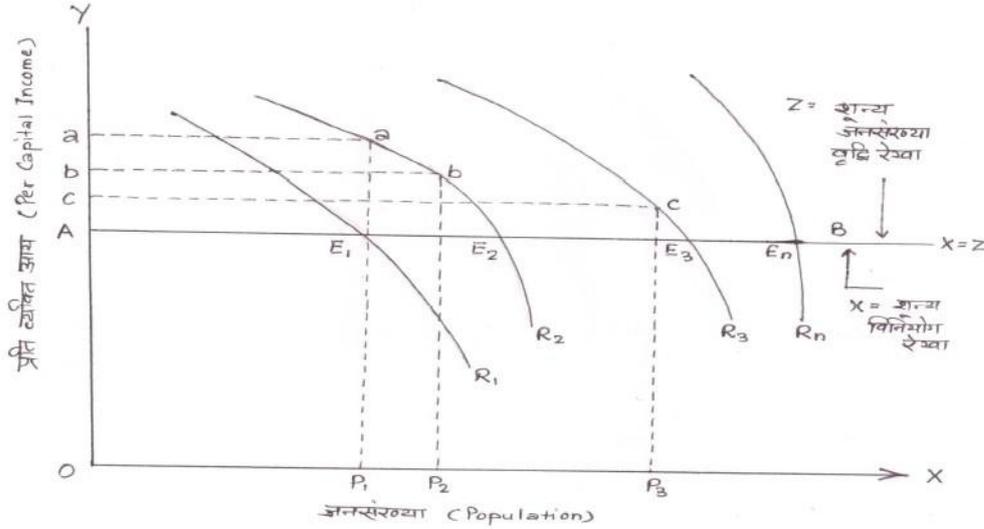
### 9.3.1 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों में जन संख्या दबावों के कारण निर्धनता एव अल्प पूँजी निर्माण का दुश्चक्र पाया जाता है। “ये विषम वृत्त इसलिये अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन (प्रयास) उपलब्ध नहीं किये जा सकते हैं।” जब निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में कम किया जाता है तो उससे आय में वृद्धि तो होती है लेकिन बढ़ी हुई आय, बड़ी हुई जनसंख्या द्वारा हड़प कर ली जाती है और फलस्वरूप विकास का क्रम स्थिर बना रहता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि निवेश ‘आवश्यक न्यूनतम मात्रा’ में किया जाये ताकि अल्प बचत व अल्प पूँजी निर्माण के रिस्ते हुए घावों को एक बारगी सुखाया जा सके अर्थात् आर्थिक दुश्चक्र तोड़ा जा सके।

### 9.3.2 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या

लीबन्स्टीन ने अपनी पुस्तक में अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए अनेक रेखाचित्रों का सहारा लिया। हम इसमें से कुछ को लेकर सिद्धान्त का विश्लेषण कर रहे हैं

- ऐसी स्थिति जबकि अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की वृद्धि शून्य हो तथा निवेश या पूँजी संचयन भी शून्य हो – इस स्थिति की व्याख्या रेखाचित्र संख्या 9.1 में की गयी है। इस स्थिति की व्याख्या के लिए यह मान लिया गया है कि उत्पादन की मात्रा, संसाधन तथा जनसंख्या के आकार पर निर्भर करती है। दोनों ही जनसंख्या तथा निबल निवेश प्रति व्यक्ति आय के ऊपर निर्भर करते हैं।



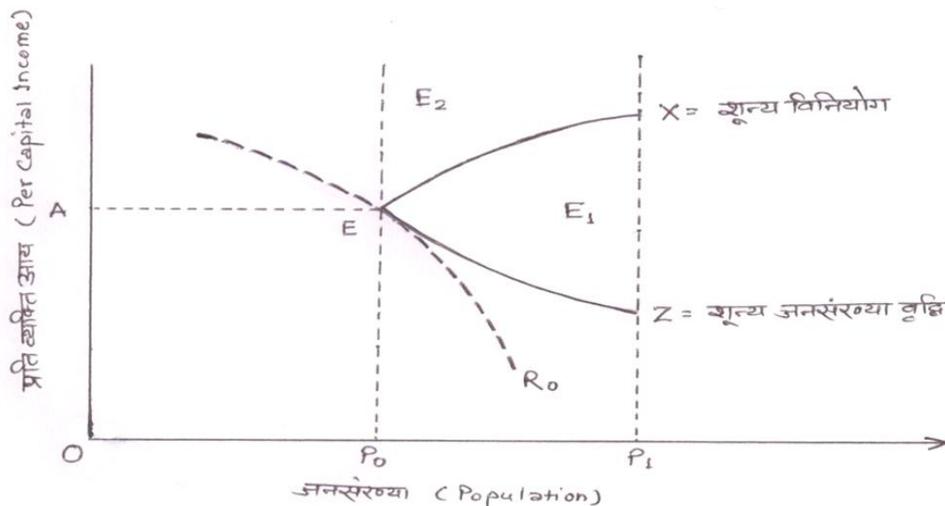
चित्र संख्या 9.1

इस रेखा चित्र में खींची गयी AB रेखा जो आधार अक्ष पर समानान्तर है,  $X = Z$  प्रदर्शित करती है अर्थात् जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है जिसका अर्थ हुआ कि मृत्युदर तथा जन्मदर बराबर हैं। प्रति व्यक्ति आय के OA स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है यदि प्रति व्यक्ति आय OA से अधिक हुयी तो जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक होगी, OA पर शून्य तथा OA से कम पर ऋणात्मक होगी। OA स्तर पर निबल निवेश भी शून्य है। शून्य निवेश का अर्थ यह हुआ कि सकल विनियोग तो धनात्मक है पर वह पूँजी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन तथा हास या तोड़ फोड़ को पूरा करने के लिए ही हो रहा है अर्थात् निवल निवेश = सकल विनियोग - हास = 0 अर्थात् नयी सृजित पूँजी सम्पत्ति केवल पूँजी सम्पत्ति के मूल्य में हास या तोड़ फोड़ को पूरा करने के लिये या प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक पूँजी के बराबर है। रेखाचित्र में  $R_1, R_2, R_3, \dots, R_n$  वक्र वैकल्पिक प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करती है जिसे दिये हुए संसाधन  $R_1, R_2, R_3, R_n$  से वैकल्पिक जनसंख्या के आकार पर प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार ये वक्र एक निश्चित संसाधन के साथ प्रतिव्यक्ति आय तथा/जनसंख्या के आकार के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करती है। हम सबसे पहले  $R_1$  को लेते हैं जो संसाधन  $R_1$  तथा जनसंख्या  $OP_1$  के साथ सम्बन्ध व्यक्त करती है। मूल संस्थिति की स्थिति  $E_1$  पर है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति आय OA है जिस पर  $X = Z$  है। अब मान लीजिए प्रेरित विनियोग के कारण संसाधन  $R_1$  से बढ़कर  $R_2$  हो जाते हैं। स्पष्ट है यदि जनसंख्या  $OP_1$  हो

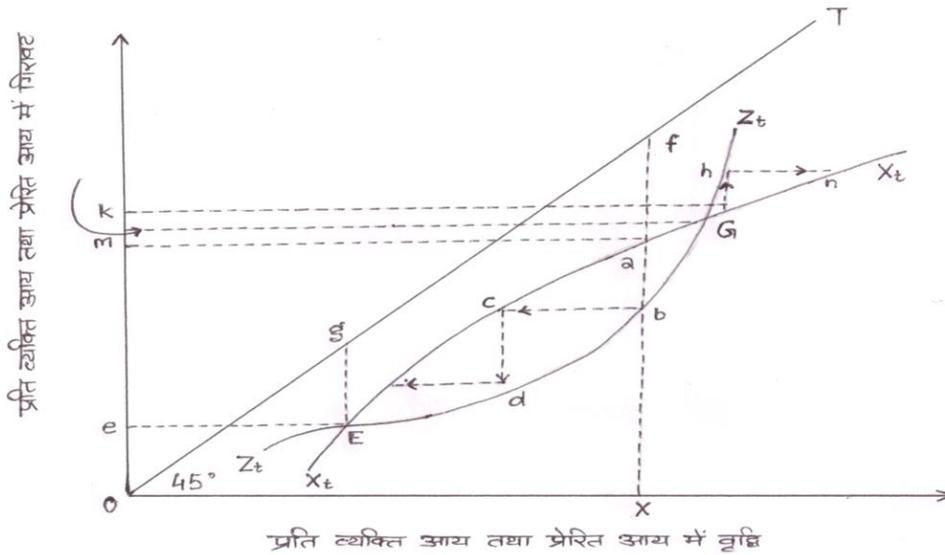
तो नये संसाधन  $R_2$  के साथ प्रति व्यक्ति आय  $O_a$  या  $P_{1a}$  होगी पर इस बड़ी हुयी प्रति व्यक्ति आय के कारण जनसंख्या में वृद्धि होगी। मान लीजिए इसके कारण जनसंख्या का आकार बढ़कर  $OP_2$  हो जाता है तो प्रति व्यक्ति आय गिरकर  $P_2b$  या  $O_b$  हो जायेगी। निवेश की और अधिक वृद्धि यदि  $R_3$  तक हो जाय तो जनसंख्या का आकार  $OP_3$  हो जायेगा और प्रति व्यक्ति आय घटकर  $P_{3c}$  या  $O_c$  हो जायेगी और यह क्रिया तब तक चलती जायेगी जब तक कि पुनः  $OA$  की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि इस स्थिति में जनसंख्या एक अवसादी शक्ति के रूप में कार्य करेगी। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि लाती है और जनसंख्या की वृद्धि इतनी बलवती है कि अर्थव्यवस्था पुनः **‘अल्पस्तरीय संस्थिति’** में वही पहुंच जाती है। यहां हम लोगों ने जो व्याख्या की उसमे यह मान लिया कि प्रत्येक गड़बडी चाहे वह कितनी बड़ी क्यों न हो, जनसंख्या वृद्धि का दीर्घकालीन प्रभाव प्रेरित विनियोग के कारण उत्पन्न प्रभाव की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होगा। लेबन्स्टीन इस सम्भावना के अतिरिक्त दो और सम्भावनाओं की बात करते हैं- 1. प्रणाली छोटी गड़बड़ियों के लिए **‘अर्द्ध स्थिर संस्थिति’** के रूप में है पर बड़ी गड़बड़ियों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि छोटी मोटी गड़बड़ियों या असंतुलनों की स्थिति में प्रति व्यक्ति आय को गिराने में जनसंख्या की अवसादी शक्ति प्रेरित विनियोग की उत्प्रेरक शक्ति से अधिक प्रबल होगी पर बड़ी गड़बड़ियों या असंतुलनों के सम्बन्ध में जनसंख्या की अवसादीय शक्ति कम महत्वपूर्ण होगी। जब प्रारम्भ से ही संस्थिति अस्थायी है, तब स्वयं लेबन्स्टीन (2) वाली सम्भावना को अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में व्यावहारिक तथा ठीक ही पाते हैं।

- ऐसी स्थिति जबकि शून्य विनियोग रेखा (X) तथा शून्य जनसंख्या वृद्धि (Z), एक ही नहीं हो बल्कि X और Z रेखा से ऊपर हो – ऐसी स्थिति को रेखाचित्र – 9.2 में प्रदर्शित किया गया है –

चित्र – 9.2



इस रेखाचित्र में  $MM_1$  न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय रेखा है जिससे अधिक प्रति व्यक्ति आय स्तर पर आर्थिक संवृद्धि कायम रह सकेगी।  $R_0$  पहले ही की तरह निश्चित संसाधन  $R_0$  के साथ प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या का आकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। मान लीजिये मूल संस्थिति E पर है जहां जनसंख्या का आकार  $OP_0$  प्रति व्यक्ति आय OA तथा संसाधन  $R_0$  है। यह देखा जा सकता है कि प्रेरित विनियोग के कारण कोई भी गड़बड़ी जो प्रणाली को EXZ या  $ENM_1X$  के भीतर रखती है तो पुनः मूल संस्थिति E की स्थिति कायम हो जायेगी। उदाहरण के लिए यदि गड़बड़ी के बाद नयी संस्थिति का बिन्दु XEZ के भीतर हो मान लीजिए E इस बिन्दु पर निबल निवेश ऋणात्मक होगा क्योंकि  $E_1$  बिन्दु EX या शून्य विनियोग से नीचे है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक या शून्य से अधिक होगी क्योंकि E बिन्दु शून्य जनसंख्या वृद्धि रेखा EZ से ऊपर है। इस स्थिति में अविनियोग तथा जनसंख्या वृद्धि दोनों ही प्रति व्यक्ति आय के नीचे लायेंगे और पुनः संस्थिति E पर कायम हो जायेगी। यदि संस्थिति का नया बिन्दु  $ENM_1X$  के भीतर है, मान लीजिए  $E_2$  है तो निवेश तो धनात्मक होगा क्योंकि  $E_2$  बिन्दु EX रेखा के बिन्दुओं से ऊपर तो है पर जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली शक्ति धनात्मक विनियोग के कारण आय वर्धक शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रबल होगी, जो पुनः अर्थव्यवस्था को E पर संस्थिति की स्थिति में ला देगी। आवश्यक न्यूनतम प्रयास- सिद्धान्त के उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जब तक अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय आवश्यक न्यूनतम आय से कम रहेगी, इसमें अल्पस्तरीय संस्थिति E पर आने की प्रवृत्ति होगी, इन देशों के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रति व्यक्ति आय चित्र 12.2 में प्रदर्शित  $MM_1$  से अधिक हो। पर ऐसा तभी होगा जब आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक प्रबल हों। पिछड़े देशों में आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक नहीं होंगी, इसलिए प्रति व्यक्ति आय में उतनी अधिक वृद्धि नहीं होगी जितनी होनी चाहिए। जिससे अर्थव्यवस्था 'अल्पस्तरीय संस्थिति' से बाहर निकल सके। यही वास्तव में उनकी सम्पूर्ण विचारधारा का निचोड़ है। यदि आय की प्रारम्भिक वृद्धि इतनी अधिक हो कि आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों को बहुत अधिक पीछे छोड़ दे तो आर्थिक विकास की संचयी प्रक्रिया शुरू हो जायेगी। इसलिए लीबन्स्टीन ने यह प्रतिपादित किया है कि 'अल्पविकसित देशों में आर्थिक पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के प्रयास आवश्यक न्यूनतम' से कम है। दी हुयी जनसंख्या की वृद्धि के साथ विनियोग के रूप में आवश्यक न्यूनतम प्रयास इतना होना चाहिए जिससे जनसंख्या का अवरोध टूट सके तथा आर्थिक विकास संचयी रूप से आगे बढ़ सके। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर कम हो तो आय में होने वाली प्रारम्भिक वृद्धि जितनी ही अधिक होगी उतनी शीघ्र ही संचयी विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। स्पष्ट है कि ऐसे अल्पविकसित देशों में जहां जनसंख्या की वृद्धि दर अत्यन्त ही अधिक है वहीं इस स्थिति को प्राप्त करना कठिन होगा तथा इसे प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगेगा। लीबन्स्टीन ने अपने इस दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण के लिए निम्नांकित रेखाचित्र 12.3 का सहारा लिया है। यह रेखाचित्र वास्तव में दो परस्पर विपरीत दिशा में काम करने वाली शक्तियों का परिणाम प्रदर्शित करता है।

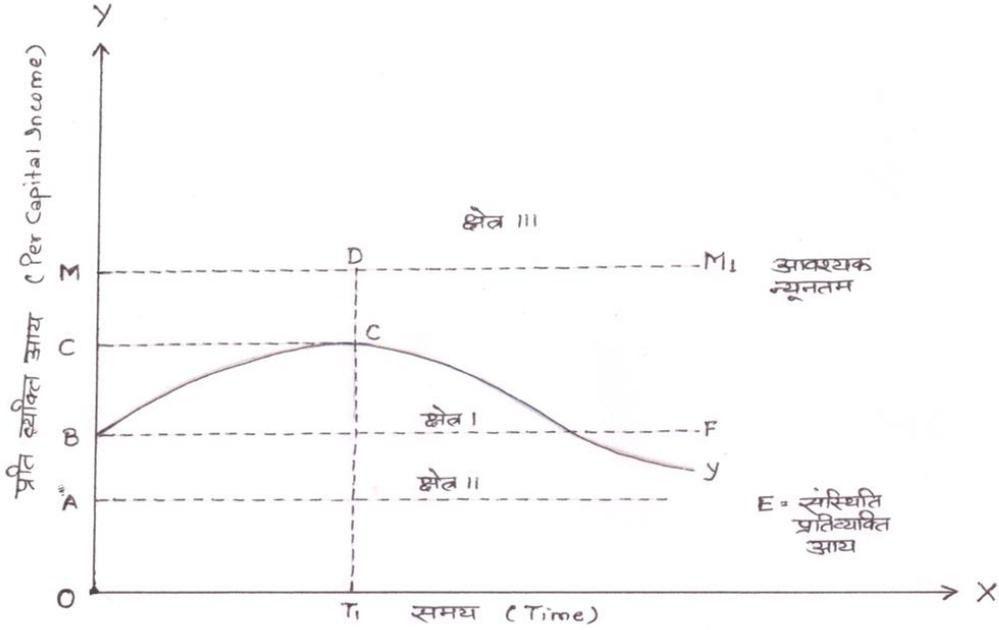


चित्र संख्या – 9.3

इस रेखाचित्र में  $45^\circ$  रेखा OT प्रेरित आय में वृद्धि = प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित करती है। इस रेखा में विचलन के आधार पर प्रेरित आय में वृद्धि तथा प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित किया गया है।  $X_t$ ,  $X_t$  सभी आय वर्धक शक्तियों तथा  $Z_t$ ,  $Z_t$  सभी आय अवसादी शक्तियों को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक संस्थिति की स्थिति E पर है, जबकि दोनों शक्तियां परस्पर बराबर हैं। आय वर्धक शक्ति  $gE$  है तथा आय अवसादी शक्ति भी हम ही है। यहां इसका उल्लेख आवश्यक है कि OT से इन वक्रों पर लम्बीय अन्तर इन शक्तियों की माप प्रदर्शित करता है, आधार अक्ष से इन पर लम्बीय दूरी इसे प्रदर्शित नहीं करता है जैसा हम सामान्यता करते हैं।

अब यदि प्रारम्भिक समय के प्रति व्यक्ति आय  $O_m$  हो तो आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में  $t_a$  की वृद्धि लायेगी पर इस स्थिति में आय में कमी लाने वाली शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में  $f_b$  की कमी लायेगी, गिरावट का पथ a b c d..... से दिखाया गया है और पुनः E पर संस्थिति की स्थिति कायम हो जायेगी। पर यदि प्रति व्यक्ति आय  $O_k$  हो तो जैसा रेखाचित्र से स्पष्ट है, OT से  $X_t$  पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी OT से  $Z_t$  पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी की अपेक्षा अधिक है फलस्वरूप अर्थव्यवस्था G h n पथ से विकसित होती हुयी अल्पस्तरीय संस्थिति जाल से बाहर हो जायेगी, पर ऐसा तभी होगा जबकि प्रतिव्यक्ति आय का स्तर OI एक बारगी पा लिया जाये।

लीबन्स्टीन का यह मत है कि यदि अल्पविकसित देशों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं हों तो विदेशों से पूजी की व्यवस्था की जा सकती है, पर यदि साथ ही एक बार में इतना अधिक विनियोग सम्भव नहीं हो कि अर्थव्यवस्था न्यूनम आवश्यक मात्रा को पार कर सके (जैसा कि चित्र 9.2 में M M1 रेखा से व्यक्त है) तो नियोजित ढंग से इसे थोड़े कम प्रयास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जैसा उनके द्वारा दिये गये चित्र 9.4 से स्पष्ट है।



चित्र संख्या 9.4

यदि विनियोग एक बारगी इतनी प्रचुर मात्रा में कर दिया जाय कि प्रति व्यक्ति का  $M_1$  स्तर (या OM) प्राप्त हो जाय, स्वतः पोषित आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त हो जायेगी, पर अल्प विकसित देशों के लिए यह अधिक सस्ता तथा कम कष्टप्रद होगा, यदि वे अपने उपलब्ध साधनों को दो बार में लगायें पहली बार में प्रतिव्यक्ति आय OB तक पहुंच जाय, तथा दूसरी बार में विनियोजन के द्वारा इसमें CD के बराबर वृद्धि ला दी जाये, और इस प्रकार  $MM_1$  की प्राप्ति हो जाये।

लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों में पाये जाने वाले गरीबी के दुश्चक्र तथा साहसिकता के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध की बहुत ही प्रभावपूर्ण व्याख्या की। उनके अनुसार इन देशों में साहसियों तथा साहसिक योग्यता की कमी नहीं है, इन देशों की परिस्थितियां उन्हें धनात्मक राशि क्रियाओं के स्थान पर शून्य राशि क्रियायें में लगने के लिए बाध्य करती है। जिनके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के समग्र संसाधनों में कोई वृद्धि नहीं होती है, बल्कि साहसिक संसाधन का अपव्यय होता है। ये क्रियाएं अर्थव्यवस्था की उपलब्ध निबल बचत को प्रयोग में लाती है। लीबन्स्टीन का कहना है कि प्रत्येक साहसिक क्रिया लाभ की प्रत्याशा में की जाती है, यदि लाभ की आशा कम हो तो सहस्री धनात्मक क्रियाओं में नहीं लगेगा और धनात्मक क्रियाओं में न लगने का अर्थ होगा, राष्ट्रीय आय के विस्तार में कमी।

इस प्रकार लीबन्स्टीन के दृष्टिकोण की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं –

1. ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थायें जो अल्पस्तरीय प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति जाल फंसी हुई हैं जहां जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि अर्थव्यवस्था को निरन्तर इसी अल्प संस्थिति की स्थिति में बनाये रखती है, और बाहर नहीं निकलने देती ऐसी अर्थव्यवस्थायें यदि, इस जाल से बाहर निकलना चाहती है यह

आवश्यक है कि वे इतनी अधिक मात्रा में विनियोजन करें कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर जनसंख्या वृद्धि को पीछे छोड़कर विकास की संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये।

2. विनियोजन विदेशी पूँजी, घरेलू पूँजी या श्रम के रूपान्तरण के द्वारा प्राप्त हो सकता है।
3. जन्मदर की गिरावट आर्थिक विकास की पूर्ववर्ती शर्त नहीं होगी बल्कि आर्थिक विकास स्वतः जनसंख्या की वृद्धिदर में कमी लायेगा। प्रारम्भ में ऐसा हो सकता है कि मृत्युदर में गिरावट आये और जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़े पर अंतिम रूप में निश्चित रूप से जनसंख्या की वृद्धि में कमी आयेगी।
4. संचयी विकास के लिए आय वर्धक शक्तियों का प्रबल होना आवश्यक है।
5. **‘न्यूनतम आवश्यक प्रयास’** की मात्रा वह होगी जहां पहुंचकर अर्थव्यवस्था पुनः अल्पस्तरीय **‘संस्थिति जाल’** में न आये बल्कि संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास के सम्बन्ध में दो प्रश्न यह उठते हैं कि

1. विनियोजन की मात्रा कितनी हो ? उसका उत्तर लीबन्स्टीन ने यह दिया कि निवेश की मात्रा इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए कि जो न केवल आय अवसादी शक्तियों का सामना करने के लिए पर्याप्त हो बल्कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूँजी निर्माण के लिए भी होती रहे (ध्यान रहे, पूँजी निर्माण तभी होगा जब उपभोग से आय वृद्धि अधिक होगी)।
2. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या निवेश एक बार में ही किये जायें या टुकड़ों में? लीबन्स्टीन का सुझाव है कि निवेश को टुकड़ों और उन्हें एक दशक में फैलाकर करना अधिक लाभप्रद होगा। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रहे, कि निवेश की प्रत्येक डोज से एक निश्चित अवधि में पूर्ण निर्धारित प्रति व्यक्ति आय का स्तर प्राप्त होता रहना चाहिए और निवेश के आखिरी धक्के से देश का आय स्तर आवश्यक न्यूनतम स्तर को अवश्य प्राप्त कर ले। हां! निवेश का हर दूसरा इंजेक्शन, पहले इंजेक्शन के प्रभाव के खत्म होने से पूर्व ही लगा देना चाहिए जिससे कि विकास वर्धक श्रेताणुओं को पनपने का पर्याप्त अवसर मिल सके और दम तोड़ते हुए विनाश मूलक कीटाणुओं को सर उठाने का मौका न मिल सके। लीबन्स्टीन का यह भी कहना है कि यदि निवेश की आवश्यक न्यूनतम मात्रा देश में वर्तमान आय स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो विदेशी सहायता का सहारा भी लिया जा सकता है।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास (CME) की आवश्यकता क्यों? लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास को निम्न कारणों से आवश्यक बताया है

1. प्रथम कारण, साधनों या निवेशों की अविभाज्यता है। अतः बाहरी बचतें प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश करना जरूरी हो जाता है।
2. संतुलित विकास के लिए भी आवश्यक न्यूनतम प्रयास आवश्यक होता है।
3. लीबन्स्टीन का कहना है कि आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों तथा रीति रिवाजों को भेदने से होता है। आवश्यक न्यूनतम प्रयास से कम निवेश करने पर यह संस्थागत रूकावटें नहीं टूटती क्योंकि पुराने मूल्य और परम्परायें बदलने में अत्यधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक अचानक और वह भी बड़ी मात्रा में हमला करना चाहिए ताकि **‘हर नया परिवर्तन किसी नये परिवर्तन को जन्म दे’**।

4. कभी कभी विकास के परिणाम स्वरूप ही विकास बाधक तत्व उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे आय में थोड़ी वृद्धि होने पर मृत्युदर घटती है किन्तु जनसंख्या बढ़ने लगती है। आय में वृद्धि इतनी अधिक होनी चाहिए कि जन्मदर कम हो जाये और यह तभी संभव है जब निवेश आवश्यक न्यूनतम प्रयास रूप में किये जायें।
5. चूंकि विकास के साथ साथ पूँजी उत्पाद अनुपात (COR) घटता जाता है इसलिये यदि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाये तो प्बर अधिक घटेगा और आर्थिक विकास तेजी के साथ होगा।

### 9.3.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की मान्यतायें

1. जनसंख्या आय का फलन है  $(P = f(Y))$ । आय के एक निश्चित स्तर तक यह बढ़ती हुयी फलन होती है, पर एक निश्चित स्तर के बाद यह घटती हुयी फलन होती है। जब अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि होती है और जनसंख्या की वृद्धि इस स्थिति में बहुत तेज होती है पर प्रति व्यक्ति आय की एक सीमा के बाद जनसंख्या में गिरावट होगी।

जनसंख्या की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति आय के बीच सम्बन्ध के आधार पर विकास प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। **प्रथम अवस्था** वह अवस्था है जिसमें जन्मदर मृत्युदर के बराबर है तथा दोनों ही दरें ऊंची हैं। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धिदर शून्य है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त ही कम है और अर्थव्यवस्था जीवन निर्वाह स्तर की आय पर संतुलन की स्थिति में है। **दूसरी अवस्था** इसके बाद प्रारम्भ होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय में इतनी वृद्धि हो जिससे यह जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर हो जाय तो मृत्यु दर में कमी होगी पर जन्मदर में कोई कमी नहीं होगी। जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धिदर में वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि शुरू में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि कुछ सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि की दर में वृद्धि लायेगी। **तीसरी अवस्था** इस बिन्दु के बाद प्रारम्भ होती है। इस बिन्दु के बाद यदि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो जन्मदर में कमी होगी तथा मृत्युदर में या तो कमी होगी अथवा यह स्थिर होगी। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी होगी। आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज होगी। इस अवस्था में जनसंख्या की वृद्धि आय वृद्धि की घटती हुई फलन होगी क्योंकि इस अवस्था में लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि सामाजिक दृष्टि से ऊपर उठने को सम्भावना कम संख्या में बच्चों के साथ अधिक है। अल्प विकसित अर्थव्यवस्था आय की दृष्टि से या तो प्रथम अवस्था में है जहाँ जन्म दर = मृत्युदर तथा जनसंख्या वृद्धि नहीं है या दूसरी अवस्था में है। जहाँ मृत्युदर में गिरावट तो प्रारम्भ हो गयी है पर जन्म दर में कमी नहीं शुरू हुई है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि दर धनात्मक है। अब भी अर्थव्यवस्था अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में है।

2. प्रति व्यक्ति आय के अल्पस्तर पर लोगों की बचत तथा निवेश नगण्य होगी फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर कम होगी। स्पष्ट है जैसे जैसे प्रति व्यक्ति आय एक निश्चित न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे जहाँ बचत तथा निवेश शून्य है, बढी आय का बढ़ता हुआ भाग बचत तथा निवेशित होगा, फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।
3. एक पिछड़ी हुयी अर्थव्यवस्था एक 'अर्द्धस्थिर संस्थिति' प्रणाली है। एक 'पूर्ण स्थिर संस्थिति'

प्रणाली में जब संस्थिति की स्थिति में गड़बड़ी होगी तो पुनः संस्थिति में कायम होने की प्रवृत्ति होगी और इसके सभी चर पुनः मूल संस्थिति की स्थिति में आ जायेंगे। अर्द्ध स्थिर संस्थिति की स्थिति में कुछ चरों में तो मूल संस्थिति की स्थिति के स्तर पर आने की प्रवृत्ति होगी पर कुछ चर असन्तुलन के स्तर पर बने रह सकते हैं। लीबन्स्टीन के अनुसार “पिछड़े देश प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध में अर्द्धस्थिरता की स्थिति में हैं; अर्थात् इस प्रणाली में कुछ ऐसी बाहरी घटनायें हो सकती हैं जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय उपलब्ध संसाधन में वृद्धि हो जाये (जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ जाये) पर अन्त में आवश्यक रूप से प्रणाली पुनः संस्थितीय प्रति व्यक्ति अल्प आय स्तर पर लौट आयेगी जबकि अन्य चर जो इस गड़बड़ी के कारण बढ़े हैं, बढ़ी अवस्था में रहेंगे” उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी समय किसी कारण से बचत धनात्मक हो जाती है इसके कारण निवेश बढ़ेगा, आय बढ़ेगी तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण जनसंख्या तथा श्रमशक्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार मूल संस्थिति की स्थिति जो अल्प स्तर पर थी उसमें गड़बड़ी होगी पर यह पुनः उसी प्रति व्यक्ति आय स्तर पर नीचे आकर संस्थिति की स्थिति में आ जायेगी। साथ ही असन्तुलन के दौरान जो अन्य चर बढ़े थे जैसे श्रमशक्ति में वृद्धि वे बढ़ी ही अवस्था में रहेंगे, मूल संस्थिति वाली स्थिति में नहीं आयेंगे। चूंकि आय के एक निश्चित स्तर तक इन अर्थव्यवस्थाओं में संस्थिति पर पहुंचने की प्रवृत्ति होगी (जैसा स्थिर संस्थिति की स्थिति में होता है) पर एक न्यूनतम सीमा के बाद इनमें संस्थिति की ओर लौटने की प्रवृत्ति नहीं होगी, (अस्थिर संस्थिति की स्थिति) इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर तथा अस्थिर संस्थिति के लक्षण होंगे, सम्भवतः इसीलिए लीबन्स्टीन ने इसे अर्द्धस्थिर संस्थिति की स्थिति कहा।

4. प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो तरह की शक्तियां क्रियाशील होती हैं- हस्तोत्साहक या अवसादी शक्तियां तथा उत्प्रेरक शक्तियां या आय वर्धक शक्तियां। अवसादी शक्तियां ऐसी शक्तियां हैं जो प्रति व्यक्ति आय में कमी लाती है। जबकि उत्प्रेरक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लाती है।
5. यदि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं की अल्पस्तरीय संस्थिति में गड़बड़ी होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो न्यूनतम आवश्यक प्रयास स्तर से प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर अवसादी शक्तियां उत्प्रेरक शक्तियों से अधिक प्रबल होंगी और पुनः प्रतिव्यक्ति आय अल्पसंस्थिति की स्थिति में आ जायेगी।
6. यदि आय वर्धक शक्तियां आय हतोत्साहक शक्तियों से अधिक हो जायें या यूं कहिए कि आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली आय हतोत्साहक शक्तियों के प्रभाव को समाप्त कर दें तो आवश्यक न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय की स्थिति आ जायेगी और तब अर्थव्यवस्था ‘संस्थिति पाश’ से बाहर होकर विकसित होने लगेगी।

इन प्रमुख मान्यताओं तथा निष्कर्षात्मक तथ्यों के आधार पर लीबन्स्टीन ने अपने आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया – “एक पिछड़ी स्थिति से अधिक विकसित स्थित को प्राप्त करने के लिए जहां हम स्थिर तथा दीर्घकालीन विकास की उम्मीद कर सकते हैं, यह आवश्यक शर्त है, (यद्यपि हमेशा पर्याप्त नहीं) कि किसी बिन्दु पर हम किसी समयावधि में अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि के

**लिए कुछ उत्प्रेरणा प्राप्त करें जो एक निश्चित आवश्यक न्यूनतम आकार से अधिक हो।”**

### 9.3.4 विकास के दूत/प्रतिनिधि

लीबन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त का तार्किक आधार देश में कुछ अनुकूल आर्थिक दशाओं का पाया जाना है ताकि आय अवसादी शक्तियों की तुलना में आय वर्धक शक्तियां अधिक ऊंची दर से विस्तार कर सके। ये अनुकूल दशाएँ विकास के प्रतिनिधियों के विस्तार द्वारा उत्पन्न होती है। वृद्धि दूतों से उनका अभिप्राय **“विकास में सहायक क्रियाओं को कार्यान्वित करने के लिये जनसंख्या के सदस्यों में विद्यमान क्षमताओं की मात्रा से है”** जिसका निरन्तर विस्तार किया जाना चाहिये। इनके विस्तार से उद्यमशीलता का निर्माण, ज्ञान की मात्रा में वृद्धि, उत्पादन कुशलता का विस्तार और बचत तथा निवेश की दर में वृद्धि होती है। लीबन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता, तथा नवप्रवर्तकों को विकास का दूत या कारक माना है।

**प्रेरणायें** – लीबन्स्टीन के अनुसार विकास कारकों का विस्तार होगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसी क्रियाओं के प्रत्याशित तथा वास्तविक परिणाम क्या होते हैं और वे विस्तार के लिये प्रेरणा उत्पन्न करती है या संकुचन के लिये। यह प्रेरणायें दो प्रकार की हो सकती है।

1. **शून्य राशि प्रेरणायें**- इनसे राष्ट्रीय आय में कोई वृद्धि नहीं होती। और इनका केवल वितरणात्मक प्रभाव होता है।
2. **धनात्मक राशि प्रेरणायें** - इनसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

स्पष्ट है कि धनात्मक राशि प्रेरणाओं द्वारा ही आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन लीबन्स्टीन का कहना है कि अल्प विकसित देशों के लोग- शून्य राशि क्रियाओं में अधिक संलग्न रहते हैं जैसे अपेक्षाकृत बड़े आकार की एकाधिकारात्मक स्थिति, राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की लालसा, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु अव्यापारिक क्रियायें तथा सद्दा क्रियायें आदि ही वे शून्य राशि क्रियायें हैं जो आय वृद्धि को बढ़ावा नहीं देती बल्कि आय का एक **'दुर्भाग्यशाली'** उद्यमी के हाथ से एक **'सौभाग्यशाली'** उद्यमी के हाथ में मात्र हस्तान्तरण करती है। इसलिये शून्यराशि प्रोत्साहनों की प्रबलता और धनात्मक राशि प्रोत्साहनों की सीमितता को देखते हुए लीबन्स्टीन का कहना है कि **'आवश्यक न्यूनतम प्रयास'** काफी बड़ा होना चाहिए ताकि ऐसा वातावरण तैयार हो सके कि जो धनात्मक राशि प्रोत्साहनों को बल प्रदान करें और शून्य राशि प्रेरणाओं को समाप्त करने वाली शक्तियां उत्पन्न करें। आवश्यक न्यूनतम प्रयास के फलस्वरूप आय में वृद्धि होगी। जिससे बचत एवं रोजगार का स्तर ऊंचा उठेगा और इसके अगले धनात्मक परिणाम इस प्रकार होंगे - 1. वृद्धि कारकों का विस्तार, 2. पूँजी के प्रति इकाई क्षमता में वृद्धि (क्योंकि क्षमता बढ़ने पर पूँजी उत्पादक अनुपात घट जाता है), 3. विकास के अवरोध तत्वों की प्रभावपन्नता में कमी, 4. द्वितीयक, एवं तृतीयक क्षेत्रों का विस्तार, 5. सामाजिक तथा आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने वाली सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी स्थितियों का निर्माण और 6. शून्य राशि प्रोत्साहनों का प्रति सन्तुलन करते हुए एक ऐसे वातावरण का निर्माण, जिससे संभाव्य जनसंख्या वृद्धि में कमी आये और सतत विकास को बल मिल सके।

### 9.3.5 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास

**प्रो. लीबन्स्टीन** सम्भवतः पहले विचारक हैं जिन्होंने जनसंख्या वृद्धि के नियमन की परवाह किये बिना आर्थिक विकास का काम शुरू करने का सुझाव दिया है। वे इसमें विश्वास नहीं करते कि जनसंख्या घनत्व आर्थिक पिछड़ेपन का एक कारण है और न ही उन्होंने जन्मदर में कटौती की विकास को एक पूर्वावश्यकता माना है। **प्रो. ब्लैक, थाम्पसन व नोटेस्टीन** की भांति लीबन्स्टीन का भी मत है कि आर्थिक, सांस्कृतिक व तकनीकी उन्नति के साथ साथ जन्मदर स्वयं घटने लगती है। लीबन्स्टीन के शब्दों में **“जन्मदर में कमी विकास का स्वयं एक परिणाम है। इस बात की बहुत थोड़ी सम्भावना है कि आर्थिक विकास के अभाव में कोई भी प्रत्यक्ष उपाय, जन्मदर पर नियंत्रण लगाने में सफल हो सकता है। सर्वप्रथम हमें आर्थिक विकास शुरू करना होगा। प्रजनन दर स्वयं घटने लगेगी।”** अल्प विकसित देशों में जन्म दर में वृद्धि का मुख्य कारण लोगों में अज्ञानता, अविवेकशीलता, परिवार नियोजन के अभाव और सहवास एवं प्रजनन क्रिया यम्बन्धी सोच का अभाव रहा है। चूंकि इन देशों में मृत्युदर अधिक होती है इसलिये लोग 'यमराज के दुखद बुलावे' से सुरक्षा के कारण ही अधिक बच्चे पैदा करने में लिये बाध्य होते हैं।

लीबन्स्टीन ने जन्म लेने वाले प्रत्येक अगले बच्चे के सम्बन्ध में लागत लाभ विश्लेषण तकनीक का सहारा लेते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन देशों में बच्चों की लागत कम होती है जबकि उनसे लाभ अधिक होते हैं। एक नवजात शिशु एक उपभोगीय वस्तु है क्योंकि बच्चे को प्यार करने से मनुष्य को एक आत्मिक संतोष मिलता है, यह उत्पादक साधन है क्योंकि ये छोटी उम्र में ही कमाने लग जाते हैं, और ये वृद्धावस्था में उस सुरक्षा को प्रदान करते हैं जिस सामाजिक सुरक्षा का पिछड़े हुए देशों में अभाव होता है। चूंकि आवश्यक न्यूनतम प्रयास के फलस्वरूप प्रजनन दर स्वतः ही घटने लगती है इसलिये हमें इससे चिंतित होने की जरूरत नहीं है। निवेश मानदण्ड या नीति जहां तक उचित निवेश नीति का प्रश्न है **लीबन्स्टीन** ने **कान्ह** के 'सामाजिक सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड' नर्कसे के 'रोजगार मानदण्ड' और **वाइनर एवं कान्ह** के **कृषि निवेश मानदण्ड** को अस्वीकार किया है। सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड का विरोध उन्होंने इस आधार पर किया है कि इससे न तो राष्ट्रीय आय और न ही प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। फिर SMP का पता लगाना भी कठिन है। नर्कसे के अधिकतम रोजगार या श्रम प्रधान विकास नीति को लीबन्स्टीन ने इसलिये अस्वीकार किया है यदि पूँजी गहन निवेश को कम रखा गया तो इससे तीव्र विकास की सम्भावना घट जायेगी।

लीबन्स्टीन, वाइनर के इस मत से भी सहमत नहीं हैं कि अल्प विकसित देशों को अधिकाधिक निवेश कृषि क्षेत्र में करना चाहिये। उनका कहना है कि **“कृषि क्षेत्र या गांवों के विकास से श्रम-कुशलता, कौशल निर्माण, तकनीकी प्रगति, अविष्कार तथा उद्यमियों का विकास नहीं हो सकता।”** लीबन्स्टीन ने उपयुक्त निवेश के सम्बन्ध में कहा है कि निवेश भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार की पूँजी में वृद्धि लाने हेतु किया जाना चाहिये और यह 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में होना चाहिये। निवेश का ढांचा ऐसा हो जिससे उद्यमियों को बढ़ावा मिले, अर्जित लाभों का पुर्ननिवेश हो, श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो, बचतों को प्रोत्साहन मिले और जनसंख्या वृद्धि की दर घटने लगे। एक प्रकार से लीबन्स्टीन 'पुनर्विनियोग उपलब्धि मानदण्ड' का समर्थन करते हैं जो कि उन्हीं के नाम से जाना जाता है।

### 9.3.6 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनाएँ

मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं

1. **जनसंख्या वृद्धि दर और मृत्युदर का अवास्तविक सम्बन्ध** - इस मॉडल की यह मान्यता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर एक निश्चित बिन्दु तक प्रति व्यक्ति आय का वृद्धिमान फलन है और उसके बाद यह आय के हासमान फलन का रूप ले लेता है, ठीक नहीं है। इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से नहीं बल्कि मृत्युदर में कमी से होती है और वह कमी चिकित्सा विज्ञान एवं स्वास्थ्य दशाओं में सुधार होने के कारण होती है।
2. **प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि दर का क्रियात्मक सम्बन्ध** - प्रो. मिंट का कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि की दर में स्थापित किया गया फलनात्मक सम्बन्ध काफी जटिल है और वह इतना सरल नहीं जितना कि लीबन्स्टीन मानते हैं। यह सम्बन्ध आय के वितरणात्मक ढांचे और बचतों को गतिशील करने वाली वित्तीय संस्थाओं की प्रभावी क्षमता पर निर्भर करता है जिसे लीबन्स्टीन ने पूरी तरह से भुला दिया है।
3. **मॉडल की आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना** - प्रो. मिंट, लीबन्स्टीन की इस मान्यता से भी सहमत नहीं हैं कि अगर प्रारम्भिक निवेश आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जायेगी। उन्होंने कहा कि यह तो एक प्रकार से आय और जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह सम्बन्ध स्थापित करने वाली बात है जिसे प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।
4. **जन्मदर में कमी का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं-** लीबन्स्टीन का यह सोचना भी भ्रमपूर्ण है कि जन्मदर में कमी इसलिए होती है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आवश्यक न्यूनतम स्तर पर पहुंच जाती है और जनसंख्या वृद्धि से भी आगे निकल जाती है। सच तो यह है कि लीबन्स्टीन के विचार उन्नत देशों के अनुभवों पर आधारित रहे होंगे जबकि अल्प विकसित देशों में प्रजनन दर की समस्या मुख्यतः सामाजिक व सांस्कृतिक प्रकृति की होती है और इस पर आय वृद्धि की अपेक्षा धर्म, मर्यादा और परम्पराओं का अधिक प्रभाव पड़ता है।
5. **समय तत्व की उपेक्षा** - इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसने समय तत्व पर कोई ध्यान नहीं दिया जो कि सतत प्रयासों के लिये अत्यावश्यक है और जिसमें आत्म स्फूर्ति को सुनिश्चित करने के लिये संस्थात्मक एवं उत्पादक ढांचे में आधार भूत परिवर्तन करने आवश्यक होते हैं।
6. **परिवार नियोजन सम्बन्धी राजकीय प्रयत्नों की उपेक्षा** - लीबन्स्टीन ने जन्म दर को घटाने सम्बन्धी सरकारी प्रयत्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि आज कल प्रत्येक सरकार जनाधिक्य से निबटने के लिये विस्तृत अभियान चालू किये हुए हैं। हमारी दृष्टि में आज कोई भी देश इस बात कि प्रतीक्षा नहीं कर सकता है कि कब प्रति व्यक्ति आय काष्ठा न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे ताकि जन्म दर स्वयमेव गिरनी शुरू हो जाए। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में हो सकता है कि वह देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में पहुंच जाये और समस्या सुझलने के बजाय और उलझ जाये।
7. **बन्द अर्थव्यवस्था मूलक मॉडल** - यह मॉडल आय, बचत तथा विनियोग के विभिन्न स्तरों पर विदेशी

पूँजी तथा अन्य बाह्य घटकों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करता। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होने के कारण अवास्तविक है।

#### 9.4 रोडान बनाम हार्वे लीबिन्स्टीन का मत

रोडान के 'प्रबल प्रयास सिद्धान्त' और लीबिन्स्टीन के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त' दोनों का ही उद्देश्य अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को दरिद्रता के विषम चक्र से छुटकारा दिलाकर सतत विकास के मार्ग पर लाना है। किन्तु तुलनात्मक रूप में लीबिन्स्टीन का सिद्धान्त रोडान के सिद्धान्त से कई बातों में श्रेष्ठ है –

1. लीबिन्स्टीन की थीसिस अधिक व्यापक, व्यावहारिक एवं वास्तविक है जबकि रोडान का मॉडल सैद्धान्तिक अधिक है।
2. अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के कार्यक्रम को एकदम से 'प्रबल प्रयास' देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार करना अधिक युक्ति संगत जान पड़ता है।
3. लीबिन्स्टीन के सिद्धान्त का एक गुण यह है कि वह लोकतन्त्रात्मक नियोजन से मेल खाता है जिससे अधिकांश अल्प विकसित देश सम्बद्ध है।
4. रोडान के विपरीत लीबिन्स्टीन पूँजी गहन तकनीकी के समर्थक हैं इसलिये वे असन्तुलन से सन्तुलन की ओर जाते हैं।
5. रोडान के अनुसार प्रबल प्रयास के रूप में आवश्यक निवेश एक मुश्त रूप में किया जाना चाहिए जबकि लीबिन्स्टीन के अनुसार निवेश समयानुसार छोटी छोटी मात्रा में भी किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि लीबिन्स्टीन के अनुसार पूँजी का जुटाना अधिक सरल व व्यावहारिक है।

#### 9.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

##### बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हार्वे लीबिन्स्टीन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?
  - A. निम्न सन्तुलन पाश सिद्धान्त
  - B. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
  - C. प्रबल प्रयास सिद्धान्त
  - D. जीवन-निर्वाह सिद्धान्त
2. आवश्यक न्यूनतम प्रयास का विचार किसने दिया?
  - A. नेल्सन
  - B. मिन्ट
  - C. रोजेन्स्टीन रोडा
  - D. हार्वे लीबिन्स्टीन
3. हार्वे लीबिन्स्टीन का कहना है कि अल्पविकसित देशों में थोड़े-थोड़े आर्थिक विकास के प्रयास गरीबी के दुश्मन को
  - A. रोक सकते हैं।
  - B. तोड़ नहीं सकते हैं।

C. तोड़ सकते हैं

D. उपरोक्त में कोई नहीं

**सत्य/असत्य**

1. लीबन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता तथा नवप्रवर्तकों को विकास । प्रतिनिधि माना।
2. लीबन्स्टीन ने प्रबल धक्का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।
3. लीबन्स्टीन की प्रसिद्ध पुस्तक Economic Backwardness and Economic Growth है।

**9.6 सारांश**

अपनी पुस्तक के अमुख में लीबन्स्टीन ने लिखा है कि उसका “**लक्ष्य नुस्खा बनाना नहीं बल्कि व्याख्या करना तथा समझना है।**” परन्तु रोस्टोव की उत्कर्ष की अवस्था की भांति उसके “**क्रांतिक-न्यूनतम प्रयत्न**” सिद्धान्त ने अर्थशास्त्रियों तथा अल्प विकसित देशों में योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित किया है और वह आर्थिक पिछड़ेपन का नुस्खा समझा जाता है। **रोजेन्स्टीन रोडान** के “**प्रबल प्रयास**” सिद्धान्त के अपेक्षा लीबन्स्टीन सिद्धान्त अधिक वास्तविक है। अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के प्रोग्राम को एकदम से “**प्रबल प्रयास**” देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए क्रांतिक-न्यूनतम प्रयत्न उचित ढंग से समय - समय पर किया तथा छोटे प्रयत्नों के क्रम में तोड़ा जा सकता है। यह सिद्धान्त प्रजातंत्रात्तक योजना से भी मेल खाता है।

**9.7 शब्दावली**

- **विकास दूत** - विकास क्रियाओं के समायक अर्थात् उत्पादक, निवेशक, बचतकर्ता आदि।
- **$P=f(y)$**  - जनसंख्या एवं आय के मध्य प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध
- **अवसादी शक्ति** - आर्थिक विकास में बाधा के रूप में।

**9.8 अध्याय प्रश्नों के उत्तर****बहुविकल्पीय प्रश्न**

1. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त,
2. हार्वे लीबन्स्टीन,
3. तोड़ नहीं सकते हैं

**सत्य/असत्य**

1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य

**9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची**

- प्रो. एम. एल. झिगन, (2010) “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन “बिन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन.लाल (2010) आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- प्रो. एस. पी. सिंह, (2010) आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन, दिल्ली।

## 9.10 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

- Agarwal, R. C. : “Economics of Development and Planning”, Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R.M.: “Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010
- B. Higgins : “Economic Development, Principles, problems and policies”.
- M. P. Todaro : “Economic Development in third world”.
- G. M. Meiter : “Inter Sectoral Relationship in Dual Economy”.

## 9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लीबन्स्टीन के काष्ठा-न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?
2. हार्वे लीबन्स्टीन के न्यूनतम क्रान्तिक प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। क्या यह कहना उचित है कि यह सिद्धान्त पूँजी की अपेक्षा जनसंख्या की भूमिका को विकास प्रक्रिया में अधिक महत्व देता है?
3. 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' विचारधारा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। विकास को अवरूद्ध करने वाली शक्तियों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जाता है, बतलाइए?
4. क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त का वर्णन कीजिए और एक भारत जैसे विकासशील देश में इसकी प्रासंगिकता बताइए?

---

## इकाई 10 - नेल्सन का सिद्धान्त (Theory of Nelson)

---

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण
  - 10.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
  - 10.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
  - 10.3.3 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु
  - 10.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें
- 10.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 10.5 सारांश
- 10.6 शब्दावली
- 10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.9 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री
- 10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के संदर्भ में विशेषरूप से ऐसे देशों के सम्बन्ध में, जहां जनसंख्या की वृद्धि बहुत अधिक हो, एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि प्रति व्यक्ति आय का कौन सा स्तर हो जिस पर यह जनसंख्या वृद्धि दर को स्थायी रूप से पीछे छोड़ दे जिससे उसके बाद प्रतिव्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो सके। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान जनसंख्या वृद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डाले, जो इसका जबाब दे सके कि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि का क्या प्रभाव राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है? इस दिशा में हमें प्रमुख रूप से दो माडल मिलते हैं। **आर. नेल्सन** का निम्न सन्तुलन पाश माडल तथा **लीबन्स्टीन** का न्यूनतम आवश्यक प्रयास सिद्धान्त। दोनों ही माडल इस बात को स्वीकार करते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि परस्पर सम्बन्धित है।

## 10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- ✓ निम्न संतुलन पाश विश्लेषण से आप क्या समझते हैं।
- ✓ निम्न संतुलन पाश के सहायक कारक कौन- कौन से होते हैं।
- ✓ पूँजी निर्माण, जनसंख्या वृद्धि एवं आय निर्धारण कैसे अपना योगदान प्रदान करती है।
- ✓ क्या नेल्सन का माडल अल्पविकसित व्यवस्था पर लागू होता है।
- ✓ मॉडल की कौन- कौन सी कमियां है।
- ✓ कोई भी अर्थव्यवस्था निम्न संतुलन पाश से कैसे बच सकती है।

## 10.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण

**आर. आर. नेल्सन** ने अपना निम्न सन्तुलन पाश सिद्धान्त **1956** में अमेरिकन **Economic Review** में प्रकाशित अपने एक लेख '**A Theory of the Low Level - Equilibrium Trap**' में प्रस्तुत किया। अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर विचार करते हुए नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि अल्प विकसित देश निम्न प्रति व्यक्ति आय के सन्तुलन पाश में जकड़े हुए हैं। ये देश अत्यन्त ही अल्प प्रति व्यक्ति आय स्तर जो जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति के बराबर है या लगभग बराबर है पर स्थित संस्थिति की गतिहीनता की स्थिति में है। स्थायी संस्थिति एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें यदि किसी प्रयास के कारण ये देश इस अल्पस्तरीय संस्थिति से बाहर निकलते हैं तो पुनः इसी स्तर पर संस्थिति के पुनः स्थापित होने की प्रवृत्ति होगी।

अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। इस स्थिति में यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाहस्तर से ऊपर उठाया गया तो इसके कारण जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होगी। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में कमी लायेगी और अर्थव्यवस्था पुनः उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय के साथ संस्थिति जाल में फंसी रहती है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि प्रति व्यक्ति

आय को ऊपर नहीं उठने देती। नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि इस निम्न संतुलन पाश से बाहर निकालने के लिए यह आवश्यक है कि इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाये कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है पर एक सीमा के बाद प्रतिव्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।

### 10.3.1 सिद्धान्त की व्याख्या

आर. आर. नैल्सन ने अल्पविकसित देशों के लिए निम्न संतुलन पाश का सिद्धान्त विकसित किया, नैल्सन का सिद्धान्त माल्थम की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के 'न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर' से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है, परन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि दर 'एक उच्च भौतिक सीमा' पर पहुंच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय में और वृद्धियां होने पर यह (जनसंख्या वृद्धि-दर) गिरने लगती है। नेल्सन के अनुसार "अल्पविकसित देशों के रोग की पहचान यह है कि वह प्रति व्यक्ति आय का ऐसा स्तर है जो निर्वाह आवश्यकताओं पर या उनके निकट पहुंचकर स्थिर हो जाता है।" प्रति व्यक्ति आय के स्थिर संतुलन स्तर पर बचत की दर और परिणामतः शुद्ध निवेश की दर एक नीचे स्तर पर रहती है। जब कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर बढ़ाकर बचत एवं निवेश की दर बढ़ाने के प्रयत्न किए जाते हैं तो उनके साथ जनसंख्या वृद्धि की दर भी ऊंची हो जाती है तो प्रति व्यक्ति आय को पीछे धकेल कर उसको स्थिर संतुलन स्तर पर पहुंचा देती है। इस प्रकार अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएं निम्न संतुलन पाश की जकड़ में फंस जाती है।

### 10.3.2 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु

नेल्सन ने चार सामाजिक एवं प्रौद्योगिक स्थितियों का उल्लेख किया है जो पाश करने में सहायक होती है। ये हैं –

1. प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सहसंबंध है।
2. अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाते हुए प्रति व्यक्ति निवेश में लगाने की न्यून प्रवृत्ति।
3. अकृषि योग्य कृषि भूमि की दुर्लभता।
4. उत्पादन के अदक्ष तरीके।

उपयुक्त कारको के साथ प्रो नैल्सन ने दो कारण और बताए- सांस्कृतिक निष्क्रियता तथा आर्थिक निष्क्रियता। सांस्कृतिक निष्क्रियता से आर्थिक निष्क्रियता और आर्थिक निष्क्रियता से सांस्कृतिक निष्क्रियता आती है। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि ऊपर बताई गई स्थितियों की उपस्थिति के कारण अधिकांश अल्प विकसित देश निम्न संतुलन पाश में जकड़े हुए हैं।

आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का पाशन समझाने के लिए नैल्सन ने संबंधों के तीन सैट प्रयोग किए हैं। **प्रथम**, आय पूँजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी स्तर तथा जनसंख्या आकार का फलन है। **दूसरे**, शुद्ध निवेश यह पूँजी है जो औद्योगिक क्षेत्र में औजारों एवं उपकरणों के स्टॉक में बढ़ोत्तरी के रूप में हुई बचतों (जमा) के साथ कृषिगत भूमि की मात्रा में नई भूमि की बढ़ोत्तरी से है, जो कि बचतों पर आधारित होती है। **तीसरे**, यदि प्रति

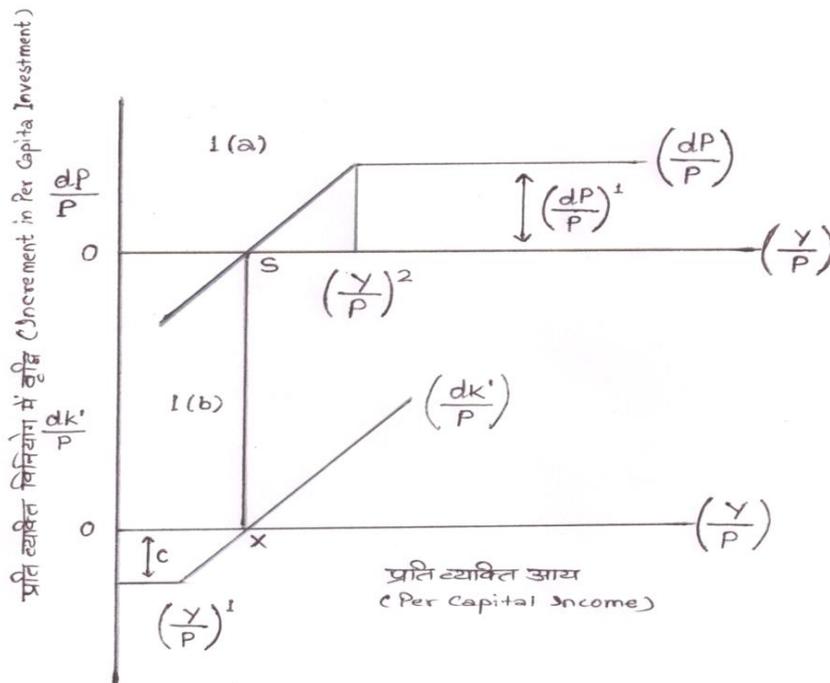
व्यक्ति आय नीची हो तो मृत्युदर में परिवर्तनों के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर में अल्पकालीन परिवर्तन होते हैं, और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण मृत्युदर में परिवर्तन होते हैं। फिर भी, जब प्रति व्यक्ति आय एक बार निर्वाह आवश्यकताओं के स्तर से भली प्रकार ऊपर पहुंच जाती है, तो प्रति व्यक्ति आय में होने वाली और वृद्धियों का मूल्य दर पर प्रभाव नहीं के बराबर होता है।

नेल्सन माडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित तथा सम्बन्धित है। नेल्सन ने अपने माडल की रूपरेखा तीन समीकरणों के आधार पर की

- **पूँजी निर्माण से सम्बन्धित समीकरण** – अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण बचत तथा नयी भूमि को जोत में लाने के द्वारा होगी अर्थात्  $dk + dR = dk$  का जिसमें  $dk$  बचत द्वारा निर्मित पूँजी स्टॉक में वृद्धि तथा  $dR$  भूमि में वृद्धि प्रदर्शित करता है। चूंकि जैसे - जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है नयी भूमि जोत में आती है, पर एक सीमा के बाद नयी भूमि में वृद्धि दुर्लभ हो जायेगी, इसलिए यह मान लिया गया है कि नयी भूमि पूँजी निर्माण की स्रोत नहीं है, पूँजी स्टॉक में वृद्धि बचत के द्वारा ही होगी। यह भी मान लिया गया है कि सभी बचत विनियोजित हो जायेगी, इस प्रकार

**पूँजी निर्माण में वृद्धि = बचत में वृद्धि = औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग में वृद्धि**

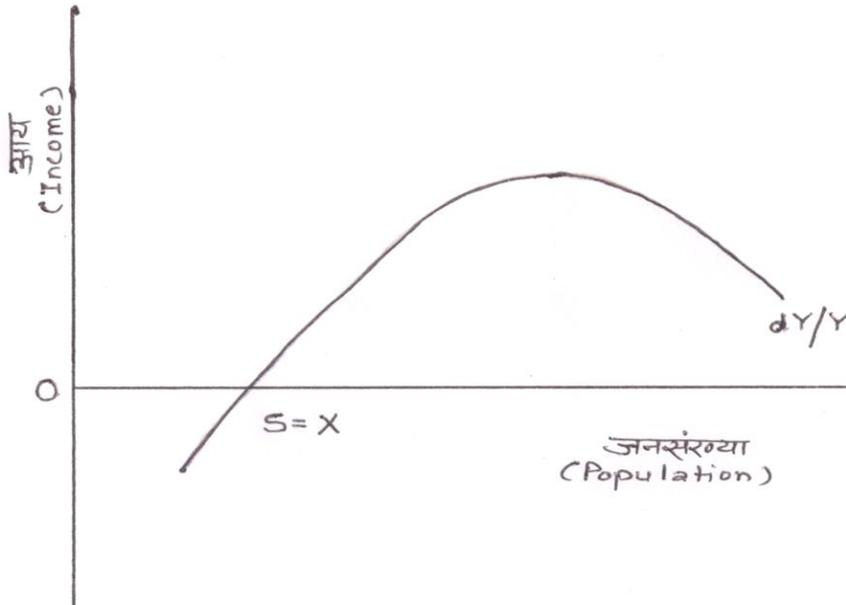
विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती जिसके बाद इसमें वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है। नेल्सन ने यह भी माना कि अविनियोग की भी एक निचली सीमा है क्योंकि कोई कितना भी भूखा क्यों न हो वह रेल या सड़क तोड़कर नहीं खायेगा। प्रति व्यक्ति बचत वृद्धि दर  $(dk'/P)$  तथा प्रति व्यक्ति आय  $(Y/P)$  के सम्बन्ध को रेखा चित्र संख्या 10.1 में दिखाया गया है।



चित्र संख्या 10.1

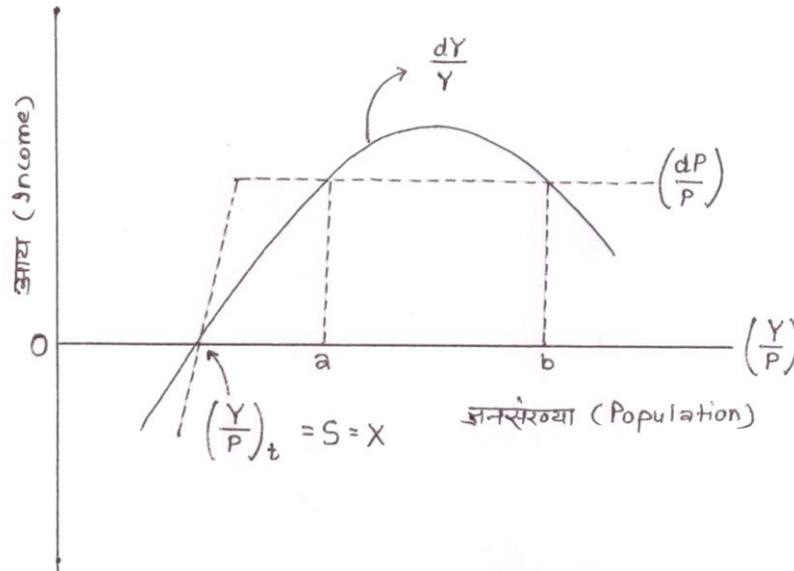
इस रेखाचित्र में आधार अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय (Y/P) तथा लम्ब अक्ष पर प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि दर प्रदर्शित है। रेखाचित्र X बिन्दु आय के उस स्तर को प्रदर्शित करता है जिस पर बचत शून्य है। X से बायीं ओर नीचे (Y/P) तक प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि अबचत या अविनियोग की स्थिति है जो कि C की स्थिर दर से मान ली गयी है। (Y/P) स्तर के बाद प्रति व्यक्ति बचत प्रतिव्यक्ति आय के साथ बढ़ती है।

- **जनसंख्या वृद्धि समीकरण** – यह मान लिया गया है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर (dP/P) मृत्युदर की गिरावट के कारण बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच सम्बन्ध को रेखाचित्र संख्या 10.1 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में बिन्दु (S) न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करता है। S से बायीं ओर जब प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से भी कम है, जनसंख्या की वृद्धि दर ऋणात्मक है अर्थात् मृत्युदर जन्मदर से अधिक है पर जब प्रति व्यक्ति आय से ऊपर बढ़ती है तो जनसंख्या तब तक बढ़ती है जब तक कि यह ऊपरी सीमा T तक नहीं पहुंच जाती। इसके बाद जनसंख्या की वृद्धि दर इसी स्तर पर रहती है जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर (Y/P) नहीं हो जाता, उसके बाद इसमें गिरावट शुरू हो जाती है। अर्थात् उच्च प्रति व्यक्ति आय स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी। इस रेखाचित्र में PP वक्र प्रति व्यक्ति आय के विभिन्न स्तरों पर ‘जनसंख्या वृद्धि पथ’ प्रदर्शित करता है।
- **आय निर्धारण समीकरण** - नेल्सन माडल में आय निर्धारण, समीकरण, उत्पादन फलन की ही तरह है। माडल इस मान्यता पर आधारित है कि आय उत्पादन साधनों के रूप में आगतों का रैखिक सहजातीय फलन है अर्थात्  $Y$  अथवा  $O = f(T)$  जिसमें K पूँजी, L = श्रम (जो जनसंख्या का एक स्थिर अनुपात है) तथा T कुल उत्पादकता का निर्देश है। प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक ढांचा को स्थिर मान लिया गया है।



चित्र संख्या 10.2

मॉडल की मान्यताओं के आधार पर ‘आय वृद्धि वक्र’ का निर्माण किया जा सकता है, जिसका प्रदर्शन रेखाचित्र संख्या 10.2 में  $dY/Y$  वक्र के द्वारा किया गया है। जिसका निर्धारण रेखाचित्र संख्या 10.1 से किया गया है। इस स्थिति में जनसंख्या स्थिर है। बचत के द्वारा निर्मित प्रति व्यक्ति पूँजी शून्य है। फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य ( $dY/Y = 0$ ) है। इस स्थिर संस्थिति के स्तर से ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता तथा श्रम शक्ति के वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है, पर प्राविधिक प्रगति के अभाव में ‘परिवर्तनशील अनुपात नियम’ के क्रियाशीलन के कारण वृद्धि दर में गिरावट आयेगी। इसके पूर्व हम लोगों ने नेल्सन माडल के उन तीन समीकरणों की व्याख्या की तथा रेखाचित्र संख्या 10.1 तथा 10.2 के अंतर्गत उनके आधार पर तीन महत्वपूर्ण वक्र प्राप्त की।  $(dp/P)$  या जनसंख्या में वृद्धि दर वक्र,  $(dK/P)$  प्रति व्यक्ति निवेश वृद्धि दर वक्र तथा  $(dY/Y)$  आय वृद्धि दर वक्र। इन तीनों समीकरणों तथा तीनों वक्रों के आधार पर नेल्सन ने अपने माडल की व्याख्या की। नेल्सन माडल की व्याख्या के लिए हम 10.1 तथा 10.2 में दिये गये रेखाचित्रों को मिलाकर नीचे रेखाचित्र 10.3 दे रहे हैं। जिसके आधार पर अल्पस्तरीय आय संस्थिति पाश की स्थिति प्रदर्शित की गयी है जिसमें प्रति व्यक्ति आय स्थायीरूप से गिरावट की स्थिति में है को प्रदर्शित किया गया है।



चित्र संख्या 10.3

इस रेखाचित्र में  $(dY/Y)$  आय वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र संख्या 10.2 से लिया गया है तथा  $(dP/P)$  वक्र जनसंख्या वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखा 1 (a) से लिया गया है। रेखाचित्र 1 (b) से  $X$  का स्तर लिया गया है जो सुविधा क लिए  $S$  के बराबर मान लिया गया है। रेखाचित्र 10.3 में  $S = X$  एक ऐसा बिन्दु है जिस पर प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर है जिस पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर है तथा दूसरी ओर यह प्रदर्शित करता है कि इस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति बचत तथा निवेश शून्य है।

प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जो जीवन निर्वाह स्तर बिन्दु ( $S = X$ ) तथा  $O_a$  के बीच हो, जनसंख्या की वृद्धिदर आय की वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक होगी, इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति आय में स्थायी रूप से गिरावट होगी और यह जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंच जायेगी, संस्थिति प्रति व्यक्ति आय का स्तर वहां होगा जहां 'जनसंख्या की वृद्धि दर प्रदर्शित करने वाली वक्र ( $dP/P$ ) आय संवृद्धि पर दर वक्र ( $dY/Y$ ) को नीचे से काटे। ऐसा एक बिन्दु  $O_a$  के बायीं ओर वहां होगा जहां  $S=X$  है। यह बिन्दु 'अल्पसन्तुलन पाश' की स्थिति को प्रदर्शित करेगा। प्रति व्यक्ति आय का कोई भी स्तर जो  $O_a$  से कम हो, प्रति व्यक्ति आय को आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंचा देगा। इसके विपरीत यदि प्रति व्यक्ति आय का स्तर  $O_a$  से अधिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में तब तक स्थायी वृद्धि होगी जब तक कि दोनों वक्र एक दूसरे को  $O_b$  स्तर पर पुनः नहीं काटतीं। यह एक नयी स्थिर संस्थिति की स्थिति होगी जहां 'जनसंख्या की वृद्धि दर वक्र' आय वृद्धि दर वक्र को नीचे से काटती है। इस 'अल्प सन्तुलन पाश' से निकलने के लिए दो रास्ते हैं – या तो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर  $O_a$  कर दिया जाये या सरकारी नीतियों के द्वारा  $dY/Y$  तथा  $dP/P$  वक्र वांछित रूप से विवर्तित कर दी जायें। ऐसे विकासशील देश जो ऐसे पाश में फंसे हैं उन्हें एक बार में अपनी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर  $O_a$  के बराबर लाना होगा। ये देश इस पाश से तभी छूट सकते हैं जब प्राविधिक प्रगति के कारण समयान्तर में  $dY/Y$  को ऊपर विवर्तित किया जा सके या प्रभावपूर्ण जनसंख्या नीति द्वारा  $dP/P$  वक्र को नीचे विवर्तित किया जा सके। जैसा आगे हम 'लीबन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त' तथा 'प्रबल धक्का सिद्धान्त' की व्याख्या के दौरान देखेंगे कि दोनों में ही यह प्रतिपादित किया गया है कि इस स्तरीय संस्थिति जाल से निकलने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में एक साथ इतनी अधिक मात्रा में निवेश किया जाय कि प्रति व्यक्ति आय एक बारगी  $O_a$  से अधिक हो जाये। लॉ मिंट ने नेल्सन माडल को अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में लागू करने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयों को बताया है

क. प्रति व्यक्ति आय स्तर, जनसंख्या की वृद्धि दर तथा कुल आय की वृद्धि दर के बीच नेल्सन ने फलनात्मक सम्बन्ध की बात की पर मिंट के अनुसार इनके बीच इस प्रकार के निश्चित तथा कठोर फलनात्मक सम्बन्ध को खींचा नहीं जा सकता है। आजकल अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण नहीं है बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं, महामारी तथा भयानक बीमारियों आदि के नियंत्रण के परिणामस्वरूप मृत्युदर की कमी के कारण हुयी है। मिंट का यह भी कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा कुल आय में वृद्धि दर के बीच फलनात्मक सम्बन्ध अत्यन्त ही जटिल हैं।

ख. नेल्सन के रेखाचित्र 10.3 पर टिप्पणी करते हुए मिंट ने दो आपत्तियां उठाईं। 1. प्रति व्यक्ति आय के स्तर में थोड़ी सी वृद्धि जैसे  $S$  से  $CS$  बिन्दु पर पुनः स्थिर संस्थिति की स्थिति कायम तभी करेगी जबकि 'समय' को वक्र खींचते समय नहीं लिया गया पर यदि 'समय' को लिया गया तो  $S$  से  $C$  पर परिवर्तन के साथ पूँजी स्टॉक में स्थायी वृद्धि हो जायेगी ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था फिर  $C$  से खिसक कर  $S$  पर नहीं आयेगी।

### 10.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें

1. जनसंख्या वृद्धि दर मरण दर से सम्बन्धित है।
2. जन्मदर में कमी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती।
3. जन्मदर कम करने के लिए राज्य प्रयत्नों की उपेक्षा की गई करता है।
4. समय तत्व की उपेक्षा।
5. प्रति व्यक्ति आय तथा वृद्धि दर में जटिल संबंध।
6. यह बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

### 10.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. लिबिन्सटीन के ही समान विचार निम्न में से किस अर्थशास्त्री ने दिये?
  - A. रोस्टोव
  - B. रोजेन्स्टीन
  - C. हर्षमैन
  - D. नेल्सन
2. नेल्सन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?
  - A. प्रबल प्रयास सिद्धान्त
  - B. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
  - C. निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त
  - D. जीवन-निर्वाह सिद्धान्त
3. 'Theory of the low level equilibrium trap' लेख सम्बन्धित है
  - A. नेल्सन से
  - B. जे0ई0 मीड
  - C. डोमर
  - D. रॉबिन्सन
4. 'प्रतिव्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में उंचा सह संबंध है' यह विचार धारा सम्बन्धित है
  - A. सिंगर
  - B. नेल्सन
  - C. फ्लेमिंग

## D. मार्शल

### सत्य/असत्य

1. नेल्सन का सिद्धान्त माल्थस की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के न्यूनतम जीवन स्तर से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है।
2. नेल्सन माडल में आय निर्धारण समीकरण उत्पादन फलन की ही तरह है।
3. "गुणक एवं त्वरक सिद्धान्तों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध है।" की व्याख्या नेल्सन ने की।
4. नेल्सन ने विकास में उद्यमी की भूमिका पर अधिक जोर दिया।
5. बड़े धक्के का विचार का सम्बन्ध नेल्सन से है।

## 10.5 सारांश

निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए नेल्सन ने अनेक साधन लक्ष्य किए हैं। **प्रथम**, देश में अनुकूल सामाजिक-राजनैतिक वातावरण होना चाहिए। **दूसरे**, मितव्ययिता तथा उद्यम वृत्ति पर अधिक बल देकर सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाया जाए। अधिक उत्पादन के लिए और प्रोत्साहन दिए जाएं। परिवार का आकार सीमित रखने के लिए भी प्रोत्साहन दिए जाएं। **तीसरे**, आय के वितरण में परिवर्तन लाने के लिए कदम उठाए जिससे निवेशक धन संचय कर सकें। **चौथे**, एक सर्वव्यापी सरकारी निवेश कार्यक्रम होना चाहिए। **पांचवे**, विदेशों से कोष प्राप्त करके आय तथा पूँजी बढ़ाई जाए। **अन्तिम**, विद्यमान साधनों को अधिक पूर्णता से उपयोग में लाने के लिए उत्पादन की सुधरी तकनीकें काम में लायी जायें, ताकि दिये हुए उपकरणों से आय बढ़ जाये। अल्प विकसित देशों में निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि यह अधिक हो। जब किसी निश्चित न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय स्तर से ऊपर एक बार यह स्थिति उपलब्ध हो जायेगी, तो सरकारी प्रयत्न के बिना भी तब तक सतत वृद्धि होती चलेगी जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का एक नया उच्च स्तर नहीं आ जाता।

## 10.6 शब्दावली

- **उच्च भौतिक सीमा** - उच्चतम उपभोग की अवस्था।
- **न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर** - आय की वह मात्रा जो मात्र अति आवश्यक उपभोग को ही क्रय कर सके अर्थात् आय का निम्न स्तर।

## 10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### सत्य/असत्य

1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य 5. असत्य

## 10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- प्रो. एम0 एल0 झिगन, " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन " बिन्द्रा पब्लिशिंग हाउस ,दिल्ली ,2010

- प्रो० एस०एन०लाल "आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद "1999
- प्रो. एस०पी० सिंह, " आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन "एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली 2009

---

## 10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- R. R. Nelson, "A theory of the low level Equilibrium Trap".American Economic Review.
- Agarwal, R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja, M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010

---

## 10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए। आपकी राय में निम्न संतुलन पाश से बचने के क्या उपाय हो सकते हैं?

---

## इकाई 14 - रोजेन्स्टीन का सिद्धान्त (Theory of Rosenstein)

---

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 बड़े धक्के के सिद्धान्त
  - 11.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
  - 11.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
  - 11.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएं
  - 11.3.4 सिद्धान्त के गुण
  - 11.3.5 सिद्धान्त की आलोचनायें
- 11.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 11.5 सारांश
- 11.6 शब्दावली
- 11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.9 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री
- 11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 11.1 प्रस्तावना

प्रो. पाल. एन. रोजेन्स्टीन रोडान द्वारा प्रतिपादित प्रबल प्रयास या बड़े धक्के का सिद्धान्त लीबन्स्टीन के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' से काफी मिलता जुलता है। रोडान 'सन्तुलित विकास' के समर्थक थे लेकिन विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत न थे। उनका विश्वास था कि दीर्घकालीन स्थिरता और विपैले चक्रों में फंसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाने के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता होती है। रोडान के अनुसार जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही उठाना पड़ता है ठीक उसी प्रकार नियोजन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके निम्न स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकाल कर संचयी विकास पर आरूढ़ करना होना चाहिए।

## 11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि -

- ✓ बड़े धक्के के सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है।
- ✓ बड़े धक्के से सम्बन्धित विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की क्षमता क्या होती है।
- ✓ अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताओं से क्या तात्पर्य है।
- ✓ अविभाज्यतायें कितने प्रकार की होती है।

## 11.3 बड़े धक्के का सिद्धान्त

### 11.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा

यह सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि धीरे धीरे चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। एक कमजोर इंसान द्वारा, किसी शक्तिशाली शिकंजे से मुक्त होने के लिए हल्का फुल्का प्रयास करना अपनी ताकत को बर्बाद करना है। उसे तो बची-खुची सम्पूर्ण ताकत को एक दफा समेट कर लगाना होगा ताकि मुक्ति की सम्भावना प्रबल हो सके। यही बात अर्थव्यवस्थाओं के साथ भी लागू होती है। स्थिर अवस्था में पड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं को गति प्रदान करने के लिए एक 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में निवेश करना बहुत जरूरी है ताकि अर्थव्यवस्था को झटके के साथ इस स्थैतिक अवस्था से बाहर निकाला जा सके। रोडान ने अपने तर्क हेतु एक उदाहरण देते हुए कहा है कि एक पिछड़े हुए देश को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाना, सही अर्थ में; एक हवाई जहाज को जमीन से ऊपर उड़ाने के समान है। जिस प्रकार हवाई जहाज उड़ाने के लिए जमीन पर एक "आवश्यक न्यूनतम गति" को बनाये रखना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका निवेश करना जरूरी है।"

### 11.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या

'बड़ा धक्का' अथवा 'प्रयास सिद्धान्त' प्रो. पाल. एन. रोजेन्स्टीन रोडान के नाम से संबद्ध है। थीसिस

यह है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की बाधाओं को पार करने और उसे प्रगति पथ पर चलाने के लिए 'बड़ा धक्का' या बड़ा व्यापक प्रोग्राम आवश्यक है, जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में निवेश के रूप में हो। उसने M.I.T. अध्ययन से अपने तर्क पर बल देने के लिए एक 'सादृश्य' प्रस्तुत किया है। यदि विकास प्रोग्राम को थोड़ा भी सफल बनाना है, तो संसाधनों का एक न्यूनतम स्तर उस प्रोग्राम में लगाना ही पड़ेगा। किसी देश की वृद्धि को आत्मनिर्भरता की अवस्था में लाना ठीक ऐसा ही है, जैसा हवाई जहाज को धरती से हवा में उड़ाना। भूमि पर एक ऐसी क्रांतिक गति होती है, जिसे विमान को वायुवाहित बनाने के लिए धरती पर ही पार करना पड़ता है।" यह सिद्धान्त कहता है कि 'धीरे-धीरे' चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास पथ पर नहीं लाया जा सकता बल्कि इसके लिए आवश्यक स्थिति यह है कि एक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। इसके लिए उन बाह्य मितव्ययिताओं को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है, तो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एक साथ स्थापना से उत्पन्न होती है। इस प्रकार निवेश की न्यूनतम मात्रा में प्रवाहित होने वाली अविभाज्यताएँ तथा बाह्य मितव्ययिताएँ आर्थिक विकास का सफलतापूर्वक सूत्रपात करने के लिए आवश्यक है।

### 11.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएँ

रोजेन्स्टीन रोडान ने तीन विभिन्न प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाह्य मितव्ययिताओं में भेद किया है।

1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएँ विशेष रूप से सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की अविभाज्यता,
2. मांग की अविभाज्यता,
3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता।

आर्थिक विकास लाने में इन अविभाज्यताओं के कार्य का हम अब विश्लेषण करते हैं।

1. **उत्पादन फलन में अविभाज्यताएँ** – रोजेन्स्टीन रोडान के अनुसार, आगतों-निर्गतों तथा प्रक्रियाओं की अविभाज्यताओं से बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। उसका दृढ़ विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बढ़ते प्रतिफलों ने पूँजी उत्पादन अनुपात कम करने में काफी भाग लिया था। परन्तु वह सामाजिक उपरि पूँजी को अविभाज्यता कि और इसलिए पूर्ति पक्ष में बाह्य मितव्ययिताओं का, अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण मानता है। सामाजिक उपरि पूँजी की सेवाएँ, जिनके अंतर्गत आधारभूत उद्योग जैसे विद्युत, परिवहन तथा संचार हैं, अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक हैं और उनकी पूरी होने की अवधि लम्बी होती है। इनका आयात नहीं हो सकता। उनकी सस्थापनाएँ काफी प्रारंभिक राशि के निवेश की अपेक्षा रखती हैं। इसलिए उनमें कुछ समय तक अप्रयुक्त क्षमता रहेगी। इनमें "विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताओं का अहास्य न्यूनतम उद्योग मिश्रण होता है, जिसके कारण अल्प विकसित देश को अपने कुल निवेश का 30-40 प्रतिशत इन दिशाओं में लगाना पड़ेगा।" इसलिए उन्हें शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों से पहले होना चाहिए।

इस प्रकार, रोडान के अनुसार, सामाजिक उपरि पूँजी को चार अविभाज्यताएँ विशिष्टता प्रदान करती हैं। प्रथम, यह काल में अप्रतिवर्त्य होती है और इसलिए आवश्यक है कि अन्य प्रत्यक्षतः उत्पादक

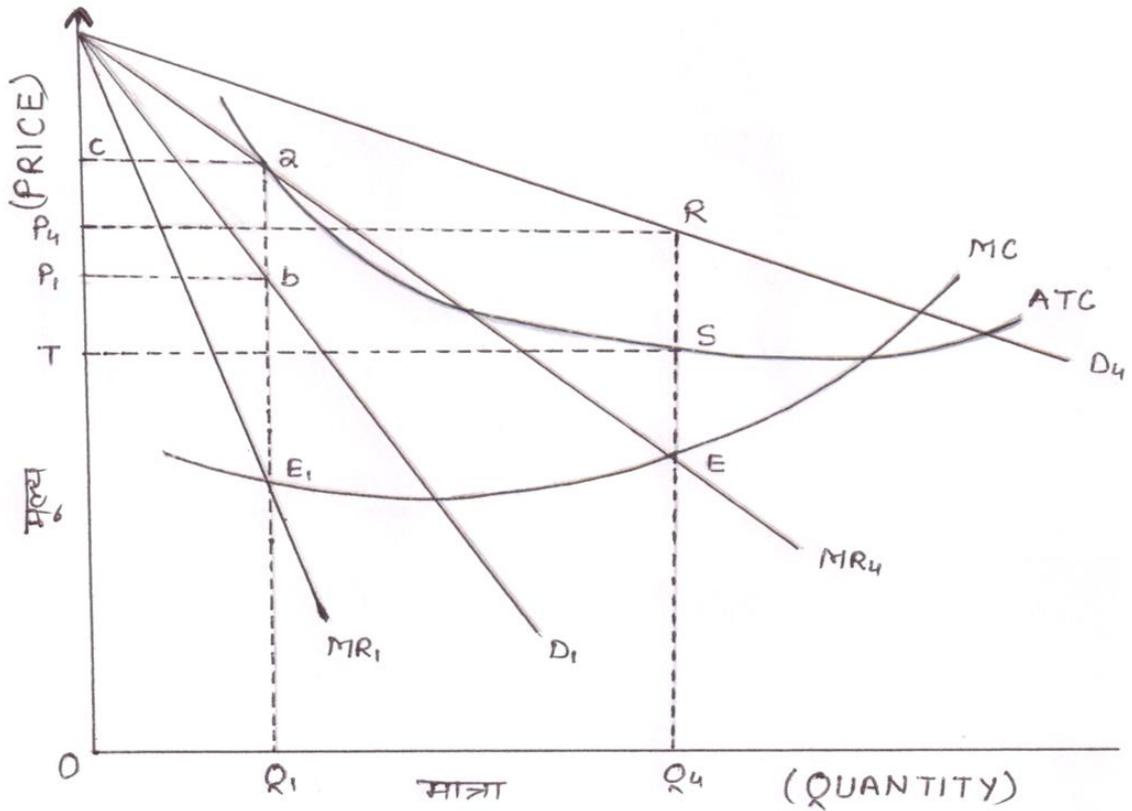
निवेशों से यह पहले हो। दूसरे, इसमें एक निश्चित न्यूनतम टिकाऊपन होता है, जो इसे गठीला बनाता है। तीसरे, इनकी गर्भावधि लम्बी होती है (अर्थात् यह देर में फल देना शुरू करती है) अन्तिम, इसमें विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक उपयोगिताओं का एक निश्चित न्यूनतम अहास्य उद्योग मिश्रण होता है। सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की ये अविभाज्यताएं अल्पविकसित देशों में विकास की प्रमुख बाधा है, इसलिए शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों का मार्ग चलाने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक उपरि पूँजी में उच्च प्रारम्भिक निवेश किया जाए।

2. **मांग की अविभाज्यता** – मांग की अविभाज्यता या पूरकता इस बात की अपेक्षा रखती है कि अल्प विकसित देशों में परस्पर-निर्भर उद्योगों की एक साथ स्थापना हो। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं में भारी जोखिम रहता है क्योंकि अनिश्चितता यह होती है कि उनकी वस्तुओं के लिए मार्केट होगी भी या नहीं, इसलिए निवेश सम्बन्धी निर्णय परस्पर निर्भर रहते हैं। रोजेन्स्टीन रोडान ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता-फैक्टरी का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बन्द अर्थव्यवस्था लेकर, मान लीजिए, कि एक जूता फैक्ट्री में सौ अदृश्य बेरोजगार श्रमिक काम पर लगाए जाते हैं, जिनकी मजदूरी अतिरिक्त आय का निर्माण करती है। यदि ये श्रमिक अपनी समस्त आय उन जूतों पर खर्च करें जिनका वे निर्माण करते हैं तो जूता मार्केट में निरन्तर मांग रहेगी और इस प्रकार उद्योग सफल हो जाएगा। परन्तु वे अपनी समस्त अतिरिक्त आय जूतों पर नहीं खर्च करेंगे क्योंकि मानवीय आवश्यकताएं नाना प्रकार की होती हैं। फैक्ट्री के बाहर के लोग भी इन अतिरिक्त जूतों को नहीं खरीदेंगे क्योंकि वे दरिद्र हैं और उनके पास इतना धन नहीं है कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। इस प्रकार मार्केट के अभाव के कारण कई फैक्ट्री उजड़ जायेगी।

इसी उदाहरण को बदलकर प्रस्तुत किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक फैक्ट्री में सौ की बजाय सौ फैक्ट्रियों में दस हजार श्रमिक लगे हैं, जो विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन वस्तुओं के क्रय में अपनी मजदूरी खर्च करते हैं। नए उत्पादक एक दूसरे के ग्राहक होंगे और इस प्रकार अपनी वस्तुओं के लिए मार्केट बना लेंगे। मांग की पूरकता मार्केट ढूँढने की जोखिम को घटाती है और निवेश की प्रेरणा को बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में, अल्पविकसित देशों में मार्केट का छोटे आकार तथा निवेश कम प्रेरणा को पार करने के लिए, मांग की अविभाज्यता परस्पर निर्भर उद्योगों में एक उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश को आवश्यक बना देती है।

रोजेन्स्टीन -रोडान की जूता फैक्ट्री का उदाहरण चित्र में समझाया गया है। ATC तथा MC वक्र एक प्लेट की लागत को दर्शाता है जो कि एक इष्टतम आकार के प्लेट से कुछ छोटा है D1 तथा MR1 जूता फैक्ट्री के मांग और सीमांत आगम वक्र है अब केवल इसी में निवेश किया जाता है। यह OO1 (10,000) जूतों का उत्पादन करती है जिन्हें OP1 कीमत पर बेचती है जो इसकी ATC (औसत कुल लागत) को पूरा नहीं करती है। अतः फैक्ट्री Cab P1 हानि उठा रही है परन्तु जब एक साथ अनेक विभिन्न उद्योगों में निवेश किया जाता है तो जूतों की मार्केट का प्रसार होता है जिससे जूतों की मांग (चार गुणा) D4 बढ़ती है तथा जूतों की पूर्ति OO4 (40,000) हो जाती है। अब जूता फैक्ट्री P4RST के

बराबर लाभ कमाती है। इसी प्रकार अन्य उद्योग भी लाभ कमाते हैं।



चित्र संख्या 11.1

3. **बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता** – रोजेन्स्टीन के सिद्धान्त में बचत की उच्च-आय-लोच तीसरी अविभाज्यता है निवेश के एक उच्च न्यूनतम आकार के लिए बचतों की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है। दरिद्र अल्पविकसित देशों में इसे उपलब्ध कराना आसान नहीं क्योंकि वहां आय का स्तर बहुत कम होता है। इस कठिनाई को पार करने के लिए यह आवश्यक है कि जब निवेश में वृद्धि होने के कारण आय बढ़े, तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमान्त दर कभी अधिक नहीं रहे।

इन तीन अविभाज्यताओं तथा इनके द्वारा उत्पन्न बाह्य मितव्ययिताओं के दिए हुए होने पर अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने के लिए ‘बड़ा प्रयास’ या न्यूनतम मात्रा का निवेश आवश्यक है। रोडान ने लिखा है, **“विकास की सफलतापूर्ण नीति के लिए आवश्यक उत्साह तथा प्रयत्न में अन्ततः अविभाज्यता का तत्व होता है।”** अकेले तथा हल्के ढंग से धीरे धीरे चलने का आर्थिक वृद्धि पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता। जब किसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के भीतर एक न्यूनतम गति या मात्रा में निवेश होता है, तभी विकास का वातावरण बनता है। इस प्रकार जब एक बार विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो यह एक साथ ही संतुलित वृद्धि के सम्बन्धों के मार्ग पर क्रियाशील होती है। ये तीन संबंध हैं: **प्रथम**, सामाजिक उपरि पूँजी तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में

संतुलना। **द्वितीय**, पूँजी वस्तु उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के अनुलंब संतुलना। **तृतीय**, बढ़ रही उपभोक्ता मांग में पूरकता के कारण विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में क्षैतिक संतुलना। इस प्रकार के संतुलित विकास के लिए विस्तृत प्रोग्रामिंग अपेक्षित होता है।

### 11.3.4 सिद्धान्त के गुण

यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से काफी उचित जान पड़ता है क्योंकि विषम चक्रों से निकलने का एक मात्र सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से प्रयास करना है। यह सिद्धान्त कुछ बातों में स्थैतिक सन्तुलन के परम्परागत सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है। रोडान महोदय का यह कहना कि विकास प्रक्रिया अनेक असतत छलांगों का परिणाम है, पूर्णतया सत्य जान पड़ता है। उनकी उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं की मान्यता भी आर्थिक जगत की एक वास्तविकता है। यह सिद्धान्त अन्य विकसित देशों में पायी जाने वाली बाजार अपूर्णताओं से सम्बन्धित निवेश का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो हमें यह बताता है कि ऐसे देशों में कीमत-यन्त्र की बजाय निवेश की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा ही आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकती है।

### 11.3.5 सिद्धान्त की आलोचनाएं

सिद्धान्त के इन गुणों के बावजूद **प्रो. मिंट, ऐडलर, हैगन, किन्डलबर्जर, एलिस, वाइनर, बाल्डविन** तथा **हिगिन्स** द्वारा इसकी आलोचनाएं की गयी हैं जो कि इस प्रकार हैं –

1. **सिद्धान्त का अवास्तविक होना** – यह सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि अल्पविकसित देशों में निम्न आय, अल्प बचतें व पूँजीगत साधनों के अभाव के कारण बड़ी मात्रा में निवेश करना सम्भव नहीं होता।
2. **मितव्ययिताओं की असम्भावना** - यह सिद्धान्त उत्पादन के बड़े पैमाने की बाह्य मितव्ययिताओं पर आधारित एक सिद्धान्त है। लेकिन जैकब वाइनर का कहना है कि ये बाहरी बचतें तो विदेशी व्यापार से भी प्राप्त हो सकती हैं और फिर इतनी अधिक मात्रा में निवेश की भी आवश्यकता नहीं होगी। रोडान ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया है।
3. **अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा** – यह सिद्धान्त पूँजीगत परियोजनाओं एवं आर्थिक संरचना के क्षेत्र में विनियोग करने पर बल देता है लेकिन कृषि एवं प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने की अवलेहना करता है जो कि एक कृषि प्रधान अल्प विकसित देश के लिये उचित नहीं जान पड़ता।
4. **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता का अतार्किक दृष्टिकोण**- सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यतायें रोडान के सिद्धान्त का सबसे प्रबल तर्क है लेकिन **प्रो. मिंट** का कहना है कि प्रत्येक अल्प विकसित देश में ये सामाजिक उपरि पूँजी सुविधायें कुछ न कुछ मात्रा में पायी जाती है इसलिये समस्या इन सुविधाओं के नये सिरे से विकास करने की नहीं बल्कि उनमें सुधार करने की होती है। अतः इस दृष्टि से प्रबल प्रयास के रूप में निवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि निवेश कर भी दिया जाये तो यह जरूरी नहीं कि यह निवेश इन देशों के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सके।
5. **अल्प लागतों वाले विनियोजन से नगण्य मितव्ययितायें उपलब्ध होना** – **प्रो. किन्डलबर्जर** का कहना है कि उपभोक्ता उद्योगों में सम्भाव्य बाहरी बचतें सीमित मात्रा में ही प्राप्त की जा सकती हैं।

अत्यधिक बेलोच मांग वाली वस्तुओं में निवेश करने से प्रदा नहीं बढ़ती बल्कि लागत घटने लगती है क्योंकि बाहरी बचतें केवल भारी उद्योगों में प्रदा के विस्तार होने से उत्पन्न हो सकती है। चूंकि लागत घटाने वाले निवेश में बचतें नगण्य होती हैं इसलिये इनमें निवेश करने और उनसे बचतें प्राप्त होने का तर्क गलत सिद्ध होता है।

6. **अल्प विनियोजन द्वारा प्रदा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होना - प्रो. जॉन ऐडलर का मत है कि** रोडान की इस थीसिस के विपरीत निवेश की साक्षेपतः कम मात्रा, प्रदा में अधिक वृद्धि कर देती है। **ऐडलर** के तर्क की पुष्टि भारत व अन्य एशियाई तथा दक्षिण अमेरिका के कुछ ऐसे देशों से भी होती है जहां निम्न पूँजी उत्पाद अनुपात के बावजूद प्रदा का स्तर संतोषजनक रहा है।
7. **स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना - सामाजिक ऊपरी सुविधाओं पर किया गया निवेश प्रत्यक्ष रूप से न तो उत्पादन करता है और न ही इनसे शीघ्रगामी प्रतिफल ही प्राप्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं, इन परियोजनाओं में पूँजी उत्पाद भी अधिक होता है और इनकी गर्भावधि भी लम्बी होती है। जिसके फलस्वरूप इस काल के दौरान विनियोगों के अधिक होने और उत्पादन के कम होने के कारण स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होने लगते हैं।**
8. **इतिहास द्वारा पुष्टि न होना – प्रो. हेगन के मतानुसार यह सिद्धान्त पिछड़े देशों के तीव्र विकास का एक ‘जोशीला नुस्खा’ अवश्य है लेकिन भावनाप्रधान अधिक है। फिर, इसकी पुष्टि इतिहास के किसी भी चरण द्वारा नहीं होती।**

## 11.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

### बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रबल प्रयास का आर्थिक विकास का सिद्धान्त किससे सम्बन्धित है?
  - A. सिंगर
  - B. बाल्डविन
  - C. रोडान
  - D. नक्से
2. रोजस्टीन के अनुसार बचत एवं निवेश वृद्धि हेतु आवश्यक है :
  - A. उपभोग वृद्धि
  - B. आय का ऊंचा होना
  - C. लाभ वृद्धि
  - D. मांग वृद्धि
3. बिग पुश सिद्धान्त की अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में मान्यता है कि –

- A. पूँजी उत्पाद अनुपात अधिक है  
 B. पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर है  
 C. पूँजी -उत्पाद अनुपात कम है  
 D. उपरोक्त में से कोई नहीं
4. किस अर्थशास्त्री का सम्बन्ध बड़े धक्के के विचार धारा से नहीं है?  
 A. नेल्सन  
 B. रोजेस्टीन  
 C. लीबन्स्टीन  
 D. लेविस

### सत्य /असत्य

1. "बिग पुश सिद्धान्त के अनुसार छोटे-छोटे विकास के कार्यक्रम एक बड़े विकास का रूप नहीं ले सकते।"
2. लेविस का सम्बन्ध बड़े धक्के की विचारधारा से है।
3. बिगपुश सिद्धान्त की ऐतिहासिक प्रामाणिकता से इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती है।
4. आर्थिक विकास प्रेरित प्रक्रिया नहीं है।

## 11.5 सारांश

आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग या बड़े धक्के के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से पूँजी स्टॉक उद्योगों, मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत सन्तुलन होना चाहिए, विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक मांग के अनुसार, 'समस्तर सन्तुलन' होना चाहिए, और पूँजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं के बीच, 'समस्तर सन्तुलन' बना रहना चाहिये।

रोजेन्स्टीन रोडॉन के दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख विशेषता तथा महत्व इस तथ्य में निहित है कि इन पिछड़े देशों की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास तथा विनियोग के साथ आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका पर बल दिया। यह भी बात सही है कि कुछ विनियोगों के न्यून आकार हैं। (विशेष रूप से सामाजिक परिव्यय पूँजी के सम्बन्ध में) जिससे कम रहने पर वे आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं होंगे, जैसे सड़क, रेलवे, तथा पावर स्टेशन को चालू मांग को ही पूरा करने के लिए छोटे पैमाने पर बनाना अलाभप्रद ही नहीं बल्कि मूर्खता पूर्ण कदम होगा। पर यदि कोई देश इतने बड़े पैमाने पर सोच सके इतने बड़े पैमाने पर साधनों को जुटाकर बड़ी मात्रा में विनियोजन कर सके तथा साथ ही इस बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण कर सके तो वह देश पिछड़ा या अल्पविकसित नहीं होगा।

## 11.6 शब्दावली

- **प्रबल प्रयास-** आवश्यक न्यूनतम मात्रा अर्थात् उच्च मात्रा में निवेश करना।

- स्फीतिकारी दबाव- विनियोगी के अधिक होने और उत्पादन के कम होने से है।

## 11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### बहुविकल्पीय प्रश्न

1. C.रोडान , 2. D.मांग वृद्धि , 3. B.पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर है। 4. D. लेविस

### सत्य /असत्य

1.सत्य , 2. असत्य , 3.सत्य 4. असत्य

## 11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- प्रो. एम० एल० झिगन, " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन " बिन्द्रा पब्लिशिंग हाउस ,दिल्ली ,2010
- प्रो. एस०एन०लाल 'आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद"1999
- प्रो. एस०पी० सिंह, " आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन "एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2009 4. "External Economic and Balanced Growth" In Aggarwal and Singh (Eds.)Op. Cit.
- Desai M. and Maxumdar, A test of the Hypothesis is of Disguised unemployment; Econometrica 1970.

## 11.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Newes Ohthe Theory of "Big Push" in Economic Development of Latin America, Ch. III (Eds) H.S. Ellis and W.W. Wallich, 1961.
- The Objectives of US Economic Assistance Programme, 1957.
- Stability and Progress: The Poorer Countries Problems" in Satbility an Progress in the World Economic, D. Hague, (Ed) 1958.
- World Economic Growth - Retrospect and Prospect" R.E.S. , August, 1956.

## 11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बृहतकाय चाप सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु यह कहां तक उपयुक्त है?
2. आर्थिक विकास में बड़े धक्के का सिद्धान्त क्या है? किन परिस्थितियों के अन्तर्गत यह लागू होता है?
3. रोजेन्स्टीन रोडान द्वारा प्रतिपादित प्रबल प्रयास सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?
4. रोजेन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त

- लीबन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास से किस प्रकार भिन्न है?
5. विकास का 'प्रबल प्रयास' सिद्धान्त क्या है? क्या इस सिद्धान्त और सन्तुलित विकास के सिद्धान्त में कोई विवाद है
  6. बड़े धक्के अर्थात् प्रबल प्रयास सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

## इकाई 12 - सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद (Social and Technical Dualism)

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त
  - 12.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय
  - 12.3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं
  - 12.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता
  - 12.3.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन
  - 12.3.5 निष्कर्ष
- 12.4 तकनीकी द्वैतवाद
  - 12.4.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय
  - 12.4.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन
  - 12.4.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष
- 12.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 12.6 सारांश
- 12.7 शब्दावली
- 12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ पाठ्य सामग्री
- 12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

द्वैतीय आर्थिक संरचना वर्तमान अल्पविकसित देशों की एक सामान्य विशेषता है जिसमें दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं का सह-अस्तित्व पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में एक ओर आधुनिक अर्थव्यवस्था तथा दूसरी ओर परम्परागत अथवा पिछड़ी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं रहा होता है। इन दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व के कारण ‘द्वैतवाद की समस्या’ उत्पन्न होती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा ‘द्वैतवाद की समस्या’ का अध्ययन करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनमें जे. एच. बूके द्वारा प्रतिपादित “सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त” एवं हिगिन्स द्वारा प्रतिपादित “तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त” महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

## 12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि –

- ✓ सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद क्या है?
- ✓ द्वैतीय समाज की क्या विशिष्टताएं हैं?
- ✓ बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं क्या हैं?
- ✓ सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद में क्या प्रमुख अन्तर है?
- ✓ हिगिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त के प्रमुख दोष क्या हैं?

## 12.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Social Dualism)

हॉलैंड के अर्थशास्त्री प्रोफेसर जे. एच. बूके ने एक विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर ही लागू होता है। उसका “सामाजिक द्वैतवाद” का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के आर्थिक तथा सामाजिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त है जो प्रमुख रूप से उनके इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था के अध्ययनों पर आधारित है।

### 12.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Social Dualism)

बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं

1. सामाजिक भावना,
2. संगठनात्मक रूप तथा
3. व्याप्त तकनीक

इनकी परस्पर निर्भरता तथा परस्पर संबंध को सामाजिक प्रणाली या सामाजिक ढंग कहते हैं। वह समाज सजातीय होता है जिसमें केवल एक सामाजिक प्रणाली पाई जाती हो। परन्तु किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक-साथ विद्यमान हो सकती हैं। तब वह द्वैत या बहु-संख्यक समाज होता है। बूके ने ‘द्वैत समाज’ शब्द का प्रयोग

‘ऐसे समाजों’ के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक ऐतिहासिक क्रम-विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक-दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। उदाहरण के लिए, शुरू के पूँजीवाद द्वारा पूर्व-पूँजीवाद तथा उच्च पूँजीवाद।” उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली तथा स्वदेशीय पूर्व-पूँजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली का पाया जाना इस प्रकार के द्वैत समाज की विशिष्टता होती है।

प्रथम प्रणाली अर्थात् उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दूसरी स्वदेशी होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे ‘सामाजिक द्वैतवाद’ कहा है और इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : “यह एक आयातित सामाजिक प्रणाली की दूसरी ढंग की स्वदेशीय सामाजिक प्रणाली से भिन्न है। प्रायः आयातित सामाजिक प्रणाली उच्च पूँजीवाद होती है। पर यह समाजवाद या साम्यवाद भी हो सकती है या फिर दोनों का मिश्रण भी।”

### 12.3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं (Characteristics of Dualistic Society)

दो परस्पर विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्तः- क्रियाओं के वर्णन तथा स्पष्टीकरण के लिए बूके ने ‘द्वैतीय समाज’ का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे उन्होंने ‘द्वैतीय अर्थशास्त्र’ या ‘पूर्वीय अर्थशास्त्र’ की संज्ञा दी है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं हैं जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं। पूर्वीय समाज की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। यदि लोगों की तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो वे संतुष्ट हो जाते हैं। “जब नारियल की कीमत अधिक हो जाती है, तो संभावनाएं ये हैं कि थोड़ी वस्तुएं विक्रय के लिए आएंगी; जब मजदूरी बढ़ाई जाती है तो संपदा का प्रबन्धकर्ता यह जोखिम मोल लेता है कि पहले से थोड़ा कम काम होगा; यदि किसी कृषक के परिवार की आवश्यकता के लिए तीन एकड़ काफी हैं, तो वह छः की काशत नहीं करेगा; जब रबड़ की कीमतें गिरती हैं तो वाटिका का मालिक वृक्षों को अधिक गहनता से उपयोग का निर्णय करता है। जबकि उंची कीमतों का मतलब है कि वह उपयोगिता वृक्षों के थोड़े बहुत भाग को बिना उपयोग के छोड़ देता है।” ऐसा इसलिए कि लोग आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। वस्तुओं का मूल्यांकन प्रयोग- मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के अनुसार होता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पीछे की ओर ढालू प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पूर्वीय अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है।

स्वदेशी उद्योग लगभग संगठनरहित, पूँजीहीन, तकनीक की दृष्टि से विवश और मार्केट से अनभिज्ञ होता है। लोग लगातार लाभ देने वाले उद्योगों की अपेक्षा सद्दा-क्रियाओं में अधिक लगे रहते हैं। वे जोखिम वाले निवेशों में विश्वास नहीं करते। उनमें उस उपक्रम तथा संगठनात्मक कुशलता का अभाव होता है, जोकि द्वैत समाज के पश्चिमी क्षेत्र की विशेषता है। ये भाग्यवादी होते हैं और आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने में झिझकते हैं। श्रम ‘असंगठित, निष्क्रिय, शान्त, आकस्मिक’ तथा अकुशल होता है। आप्रवासन तथा देश के भीतर एक प्रदेश से

दूसरे प्रदेश में जाना राज्य हस्तक्षेप के माध्यम से होता है। देहाती जीवन की लागत पर शहरी विकास होता है। पूर्वीय समाज में विदेशी व्यापार का प्रमुख लक्ष्य निर्यात है जो पश्चिमी समाज के लक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है, जहां वह आयात को संभव बनाने वाला साधन मात्र है।

### 12.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता (Inapplicability of Western Economic Theory to Dualistic Society)

पूर्वीय समाज की ये महत्वपूर्ण विशेषताएं पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों के लिए पूर्णतया अव्यवहार्य बना देती हैं। बूके के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवादी समाज की व्याख्या के लिए है, जबकि पूर्वीय समाज पूर्व-पूँजीवादी है। पहला, असीमित आवश्यकताओं, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों पर आधारित है। फिर, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में साधनों की अगतिशीलता के कारण, साधनों के विभाजन अथवा आय के वितरण की व्याख्या के लिए वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को लागू करना गलत है। इसलिए प्रोफेसर बूके ने चेतावनी दी है कि **“अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल, कमजोर, कांच-गृह के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहां कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा करती है।”** इस प्रकार, समस्त अर्थव्यवस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे के लिए अहितकर हो सकती है।

पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति द्वैतीय होने के कारण पश्चिमी ढंग से उनकी पूर्व-पूँजीवादी कृषि के विकास का प्रयत्न निष्फल ही नहीं होगा बल्कि हास भी ला सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन करने के लिए लोगों की मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उनके परिणमस्वरूप होने वाली धन में वृद्धि, जनसंख्या में और वृद्धि लाएगी। फिर, यदि पश्चिमी प्रौद्योगिकी फेल हो जाए तो ऋणग्रस्तता बढ़ जाएगी। इसलिए उनकी वर्तमान कृषि व्यवस्था को नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि उसमें सुधार कर सकना कठिन है।

जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है उसमें पूर्वीय उत्पादक अपने को प्रौद्योगिकीय, आर्थिक अथवा सामाजिक रूप से पश्चिमी प्रारूप के अनुकूल नहीं ढाल सकता। यदि पूर्वीय उत्पादक पश्चिम की नकल करेगा तो नुकसान उठाएगा। अपने तर्क की पृष्ठ में बूके ने इण्डोनेशिया का उदाहरण दिया। जहां इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करने के लिए प्रौद्योगिकी के अपनाने से आत्मनिर्भरता की मंजिल को और भी दूर कर दिया है तथा उसके छोटे उद्योग का नाश किया है।

बूके ने अल्पविकसित देशों में पाँच प्रकार की बेरोजगारी की ओर संकेत किया है: **“सामयिक (ऋतुकालिक), आकस्मिक, नियमित श्रमिकों की बेरोजगारी, बाबू लोगों की बेरोजगारी तथा यूरोशिआईयों की बेरोजगारी।”** वह समझते हैं कि **“उन्हें दूर करना सरकार के वष की बात नहीं क्योंकि इससे वित्तीय भार पड़ेगा तथा वह सरकार के साधनों से अधिक होगा।”**

अल्पविकसित देशों में सीमित आवश्यकताएं तथा सीमित क्रय-शक्ति पूरे आर्थिक विकास में रूकावट पैदा करती हैं। खाद्य आपूर्ति अथवा उद्योग-वस्तुओं की वृद्धि मार्केट में पदार्थों की भरमार कर देगी जिससे बाद में कीमतों में कमी होगी और मंदी आएगी। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि बूके पूरी तरह से औद्योगीकरण और

कृषि-सुधारों के विरुद्ध हैं बल्कि वह तो औद्योगीकरण तथा छोटे पैमाने पर कृषि विकास की धीमी प्रक्रिया के पक्ष में है, जोकि पूर्वीय समाज के द्वैतीय ढांचे के अनुकूल ढाल ली गई हो। विकास की प्रेरणा स्वयं लोगों के भीतर से आए। नए नेता प्रकट हों, जो आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए विश्वास, निष्कपटता और धैर्य से प्रत्यन करें।

### 12.3.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

बूके की विचारधारा कुछ हद तक अव्यवहारिक है प्रोफेसर बेंजामिन हिगिन्स का मानना है कि बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है जिसे सभी अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निम्नलिखित आधार पर बूके के द्वैतीय विकास के सिद्धान्त की बहुत कड़ी आलोचना की है :

1. **आवश्यकतायें सीमित नहीं होतीं (Wants are not limited)** - स्वयं इण्डोनेशिया का अनुभव बूके के इस कथन का समर्थन नहीं करता कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आवश्यकताएं सीमित होती हैं अथवा प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर ढालू होता है। वहां सीमान्त उपभोग तथा आयात प्रवृत्तियां दोनों ही ऊंची है। लोगों की आवश्यकताएं सीमित नहीं है बल्कि घरेलू तथा आयातित अर्द्ध-विलास वस्तुओं की मांग बहुत है। भारत में यदि अच्छी फसल हो जाए तो रेडियो, ट्रांजिस्टरों और घड़ियों आदि के आर्डरों की बाढ़ आ जाती है।
2. **आकस्मिक श्रम असंगठित नहीं (Causal labour is not unorganized)** - बूके का पूर्वीय आकस्मिक श्रमिक को असंगठित, निष्क्रिय, शान्त तथा आकस्मिक बताना **“इण्डोनेशिया और भारत में तथा अन्यत्र संगठित श्रम की बढ़ती हुई शक्ति से मेल नहीं खाता।”** इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आकस्मिक श्रम कृषि में भले ही संगठित न हो परन्तु चाय, कॉफी तथा रबड बागान में ट्रेड यूनियन आन्दोलन प्रबलतम होता है।
3. **पूर्वीय श्रम अगतिशील नहीं (Eastern labour is not immobile)** - बूके का यह विचार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने गाम समुदाय नहीं छोड़ना चाहते। वास्तव में अपने सिनेमा, दुकानों, होटलों, खेल प्रतियोगिताओं आदि के समस्त आकर्षणों से युक्त शहरी जीवन ने हमेशा देहाती क्षेत्रों से स्थानान्तरण कराया है। बड़े-बड़े शहरों में जो भीड़-भाड़, बेरोजगारी और अनुपयुक्त आधारभूत सुख सुविधाएं मिलती हैं, वे इसी का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त आय प्रेरणा से भी श्रम एक बागान से दूसरे में और यहां तक कि आकस्मिक श्रम फसल के दिनों में देहाती क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रोफेसर हिगिन्स लिखते हैं, **“मुझे इसका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता कि पूर्वीय श्रम आन्तरिक रूप में पश्चिमी श्रम की अपेक्षा अधिक अगतिशील है।”**
4. **पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विशेषता नहीं (Not peculiar to eastern-economies)** - बूके ने अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त को केवल पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध किया है, परन्तु वह स्वयं भी यह मानते है कि अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका की अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान है। यह केवल अल्पविकसित क्षेत्रों की ही विशेषता नहीं है वरन इटली, केनेडा और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी यह विद्यमान है। बल्कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था **“प्राद्योगिकीय उन्नति की विभिन्न कोटियों के अनुसार पृथक-पृथक क्षेत्रों में विभक्त की जा**

सकती है।”

5. **पश्चिमी समाजों पर भी लागू (Applicable to western societies also)** - पूर्वीय समाज की जिन खास विशिष्टताओं का बूके ने वर्णन किया है, उनमें से अनेक पश्चिमी समाजों पर भी लागू की जा सकती हैं। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में जब कभी दीर्घकालिक स्फीति आती या आने लगती है, तो लोग दीर्घकालीन निवेशों की अपेक्षा सट्टा-सम्बन्धी लाभों को अधिमान देते हैं। प्रोफेसर हिगिन्स के अनुसार, **“पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने ‘तरलता अधिमान’ तथा ‘सुरक्षा अधिमान’ से सम्बन्धित विश्लेषण के पूरे क्षेत्र का हाल ही में विकास किया है ताकि सारी दुनिया में निवेशकों के जोखिम या अतरलता उठाने की अनिच्छा और उनके पूँजी को सुरक्षित तथा तरल रूप में रखने के प्रबल अधिमान का हिसाब लगाया जा सके।”**
6. **प्रतिष्ठा-मूल्य (Prestige Value)** - बूके का यह कथन कि पूर्वीय अर्थव्यवस्था में लोग वस्तुओं को उनके प्रयोग-मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के कारण खरीदते हैं, पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होता है। यदि ऐसा न होता, तो वैब्लन (Veblen) अमेरिकी समाज के लिए **‘प्रत्यक्ष उपभोग’** शब्द न गढ़ता।
7. **पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र (Backward sloping supply curve of effort)** - पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र भी पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विलक्षणता नहीं है। आस्ट्रेलिया ने युद्धोत्तर काल में और संयुक्त राज्य अमेरिका ने वर्तमान शताब्दी के पांचवें दशक के वर्षों में इसे अनुभव किया था।
8. **सिद्धान्त नहीं वरन् विवरण (Not a theory but description)** - बूके अल्पविकसित देशों के लिए विशिष्ट आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्त देने में विफल रहे हैं। उनका द्वैतीय सिद्धान्त पूर्वीय समाज का विवरण मात्र है जिसमें वह पूर्वीय समाज के उन विलक्षण तत्वों का प्रदर्शन करता है, जिनका पश्चिमी ढंग से विकास नहीं होना चाहिए। बूके का यह कथन है कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूर्वीय समाजों पर लागू नहीं होता। वह नव-क्लासिकी सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी व्यवहार्यता पश्चिमी जगत में भी सीमित है।
9. **पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के औजारों का पूर्वीय समाजों में प्रयोग (Tools of western economic theory used in eastern societies)** - मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के मूल में निहित पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के कुछ औजार और भुगतान-शेष के असंतुलन को दूर करने वाले साधन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पूर्वीय समाजों पर भी लागू होता है। प्रोफेसर हिगिन्स का विश्वास है कि **“उपयुक्त संस्थानिक धारणाओं से परिभाषित मॉडल के भीतर आर्थिक तथा सामाजिक विश्लेषण के परिचित औजारों का व्यवहार करके”** अल्पविकसित देशों की समस्या का हल ढूँढा जा सकता है।
10. **बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं सुझाता (Does not provide solution to the problem of development)** - बूके के द्वैतवाद में यह एक बड़ी कमी है कि यह बेरोजगारी की समस्या का कोई हल नहीं सुझाता। बूके का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक केन्द्रित

है। वह विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी को, सरकार के बस की बात नहीं मानता और अल्प-रोजगार की बात ही नहीं करता, जो घनी आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है।

### 12.3.5 निष्कर्ष (Conclusion)

वास्तव में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की बड़ी समस्या यह है कि वर्तमान तथा संभावित अल्प-विकसित श्रम-शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान की जाएं। इसी कारण प्रोफेसर हिगिन्स ने प्रौद्योगिकी द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो *“दो क्षेत्रों में साधन-सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका परिणाम यह हुआ है कि उत्पादक रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।”* यह बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी द्वैतीय सिद्धान्त है क्योंकि यह सिद्धान्त विकास के आदर्श पर द्वैतीय समाज के प्रभावों का विश्लेषण करता है।

## 12.4 तकनीकी द्वैतवाद (Technological Dualism)

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में प्रोफेसर हिगिन्स ने तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी माना जाता

### 12.4.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय

तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा परंपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त ऐकॉस (R.S. Eckaus) द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है और उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न सीमित साधन-सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है।

वास्तव में, अल्पविकसित देशों की एक विशिष्टता साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन है। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न होता है कि एकल साधन विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है या इसलिए कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। डॉ. ऐकॉस के अनुसार, ऐसे असंतुलन से अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्प-बेरोजगारी होती है। प्रथम, कीमत प्रणाली में अपूर्णताओं या कु-कार्यकरण से। दूसरे, वर्तमान औद्योगिकी या माँग की संरचना में बाधाओं से, जो अति जनसंख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरिक्त श्रम का कारण बनती है। अतः एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरिक्त श्रम से होता है, जो साधनों के कुवितरण, माँग की संरचना और प्रौद्योगिकीय रूकावटों से उत्पन्न होता है।

बैजामिन हिगिन्स ने अपने सिद्धान्त का निर्माण दो वस्तुओं, उत्पादन के दो साधनों और दो क्षेत्रों के आधार पर उनके साधन सम्पन्नता तथा उत्पादन-फलनों से किया है। इन दो क्षेत्रों में से एक औद्योगिक क्षेत्र बागानों, खानों, तेल-क्षेत्रों, रिफाइनरियों या बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रवृत्त रहता है यह पूँजी-गहन होता है और

तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में मिलाया जाता है। दूसरा, ग्रामीण क्षेत्र खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, दस्तकारी या बहुत छोटे उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के तकनीकी गुणांक परिवर्ती होते हैं ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम तथा पूँजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शामिल है) के वैकल्पिक संयोगों से एक ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलों के दिए गए होने पर प्रोफेसर हिगिन्स ने उस प्रक्रिया का विश्लेषण किया है जिसके परिणामस्वरूप तकनीकी द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दो क्षेत्रों में से, औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूँजी की सहायता से विकास तथा विस्तार करता है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पूँजी-संचय की दर से बहुत अधिक जनसंख्या की वृद्धि हो जाती है क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी-गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणांकों का प्रयोग करता है, इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर सकता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगीकरण **“उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष कमी ला दे।”** इस प्रकार, अतिरिक्त श्रम के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार ढूँढ़े।

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले, ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती है और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को काशत में लाकर अतिरिक्त श्रम शक्ति को खपा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी (सुधारी हुई भूमि) के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुणांक उपलब्ध है, इसलिए इस क्षेत्र में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ, कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती स्थानापन्न कर दी गई है। अन्ततः बहुत अधिक श्रम-गहन तकनीकों द्वारा समस्त उपलब्ध भूमि काशत हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस प्रकार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर, अदृश्य बेरोजगारी प्रकट होने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएं अथवा श्रम-बचत तकनीकें अपनाएं। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें, श्रम-घण्टा उत्पादकता तथा सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में प्रौद्योगिकीय प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर हिगिन्स का मत है कि पिछली दो शताब्दियों में देहाती क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नहीं के बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है, इससे अदृश्य बेरोजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरकार की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊंची दरों ने इस स्थिति को ओर भी अधिक गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊंची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम-बचत तकनीकें अपनाएं, जिसका परिणाम यह होता है कि अतिरिक्त श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीय द्वैतवाद की प्रवृत्ति

बनाए रखते हैं।

### 12.4.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर हिगिन्स ने आधुनिक तथा परम्परागत क्षेत्रों का ऐतिहासिक विकास- क्रम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण पहले क्षेत्र में धीरे-धीरे बेरोजगारी बढ़ती जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे-धीरे कैसे बढ़ती जाती है।

### 12.4.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष (Defects of Technological Dualism)

तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह कुछ दोषों से परिपूर्ण है इसके प्रमुख दोष निम्नवत् हैं –

1. **औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर नहीं होते हैं। (Technological Coefficients are not fixed in industrial sector)** - बिना किसी प्रमाण के यह मानना सही नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर पाए जाते हैं क्योंकि जहां ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्ती तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहां यह सन्देहास्पद है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर गुणांकों से होता रहा है।
2. **श्रम खपाने वाली तकनीकों की अवहेलना (Neglect of the use of labour absorbing techniques)** - हिगिन्स का यह कथन, कि औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए अत्यन्त पूँजी गहन प्रक्रियाएं आयात की जाती हैं, श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। सब आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होती। उदाहरणार्थ, जापान का कृषि विकास पूँजी-गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह अच्छे बीजों, सुधरी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of institutional factors)** - हिगिन्स ने ऐसे अनेक संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपेक्षा की है जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।
4. **साधन कीमतें साधन सम्पन्नताओं पर निर्भर नहीं करती (Factor prices do not depend upon factor endowments)** - यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन सम्पन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्वपूर्ण रूप से सम्बद्ध है। परन्तु साधन कीमतें केवल साधन सम्पन्नताओं पर ही निर्भर नहीं करतीं।
5. **अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया (Nature and size of disguised unemployment not clarified)** - हिगिन्स ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी तथा औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-पूर्ति की प्रकृति को स्पष्ट नहीं किया है और न ही उन्होंने तकनीकी द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की चर्चा की है।

## 12.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. प्रोफेसर जे. एच. बुके किस देश से सम्बन्धित हैं ?
2. Economics and Economic Policy of Dual Societies 7Th ch gerich foot forget?
3. सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया ?
4. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
5. प्रो. बुके के अनुसार प्रत्येक समाज में कितनी विशेषताएं पायी जाती हैं ?
6. सामाजिक द्वैतवाद से क्या अभिप्राय है ?
7. तकनीकी द्वैतवाद से क्या आशय है ?
8. पूर्वीय क्षेत्र की क्या प्रमुख विशेषताएं हैं ?
9. स्वदेशी उद्योग की विशेषताएं बताइये।

### बहुविकल्पीय प्रश्न

10. सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?
  - अ) गुन्नार मिर्डल
  - ब) एच०मिन्ट
  - स) जे०एच०बूके
  - द) इनमें से कोई नहीं
11. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
  - अ) बैन्जामिन हिगिन्स
  - ब) एच०मिन्ट
  - स) जे०एच०बूके
  - द) इनमें से कोई नहीं

### सत्य / असत्य लिखिए:

12. बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं।
13. तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा परांपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलों का प्रयोग होता है।
14. जे. एच. बुके अमेरिकन अर्थशास्त्री हैं ?

## 12.6 सारांश

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान है। द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या वर्तमान एवं सम्भावित अल्पविकसित श्रम शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान करने की है। दो परस्पर विरोधी प्रणालियों की आर्थिक अन्तः क्रियाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण करने हेतु **प्रो. जे. एच. बूके** ने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर लागू होता है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक-साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु-संख्यक समाज होता है। बूके ने 'द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग 'ऐसे समाजों' के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम-विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक-दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। प्रथम प्रणाली अर्थात् उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर उंचा होता है। दूसरी स्वदेशीय पर्व पंजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली होती है जिसमें तकनीकी आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे 'सामाजिक द्वैतवाद' कहा है। द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं हैं जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं।

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में **बैन्जामिन हिगिन्स** ने तकनीकी अथवा **प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद** के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा परंपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का यह सिद्धान्त **आर. एस. रेकॉस** द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है एवं उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से सम्बन्ध रखता है जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न साधन सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पायी जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे-धीरे कैसे बढ़ती जाती है। तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह अनेक दोषों से परिपूर्ण है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बूके के सामाजिक द्वैतवाद एवं हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त का आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों के अपने-अपने गुण एवं दोष हैं तथापि द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। तकनीकी द्वैतवाद का विचार सामाजिक द्वैतवाद की तुलना में कुछ अधिक आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें अदृश्य या छिपी बेरोजगारी की समस्या को समझाने का प्रयास किया गया है।

## 12.7 शब्दावली

- **द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy)** - दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र (Sectors) होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन- निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र । ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **पूँजीवादी क्षेत्र (Capitalist Sector)** - पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।
- **जीवन निर्वाह क्षेत्र (Subsistence Sector)** - यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।
- **काली मुद्रा (Black Money)** - ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण (Capital Formation)** - कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने हेतु लगाया जाता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour)** - श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।
- **बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy)** - एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।
- **अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment)**- यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात् श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।
- **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity)** - जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात् यह किसी साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।
- **पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scales)** - जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि

या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

- **बाह्य घटक (Exogenous Factor)** - एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

---

## 12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

1. हॉलैण्ड, 2. जे. एच. बुके, 3. जे. एच. बुके, 4. बैन्जामिन हिगिन्स, 5. तीन 9. स) जे. एच. बूके, 11. अ) बैन्जामिन हिगिन्स, 12. सत्य, 13. सत्य, 14. असत्य

---

## 12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

---

- झिंगन, एम. एल. : “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2003
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा, वी. सी. : “आर्थिक संवृद्धि और विकास”, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2007
- Agarwal, R. C. : “Economics of Development and Planning”, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja, M.L. & Myer R.M.: “Economics of Development and Planning” Vishal Publishing Co., Delhi, 2010

---

## 12.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

- **Bocke , J.H.** : “Economics and Economic Policy of Dual Societies” 1953, “Three Forms of Disintegration in Dual Societies”, Indonesia, April, 1954 and “Western Influence on the growth of Eastern Population”, Economics Internazionale , May, 1954.
- **Higgins Benjamin** : “The Dualistic Theory of Underdeveloped Areas”, Economic Development and Cultural Change , January, 1956.
- **Higgins Benjamin** : “Economic Development, Principles, Practice and Policies”
- **Eskaus R.S.** : “The Factor Proportions Problems in Under developed Areas”, in Aggrawal and Singh
- **Meier, G.M.:** “Leading Issues in Economic Development” ,Oxford University Press, Delhi ,1989
- **Lewis, W. Arthur** : “Theory of Economic Growth”
- **Meier and Baldwin** : “Economic Development”

- **Kindleberger C. P. :** “Economic Development”
- **Misra, S. K. & Puri, V. K. :** “Economic Development and Planning”

### 12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. “पूर्वी तथा पश्चिमी अर्थव्यवस्था में इन भेदों के कारण पाश्चात्य आर्थिक सिद्धान्त अल्पविकसित क्षेत्रों में पूर्णतया अप्रयोज्य हैं।” (बूके) व्याख्या कीजिए।
2. तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त से क्यों कर श्रेष्ठ माना जाता है?
3. प्रो. बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. तकनीकी द्वैतवाद क्या है? यह सामाजिक द्वैतवाद से किस प्रकार भिन्न है? व्याख्या कीजिए।
5. सामाजिक द्वैतवाद क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए तथा इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। इसकी क्या सीमाएं हैं?

---

## इकाई 13 - आर्थर लेविस का सिद्धान्त (Theory of Arthur Lewis)

---

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त
  - 13.3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा
  - 13.3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व
  - 13.3.3 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की श्रेष्ठता
  - 13.3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनाएं
- 13.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 13.5 सारांश
- 13.6 शब्दावली
- 13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ पाठ्य सामग्री
- 13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 13.1 प्रस्तावना

अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करने हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित माडलों में आर्थर लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त का विशेष स्थान है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति लेविस ने भी यह माना है कि अल्पविकसित देशों में जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध होती है। अतः श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

## 13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि

- ✓ अल्पविकसित देशों के विकास में श्रम की असीमित पूर्ति का क्या योगदान है?
- ✓ लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त क्या है?
- ✓ लेविस का विकास मॉडल किन तत्वों पर आधारित है?
- ✓ लेविस का मॉडल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मॉडल से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
- ✓ लेविस के विकास मॉडल की किन आधारों पर आलोचना की गई है?

## 13.3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

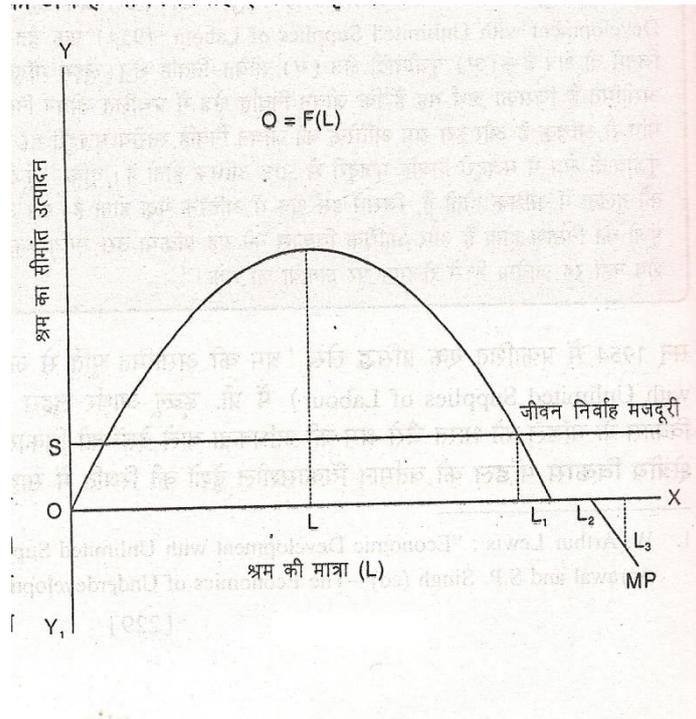
### 13.3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा

सन् 1954 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख “*श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour)*” प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (W. Arthur Lewis) ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डों के दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया। लेविस मॉडल को **दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model)** भी कहा जाता है क्योंकि उसका मॉडल द्वैत-अर्थव्यवस्था-(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा (ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है।

1. **दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था (Dual Economy)** - लेविस अपने मॉडल की व्याख्या एक 'दोहरी-अर्थव्यवस्था' (द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) की मान्यता से आरम्भ करते हैं। इस दोहरी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र (Sectors) हैं: (1) कृषि क्षेत्र अथवा जीवन निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र, तथा (2) उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। इनमें पूँजीवादी क्षेत्र वह है जिसमें ‘**पुनरूत्पादनशील पूँजी (Reproducible Capital)**’ का प्रयोग किया जाता है। पूँजी के प्रयोग का नियंत्रण पूँजीपति करता है। यह श्रम की सेवाओं को किराये पर लेता है। लेविस के अनुसार पूँजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत ‘**प्लांटेशन तथा खनन**’ भी आ जाते हैं। यहां पूँजीपति,

श्रमिकों को अपने लाभ के लिए किराये पर लेता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र (अथवा पोषण क्षेत्र अथवा कृषि क्षेत्र) वह क्षेत्र है जिसमें पुनरुत्पादनशील पूँजी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसे **घरेलू परम्परागत क्षेत्र (Indigenous Traditional Sector)** भी कहा जा सकता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में **‘प्रति व्यक्ति उत्पादन’** (GNP Per Capita) अथवा प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income) पूँजीवादी क्षेत्र से काफी कम होती है।

2. **असीमित श्रम पूर्ति (Unlimited Supply of Labour)** - लेविस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह के क्षेत्र में **‘श्रम की असीमित पूर्ति’** है। इस असीमित श्रम अथवा श्रमाधिक्य (Surplus Labour) को जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर किसी दूसरी जगह रोजगार में लिया जा सकता है। यहां श्रमिकों की असीमित पूर्ति का अर्थ है जीवन निर्वाह (अथवा कृषि) क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता जीवन निर्वाह मजदूरी से काफी नीचे है जिसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को निकाल लेने पर श्रम के औसत उत्पादन में कमी नहीं आयेगी। लेविस की असीमित श्रम पूर्ति की आवश्यकता को रेखाचित्र 13.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में भूमि की स्थिर मात्रा पर श्रम की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयां लगायी गयी है।



चित्र संख्या 13.1

OL श्रम के बाद श्रम की सीमांत उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा  $OL_1$  होती है तो इसका मूल्य जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी के बराबर हो जाता है।  $L_1$   $L_2$  तक श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है और  $L_2$  के बाद ऋणात्मक हो जाती है। इस प्रकार  $OL_1$  के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेंगे वे सभी अतिरिक्त श्रमिक होंगे। प्रो. लेविस के अनुसार कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रमिकों (रेखाचित्र 13.1 में  $OL_1$  के बाद श्रमिकों) की सेवाओं को उद्योगपति जीवन निर्वाह मजदूरी के बराबर अथवा इससे कुछ अधिक देकर किराये पर

प्राप्त कर सकता है। उद्योगपति (अथवा पूँजीपति) दी हुई मजदूरी पर जितने श्रमिक चाहे उतने क्रय कर सकता है। इस तरह, औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होगी।

### 13.3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व

लेविस मॉडल का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. **केन्द्रीय समस्या: श्रमशक्ति को एकत्र करना (Central Problem: Collection of Labour Force)** - लेविस ने अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ किया है कि अल्प-विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। श्रम की यह असीमित पूर्ति अर्थव्यवस्था के निर्वाह क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों, कृषि पर बढ़ती हुई निर्भरता एवं अदृश्य बेरोजगारी के रूप में देखी जा सकती है।

श्रम-शक्ति को एकत्र करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं:

(अ) सर्वप्रथम अर्द्धविकसित देशों में काम न करने वाली महिलाओं को श्रमिकों की पूर्ति में सम्मिलित करना होगा। बहुत-सी महिलाएं गृह-कार्यों में लगी रहती हैं, परंतु उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

(ब) हमें उन व्यक्तियों को भी रोजगार में लगाना होगा, जो अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं या अर्द्ध-बेरोजगारी से पीड़ित हैं तथा जो छोटे व्यापारियों, घरेलू और वाणिज्यिक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(स) इसी श्रम-शक्ति में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से फलित अतिरिक्त, श्रम शक्ति को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

परंतु उपर्युक्त सभी व्यक्ति अकुशल श्रम की श्रेणी में आते हैं, जबकि आर्थिक विकास और पूँजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस संबंध में लेविस का कथन है कि कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध ही होता है, जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि की सहायता से दूर किया जा सकता है।

2. **समस्या का समाधान : श्रमशक्ति का उचित उपयोग (Solution of Problem : Proper Utilization of Labour Force)** - अतः अर्द्धविकसित देशों की प्रमुख समस्या इस अतिरिक्त श्रम शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है। प्रो. लेविस ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा है- पूँजीवादी क्षेत्र और जीवन निर्वाह क्षेत्र। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

अतः लेविस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन-निर्वाह-क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह-क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त

श्रम-शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

3. **पूँजीवादी अतिरेक (Capitalist Surplus)** - (पूँजीवादी-मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी के अन्तर के रूप में) अब प्रश्न यह उठता है कि **जीवन निर्वाह मजदूरी दर** (जिस पर **‘पूँजीवादी-क्षेत्र’** में अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है) का निर्धारण किस प्रकार होता है? संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र में प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। सामान्यतः मजदूरी का यह स्तर निर्वाह क्षेत्र में श्रमिक की औसत उपज से कम नहीं हो सकता लेकिन कुछ परिस्थितियों में (जब किसान को लगान देना हो या खाने पर अधिक व्यय होता हो या उनकी दृष्टि में कर के प्रति अधिक मोह हो) मजदूरी दर श्रम की औसत उत्पादन से भी अधिक हो सकती है। **प्रो. लेविस** के अनुसार **‘जीवन निर्वाह’** क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है, किन्तु व्यवहार में मजदूरियों का इससे अधिक होना आवश्यक है और पूँजीवादी मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी में सामान्यतः 30 प्रतिशत या उससे अधिक का अन्तर होता है।

4. पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर के ऊंचे होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

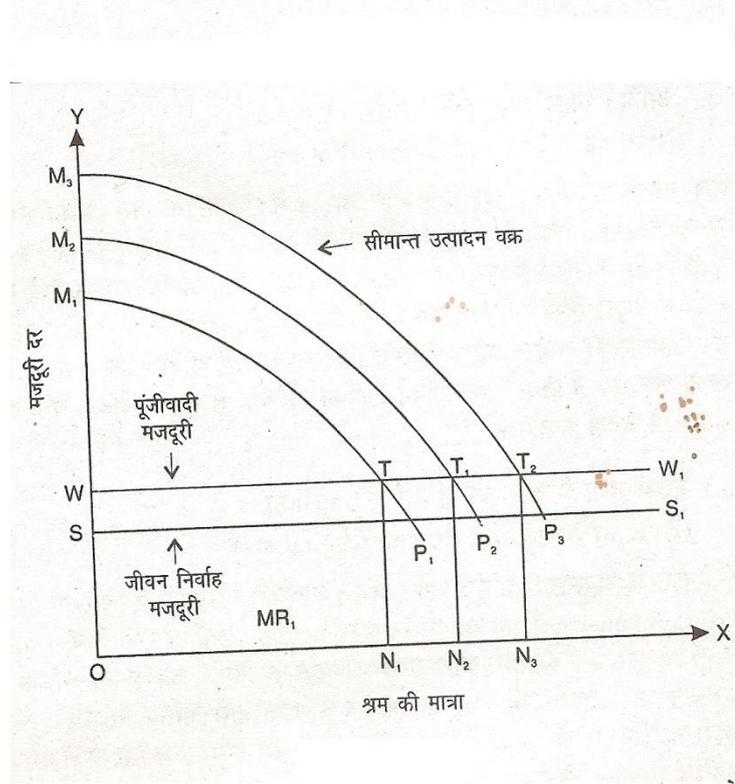
- क. निर्वाह क्षेत्र या पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों के द्वारा पूँजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी का मांगा जाना।
- ख. निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हस्तांतरित करने पर यदि उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती है तो उस क्षेत्र में बचे कार्यरत श्रमिकों की औसत वास्तविक आय में वृद्धि के कारण पूँजीवादी क्षेत्र में हस्तांतरित होने वाले श्रमिक वर्ग द्वारा भी अधिक मजदूरी पर जोर दिया जाना।
- ग. जीवन-स्तर की बढ़ती हुई लागतों और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सेवायोजकों द्वारा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर देना।
- घ. राज्य द्वारा श्रमसंघों को प्रोत्साहन देना, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग की सौदा करने की शक्ति में वृद्धि हो जाना।

इस प्रकार पूँजीवादी मजदूरी की तुलना में पूँजीवादी क्षेत्र की ऊंची सीमांत उत्पादकता के परिणाम स्वरूप है पूँजीवादी अतिरेक उत्पन्न होता है।

5. **पूँजी निर्माण पूँजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है (Capital Formation depends upon Capitalists Surplus)** - पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमांत उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूँजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक उदय होती है। इस अतिरेक को नयी परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूँजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में जैसे-जैसे रोजगार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे पूँजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है और उसके साथ ही साथ पूँजी निर्माण अर्थात् आर्थिक विकास का चक्र शुरू हो जाता है। यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि कुल अतिरेक

श्रम को रोजगार प्राप्त नहीं हो जाता। पूँजी श्रम अनुपात नहीं बढ़ जाता और श्रम की पूर्ति लोचरहित नहीं बन जाती। इस प्रकार लेविस के अनुसार आर्थिक विकास का मूल्य पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक पूँजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने पर उसके पुनर्निवेश में निहित है। इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 13.2 में, OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या एवं OY अक्ष पर मजदूरी की दर व सीमांत उत्पादकता को दर्शाया गया है।



चित्र 13.2

कृषि क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी पाये जाने के कारण पूँजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है। अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम पूर्ति वक्र  $WW_1$  है जो Y अक्ष के समानांतर एक सीधी रेखा के रूप में दर्शाया गया है। मजदूरी की प्रचलित दर (पूँजीवादी मजदूरी) OW कृषि में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी OS से थोड़ी अधिक है।

उद्योगों में पूँजीपति लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं और इस प्रकार वे दी हुई मजदूरी OW को श्रम की सीमांत उत्पादकता के बराबर करेंगे। जब मजदूरी की दर OW है तो सीमांत उत्पादकता वक्र  $M_1P_1$  उसे T बिन्दु पर काटती है जो यह प्रदर्शित करती है कि इस बिन्दु पर मजदूरों की सीमांत उत्पादकता मजदूरी दर के बराबर है। अतः जब मजदूरी की दर OW है तो पूँजीपति  $ON_1$  श्रमिकों की मांग करेंगे और रोजगार उपलब्ध करायेंगे। श्रमिकों की  $ON_1$  मात्रा से कुल औद्योगिक उत्पादन  $OM_1TN_1$  के बराबर है तथा मजदूरी का भुगतान  $OWTN_1$  के बराबर होगा। अतः  $WM_1T$  क्षेत्र के बराबर पूँजीपतियों को लाभ प्राप्त होगा। इन लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। अधिक पूँजी के उपलब्ध होने पर श्रम का सीमांत उत्पादन (MP) वक्र दायीं ओर विवर्तित होकर  $M_2P_2$  हो

जायेगा परन्तु मजदूरी की दर पूर्ववत् OW रहने पर श्रमिकों की प्रयुक्त मात्रा बढ़कर  $ON_2$  हो जायेगी और पूँजीपतियों का लाभ बढ़कर  $WM_2T_1$  के बराबर हो जायेगा। इन लाभों को पूँजीपति अधिक पूँजी निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे। इस प्रकार आगे भी लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। डच वक्र दायीं ओर विवर्तित होता जायेगा जिससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रम-अतिरेक (Labour Supplus) समाप्त नहीं हो जाता। श्रम-अतिरेक की समाप्ति के पश्चात मजदूरी दर बढ़ने लगेगी जिससे उद्योगों में अर्जित लाभ घटने लगेगे और लाभ की दर कम होती जायेगी। फलतः विकास की गति घट जायेगी परन्तु लेविस के अनुसार तब तक विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी समाप्त हो चुकी होगी।

6. **अर्जित लाभ एवं पूँजी निर्माण(Earned Profit and capital Formation)** - इस प्रकार प्रो. लेविस ने अपने विकास माडल में पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से ही पूँजी निर्माण की सम्भावना को स्पष्ट किया है। लेविस के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ (Earned Profit) से पूँजी निर्माण किया जायेगा और पूँजी निर्माण आर्थिक विकास को बढ़ावा देगा। इस तरह अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। प्रो. लेविस के अनुसार, *“आर्थिक विकास के सिद्धान्त में केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसके द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत या 5 प्रतिशत बचत तथा विनियोग करने वाला एक समाज किस प्रकार अपने आपको 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक ऐच्छिक बचत करने वाले समाज में बदल सकता है।”*

7. **राज्य तथा निजी पूँजीपतियों की भूमिका(Role of State and Private Capitalists)** - प्रो. लेविस के अनुसार राज्य पूँजीपतियों (अर्थात् सार्वजनिक उपक्रम एवं सरकार) और देशीय निजी पूँजीपतियों (Indigenous Private Capitalists) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूँजी निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है। यद्यपि इनमें राज्य पूँजीपति के निर्माण की क्षमता अधिक होती है क्योंकि वह समाज से अतिरिक्त कराधान और/अथवा अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के द्वारा अधिक राजस्व (Revenue) जुटा पाने में सफल रहता है। लेविस के अनुसार जब पूँजी के उत्पादक सम्बन्धी उपयोग के अवसर तेजी से बढ़ते हैं तो पूँजी अतिरेक, पूँजीनिर्माण व आर्थिक विकास भी क्रमशः तेजी से बढ़ते हैं। प्रो. लेविस के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में पूँजी की मात्रा कम होती है क्योंकि

क. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि पूँजीवादी लाभ का राष्ट्रीय आय में अनुपात कम होता है। उदाहरण के लिए वेतन व मजदूरी प्राप्त करने वाला वर्ग मुश्किल से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत या 4 प्रतिशत भाग ही बचा पाता है।

ख. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि बड़े व्यापारी, राजघराने, भूपति आदि उत्पादन निवेश करने के बजाय अनावश्यक उपभोग में अधिक रूचि रखते हैं।

ग. अर्द्धविकसित देश में 'उत्पादन निवेश' के कम होने में निकासी (Withdrawals) बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहार में इसे काली मुद्रा (Black Money) समानांतर अर्थव्यवस्था (Parallel

Economy) आर्थिक भ्रष्टाचार (Economic Corruption) आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थशास्त्री इसे पूँजी रिसाव (Capital Leakage) कहते हैं। यह पूँजी उत्पादन कार्य में न लग कर विलासिता व शान-ओ-शौकत जैसे उपभोग कार्य में लगी रहती है।

अतः अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि (i) जो अधिक बचत कर सकते हैं उनके द्वारा अर्थव्यवस्था में 'बचत क्षमता' को बढ़ाया जाये, तथा (ii) सम्पूर्ण बचत को उत्पादन कार्य में विनियोग किया जाये। बचत का कोई भी अंश पूँजी रिसाव के रूप में उपभोग में न लगने दिया जाये।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य पूँजीपति की पूँजी संचय की क्षमता निजी पूँजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूँजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरिक्त कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार लेविस का मत है कि जब पूँजी के उत्पादकीय उपयोग के अवसर तीव्र गति से बढ़ते हैं तो अतिरिक्त भी तेजी से बढ़ता है और उसके साथ-साथ पूँजीपति वर्ग का भी विकास होने लगता है।

8. **बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation through bank Credit)** - लेविस का विचार है कि यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में पूँजीवादी क्षेत्र में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा पूँजी-निर्माण हो सकता है, किन्तु साख-सृजन (मुद्रास्फीति) द्वारा भी पूँजी निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन तथा रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है। लेविस का मत है कि यद्यपि इससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म मिल सकता है, परन्तु दीर्घकाल में इससे कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि पूँजी निर्माण के लिए मुद्रा-प्रसार स्वयं विनाशक या समाप्त हो जाने वाला (Self Liquidating) होता है। इसके उन्होंने निम्न कारण बताये: (अ) प्रारंभिक अवस्था में आय तो बढ़ेगी किन्तु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ होने से मूल्य गिरने प्रारंभ हो जायेंगे, (ब) राज्य की करारोपण से आय बढ़ जायेगी और सरकार को बाद में हीनार्थ प्रबंधन नहीं करना पड़ेगा।

9. **विकास प्रक्रिया का अंत (End of Growth Process)** - इस प्रकार, ज्यों-ज्यों पूँजी निर्माण होता जाता है, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुनः पूँजी निर्माणको बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहता है। परन्तु विकास की यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती है। लेविस के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया निम्न परिस्थितियों में रूक जाती है :

क. जब पूँजी निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम नहीं बचते।

ख. जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्रगति से हो जिससे 'पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र' में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमांत उत्पादकता बढ़ जाये जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूँजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊंचा हो जाये।

ग. जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नयी प्रविधि अपनायी जाये जिससे पूँजी क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी बढ़ जाये।

- घ. जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र की तुलना में तेजी से विस्तार होने पर खाद्यान्नों आदि की कीमतें बढ़ जाने के कारण व्यापार की शर्तें पूँजीवादी क्षेत्र में प्रतिकूल हो जायें और उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़े।
- ड. निर्वाह क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता इतनी बढ़ जाय (क्योंकि इस क्षेत्र की उपज के हिस्सेदार कम हो चुके हैं) कि पूँजीवादी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ानी पड़ जाय और फलस्वरूप लाभकी मात्रा कम हो जाये।
- च. इस क्षेत्र में श्रमिक पूँजीवादी जीवन व्यतीत करने का ढंग अपना ले, तो इन सभी परिस्थितियों में पूँजी अतिरिक्त कम हो जायेगा जिसके फलस्वरूप पूँजी निर्माण व आर्थिक विकास का कार्य रूक जायेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों में पूँजीवादी क्षेत्र का आधिक्य, जो अर्द्धविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूँजी निर्माण की दर कम हो जाती है। लेविस के शब्दों में, **“विकास की यह प्रक्रिया उस समय समाप्त हो जायेगी और यह नीति उस समय प्रभावपूर्ण नहीं होगी जबकि पूँजी निर्माण की वृद्धि, मात्रा व दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर हो जायेगी। अगर मजदूरी बढ़ने दी गयी तो यह नीति और पहले ही प्रभावहीन हो जायेगी।”**

प्रो. लेविस का मत है कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण पूँजी निर्माण की दर कम हो और विकास की प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो निम्न दो तरीकों से पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बनाये रखा जा सकता है:

- क. बड़े पैमाने पर श्रमिकों का आवास (Mass Immigration of Labour) किया जाय। परन्तु ऐसी स्थिति में सभी प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी का स्तर नीचे गिरता है। अतः श्रम संघों द्वारा इसका कड़ा विरोध किया जाता है।
- ख. दूसरा उपाय यह है कि ऐसे देशों को पूँजी का निर्यात किया जाये जहां-निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूँजी-निर्यात करने वाले देश में श्रम की मांग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है।

### 13.3.3 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत की श्रेष्ठता

लेविस के अनुसार उनका मॉडल प्रतिष्ठित मॉडल से श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में वे निम्नलिखित तर्क देते हैं:

- क. उनका मॉडल प्रयोग करने पर उपभोग को कम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (जैसा कि नवप्रतिष्ठित मॉडलों में किया गया है) और न ही उपभोग को बढ़ाने की आवश्यकता है (जैसा कि कीन्स का मत है) इस प्रकार लेविस बलात् बचतों के स्थान पर बलात् पुनः वितरण के विकल्प को स्वीकार करते हैं।
- ख. लेविस के मॉडल में मुद्रास्फीति स्वयं समाप्त होने वाली है क्योंकि वह हीनार्थ प्रबन्धन रहित और उत्पादन प्रेरित है।
- ग. लेविस के मॉडल में लाभ-वित्त-व्यवस्था और साख-वित्त-व्यवस्था दोनों ही विकास प्रेरक हैं।

### 13.3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत की आलोचनाएं

प्रो. लेविस के विकास मॉडल की निम्न आधारों पर आलोचनाएं की जाती हैं:

1. **पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का स्थानान्तरण सरल नहीं है (Transfer of surplus labour to capitalist area is not easy):** लेविस के मॉडल को कार्यान्वित करने में जो महत्वपूर्ण कठिनाई आती है वह यह है कि निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-शक्ति का स्थानान्तरण सरल नहीं है, क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में जाति व धर्म बन्धनों के कारण एक ओर तो व्यावसायिक गतिशीलता कम रहती है और दूसरी ओर भाषा, आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान व वातावरण से प्रेम आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।
2. **जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी सम्भव नहीं है (Wage equal to subsistence level is not possible):** आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आंदोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया काल में श्रमिक-जीवन निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा। वह भी बढ़ती हुई महंगाई के तदनु रूप अपनी मजदूरी बढ़ाने की मांग करेगा और बढ़ते हुए लाभ में अपना हिस्सा मांगेगा। इन परिस्थितियों में 'जीवन निर्वाह' के बराबर मजदूरी देते रहकर पूँजी निर्माण करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।
3. **उचित प्रशिक्षण (Proper training):** प्रो. लेविस के सिद्धांत का आधार यह है कि अर्द्धविकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में अकुशल श्रम-शक्ति होती है और कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध उपस्थित करता है, जिसे श्रमिकों के प्रशिक्षण आदि के द्वारा किया जा सकता है। वास्तव में पर्याप्त मात्रा में श्रम-शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि में काफी समय लगता है। इसलिए कुशल और तकनीकी श्रमिकों का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित करता है।
4. **साहसी वर्ग का अभाव (Lack of entrepreneur class):** इस सिद्धांत में यह मान लिया गया है कि अल्प-विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में पूँजीपति वर्ग और साहसी वर्ग मौजूद रहते हैं। परन्तु वास्तव में अधिकांश अर्द्धविकसित देशों में इनका सर्वथा अभाव रहता है और जब ये साहसी नहीं होंगे तो अतिरिक्त श्रम-शक्ति का उपयोग करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।
5. **विनियोग गुणक क्रियाशील न होना (Not functioning of multiplier):** लेविस ने अपने मॉडल में ऐसे पूँजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुनः विनियोजित करके पूँजी का संचय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां विनियोग गुणक क्रियाशील रहता है, किन्तु वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।
6. **बचतकर्ताओं की गलत व्याख्या (Wrong interpretation of savers):** लेविस की यह धारणा कि बचत केवल अधिक आय वाले लोग (पूँजीवादी क्षेत्र के लोग) ही करते हैं, गलत है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं। योजना आयोग के एक अध्ययन के अनुसार भारत में 53 प्रतिशत भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। अतः कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।
7. **विषमताओं को बढ़ावा (Encouragement to disparity):** प्रो. कुजनेट्स का विचार है कि

लेविस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्धविकसित देशों में आय का वितरण और भी असमान हो जायेगा। मायर एवं बाल्डविन का भी कथन है कि आय की असमानता, उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाती है। अतः आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

8. **मॉडल की अव्यावहारिकता (Impracticability of model):** प्रो. ए.एन. खुसरो का विचार है कि लेविस ने अदृश्य बेरोगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है वह पूर्णतया अव्यावहारिक है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे रिसाव हैं जो सदैव रिसते रहते हैं, जैसे-पूर्ति का मूल्य बेलोचदार होना, कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टॉक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना इत्यादि।
9. **पूँजीवादी स्फीतिकारी प्रभाव की अस्थायी प्रकृति (Temporary nature of capitalist inflationary effect):** लेविस का यह तर्क कि पूँजीवादी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि अस्थायी होती है और इसका अन्त स्वजनित घटकों से स्वतः होता है, गलत है।
10. **श्रम की सीमांत उत्पादकता का शून्य न होना (Marginal productivity of labour not zero):** यह कहना ठीक नहीं है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य अथवा नहीं के बराबर होती है। यदि ऐसा होता तो जीवन निर्वाह मजदूरी भी शून्य होनी चाहिए थी, किन्तु ऐसा नहीं है इसलिए शून्य सीमांत उत्पादकता की मान्यता अवास्तविक है।
11. **सीमित क्षेत्र (Limited scope):** इस सिद्धांत का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों में असीमित मात्रा में श्रम की पूर्ति पर आधारित है। जबकि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों में ऐसी परिस्थितियां नहीं पायी जाती हैं।
12. **अकुशल कर प्रशासन (Inefficient tax administration):** लेविस का यह कथन कि कराधान बढ़ती हुई आय को इकट्ठा करेगा, माना नहीं जा सकता क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं होता कि वह पूँजी-संचय के लिए पर्याप्त मात्रा में कर इकट्ठा कर सके।

### 13.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए।
2. द्वैत अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं?
3. पूँजीवादी क्षेत्र से क्या आशय है?
4. जीवन निर्वाह क्षेत्र से क्या आशय है?
5. पूँजी रिसाव किसे कहते हैं?

#### बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो.....का प्रयोग नहीं करता है।
2. लेविस का 'श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour)' नामक प्रसिद्ध लेख कब प्रकाशित हुआ?
3. लेविस की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइए।

4. आर्थर लेविस को अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार किस वर्ष में दिया गया।
5. लेविस ने अर्थव्यवस्था को कितने क्षेत्रों में बांटा है?

### 13.5 सारांश

प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (W. Arthur Lewis) का श्रम की असीमित पूर्ति मॉडल बहुत ही स्पष्ट एवं सरल शब्दों में अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है। लेविस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डों के दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया।

लेविस मॉडल को दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि यह मॉडल द्वैत-अर्थव्यवस्था-(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा (ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है। अपने दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल द्वारा लेविस ने यह सिद्ध किया है कि अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक होती है। श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

अतः लेविस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह-क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी श्रम की असीमित पूर्ति वाले अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लेविस के मॉडल की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

### 13.6 शब्दावली

- **द्वैत अर्थव्यवस्था** - दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन- निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **पूँजीवादी क्षेत्र** - पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।
- **जीवन-निर्वाह क्षेत्र**- यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं

करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

- **काली मुद्रा** - ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण**- कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने हेतु लगाया जाता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता** - श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि। प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

### 13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. पुनरुत्पादकीय पूँजी, 2. सन् 1954 में, 3. Theory of Economic Growth, 4. 1971, 5. दो

### 13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम. एल. : “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2003
- सिंह, एस0पी0 : “आर्थिक विकास एवं नियोजन”, एस०चन्द एण्ड कं० लि., नई दिल्ली, 2010
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा, वी. सी. : “आर्थिक संवृद्धि और विकास”, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2007
- Agarwal ,R. C. : “Economics of Development and Planning” , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: “Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

### 13.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Lewis, W. Arthur : “Economic Development with Unlimited Supplies of Labour” (1954) Reprinted in A.N. Agrawal and S.P.Singh (ed.) -“The Economics of Underdevelopment” (1969)
- Misra, S.K.& Puri, V.K. : “Economic Development and Planning”

---

### 13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. "लेविस माडल विकास सिद्धान्तों के ऐसे परिवार का प्रतिनिधि है जो असीमित श्रम शक्ति की मान्यता पर आधारित है।" व्याख्या कीजिए।
3. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए। निम्न आय वाले देशों में श्रम अतिरेक को किस प्रकार पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है ?
4. आर्थर लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की विवेचना अल्पविकसित देशों के संदर्भ में कीजिए।
5. लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी प्रमुख आलोचनाओं का वर्णन कीजिए।
6. असीमित श्रम पूर्ति की परिस्थिति में आर्थिक विकास की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
7. आर्थर लेविस द्वारा प्रस्तुत 'असीमित श्रम पूर्ति से पूँजी निर्माण की व्याख्या के संदर्भ में पूँजीवादी क्षेत्र एवं निर्वाहवादी क्षेत्र में अन्तर कीजिए। यह कहाँ तक एक व्यवहार्य नीति है?
8. अतिरिक्त श्रम पूर्ति सिद्धान्त को समझाइये और बताइये कि इसे किस प्रकार अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है?

---

## इकाई 14 - फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप (Theory of Fei-Ranis)

---

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप
  - 14.3.1 सिद्धांत की मान्यताएं
  - 14.3.2 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत
  - 14.3.3 रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण
  - 14.3.4 संतुलित विकास
  - 14.3.5 सिद्धांत के गुण
  - 14.3.6 सिद्धांत की आलोचनाएं
- 14.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 14.5 सारांश
- 14.6 शब्दावली
- 14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 14.1 प्रस्तावना

लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की कमियों को दूर करते हुए फाई एवं रेनिस ने एक नया विकास प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है और गतिहीनता की स्थिति से आत्मपरक विकास की अवस्था में जाने की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है। फाई एवं रेनिस ने अपने विकास प्रारूप में इस तथ्य की व्याख्या की है कि एक दोहरी अर्थव्यवस्था में विकास की प्रक्रिया का आरम्भ अतिरिक्त श्रम के कृषि क्षेत्र से गैर-कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरण के साथ होता है। विकास का केन्द्र अतिरिक्त श्रम के धीरे-धीरे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण में निहित है। इस प्रकार यह लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त से श्रेष्ठ है एवं उस पर एक सुधार माना जाता है।

## 14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम निम्नलिखित तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं

- ✓ फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप किन मान्यताओं पर आधारित है?
- ✓ श्रम अतिरिक्त अर्थव्यवस्था के विकास की तीन अवस्थाएं कौन सी हैं?
- ✓ सन्तुलित विकास की अवस्था में कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में एक साथ विनियोग क्यों आवश्यक है?
- ✓ यह विकास मॉडल लेविस के मॉडल से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
- ✓ इस मॉडल की प्रमुख आलोचनाएं किन आधारों पर की गयी हैं?

## 14.3 फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप

फाई-रेनिस ने अपने लेख 'A Theory of Economic Development' में एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया (Transition Process) का विश्लेषण किया है तथा यह व्याख्या की है कि किस प्रकार अर्द्धविकसित देश की गतिहीनता की स्थिति (Stagnation) आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) की ओर जाने की आशा करती है। उन्होंने **प्रोफेसर आर्थर लेविस (A. Lewis)** द्वारा प्रस्तुत असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त में निहित कमियों को दूर करते हुए अतिरिक्त श्रम वाली अर्थव्यवस्था के विकास के दो क्षेत्र-मॉडल (दो सेक्टर मॉडल) से अपना विश्लेषण प्रारंभ किया है। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या वृद्धि तथा वास्तविक संसार की अन्य जटिलताओं को अपने विकास मॉडल में शामिल करते हुए **रेनिस एवं फाई** ने **आवश्यक न्यूनतम प्रयास (Critical Minimum Effort)** के विचार को 'आत्म स्फूर्ति अवस्था' के संदर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है।

### 14.3.1 सिद्धांत की मान्यताएं (Assumptions)

फाई व रेनिस का विकास प्रारूप निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. दोहरी अर्थव्यवस्था की विद्यमानता : जिसमें परंपरागत तथा गतिहीन कृषि क्षेत्र के साथ एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र विद्यमान होता है।

2. दोनों क्षेत्रों में श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपभोग करते हैं।
3. कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।
4. भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूँजी का संचय नहीं होता है।
5. कृषि कार्य में पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाये जाते हैं।
6. यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक होती है जहां श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य बन जाती है, तो श्रम को कृषि उत्पादन में हानि किये बिना औद्योगिक क्षेत्रों में स्थानांतरित किया जा सकता है।
7. औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल पूँजी तथा श्रम का फलन है। भूमि की उत्पादन के साधन के रूप में कोई भूमिका नहीं है।
8. जनसंख्या की वृद्धि को एक बाह्य घटक (Exogenous) तत्त्व के रूप में माना गया है।
9. औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है। यह कृषि क्षेत्र की प्रारंभिक वास्तविक आय के बराबर होती है। वे इसे संस्थानिक (Institutional) मजदूरी कहते हैं।
10. भूमि की पूर्ति स्थिर है।

इस सिद्धांत का संबंध श्रम अतिरेक (Labour Surplus) और संसाधनहीन (Resource Poor) ऐसे अर्द्धविकसित देश से है जिसमें अधिकांश जनसंख्या कृषि में कार्यरत है, बेरोजगारी की स्थिति गंभीर है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर ऊँची है। कृषि अर्थव्यवस्था भी गतिहीन है और लोग पारंपरिक कृषि व्यवसायों में संलग्न हैं। यद्यपि गैर-कृषि व्यवसाय भी पाये जाते हैं परंतु उनमें पूँजी का अल्प उपयोग होता है। इसमें एक सक्रिय तथा गत्यात्मक औद्योगिक क्षेत्र भी विद्यमान रहता है। फाई और रेनिस के मतानुसार विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिक जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य है उनको औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करना है। जहां वे कृषि में संस्थानिक मजदूरी (Institutional Wage) के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते हैं। इस प्रकार विकास में तीन बातें सम्मिलित हैं :

1. 1. कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की अधिकता रहती है, फलतः कृषि उत्पादन में उनका योगदान शून्य अथवा नगण्य रहता है।
2. 2. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।
3. 3. अतिरेक श्रमिकों का कृषि क्षेत्र में उत्पादन में योगदान शून्य या नगण्य होता है। परंतु औद्योगिक क्षेत्रों में इन्हें संस्थानिक मजदूरी प्राप्त होती है, फलतः ये उत्पादक बन जाते हैं।

### 14.3.2 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत (Theory of Double Economy)

**विकास की अवस्थाएं (Phases of Growth)** - उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर फाई तथा रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थाएं प्रस्तुत की हैं:

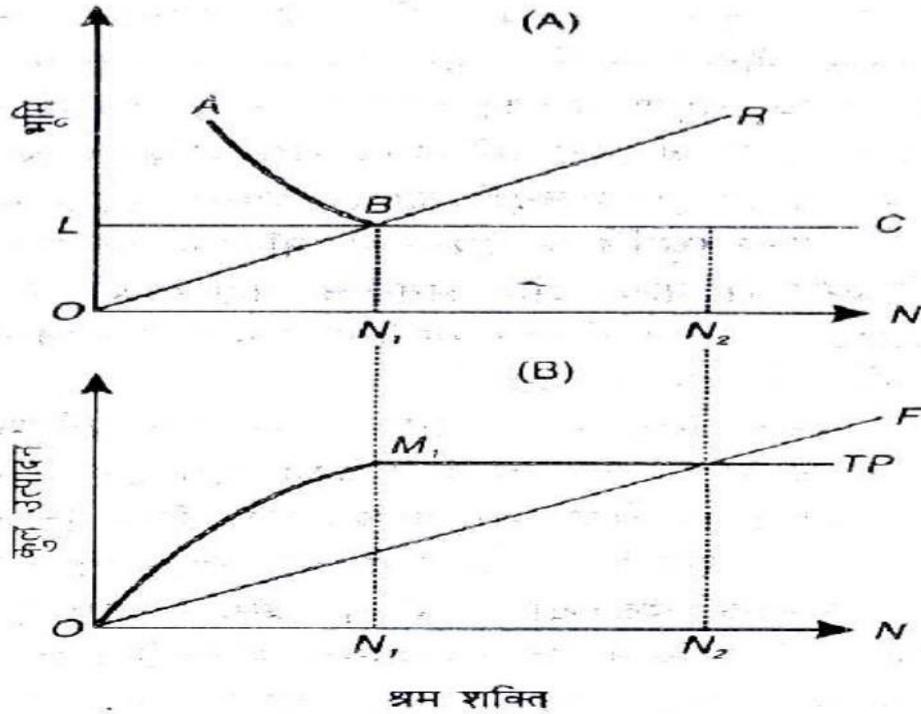
1. **प्रथम अवस्था (First Stage)** : इस अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिक जो कृषि उत्पादन में कोई योगदान नहीं दे रहे हैं, उनको स्थिर संस्थानिक मजदूरी की दर पर, औद्योगिक क्षेत्रों में

स्थानांतरित कर दिया जाता है।

2. **द्वितीय अवस्था (Second stage) :** इस अवस्था में कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन वृद्धि तो करते हैं परंतु उनकी उपज का मूल्य संस्थानिक मजदूरी से कम होता है, ऐसे श्रमिकों को भी औद्योगिक क्षेत्रों में भेज दिया जाता है। यदि इस प्रकार के श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र की ओर निरंतर स्थानांतरण किया जाता रहता है तो अंततः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कृषि श्रमिकों के उत्पादन का मूल्य संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है।
3. **तृतीय अवस्था (Third stage) :** द्वितीय अवस्था से ही तीसरी अवस्था का शुभारंभ होता है अर्थात् द्वितीय अवस्था आत्मस्फूर्ति ;जंम वृद्धि की अंतिम स्थिति होती है और यहीं से आत्मपोषित विकास मा नेपदमक तवूजीद्ध शुरु होता है। जबकि खेतिहर मजदूर संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते हैं। इस अवस्था में श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है, और कृषि का व्यावसायीकरण हो जाती है।

### 14.3.3 रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Representation)

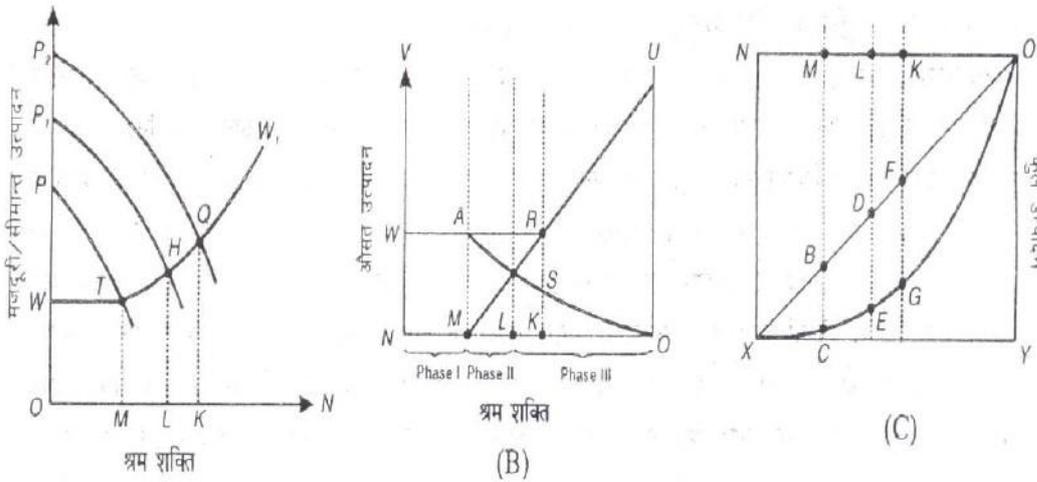
रेखाचित्र 14.1 (A) कृषि की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है, जहां पर श्रम तथा भूमि द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। चित्र में OX अक्ष पर श्रम (W) व OY अक्ष पर भूमि (L) को दर्शाया गया है। उत्पादन की अवस्थाओं को OR रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। ABC वक्र कृषि वस्तुओं की उत्पादन परिधि रेखा है। भूमि को OL पर स्थिर मान कर छ। श्रम के द्वारा अधिकतम उत्पादन किया जा सकता है।



चित्र B में TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को दर्शाता है। यदि भूमि OL के साथ  $ON_1$  से अधिक श्रम लगाया

जाता है, तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी क्योंकि वक्र TP पर  $M_1$  बिंदु के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है। यदि यह मान लिया जाये कि कृषि में कार्यरत श्रम की मात्रा  $ON_2$  है, तथा  $ON_1$  कार्यरत श्रमिक हैं और  $N_1, N_2$  अतिरिक्त बेरोजगार श्रमिक हैं, तो इस का अर्थ यह होगा कि  $N_1, N_2$  श्रमिकों की संख्या का उत्पादन में कोई योगदान नहीं है, और उनका सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र TP बिंदु  $M_1$  के आगे शून्य की ओर चला जाता है, अर्थात्  $M_1$  बिंदु के आगे उनकी सीमांत उत्पादकता शून्य हो जाती है।

इस प्रकार के श्रमिक अदृश्य बेरोजगार कहलाते हैं। आर्थिक विकास तब होता है जब उन अदृश्य बेरोजगारों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर तीन अवस्थाओं में स्थानांतरित किया जाता है। आर्थिक विकास की इन तीन वर्णित अवस्थाओं को चित्र 14.2 द्वारा दर्शाया गया है। रेखाचित्र 14.2 के (A) भाग में औद्योगिक क्षेत्र को और (B) तथा (C) भाग में कृषि क्षेत्र को दर्शाया गया है।



चित्र के C भाग में कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर क्षैतिज अक्ष ON पर तथा कृषि उपज को O से नीचे की ओर अनुलंब अक्ष OY पर मापा गया है।  $OXC$  वक्र कृषि क्षेत्र की कुल भौतिक उत्पादकता का वक्र कुल भौतिक उत्पादकता है  $CX$  वक्र का सामानांतर भाग यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में कुल उत्पादकता स्थिर है, तथा  $MN$  श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है अर्थात्  $MN$  अतिरिक्त श्रम की मात्रा है, जिसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करने पर कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाये कि संपूर्ण श्रम शक्ति  $ON$  कृषि क्षेत्र में लगी हुई है, तो वह  $NX$  कुल कृषि उत्पादन करेगी। यह मानते हुए कि कुल कृषि उपज  $NX$  को कुल श्रम शक्ति  $ON$  द्वारा उपभोग कर लिया जाता है तो वास्तविक मजदूरी  $NX/ON$  के बराबर होगी। इस मजदूरी को संस्थानिक (Institutional Wages) कहते हैं। आत्म स्फूर्ति के दौरान स्थानांतरण की तीन अवस्थाओं को चित्र B द्वारा दर्शाया गया है। जहाँ कुल श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर अनुलंब अक्ष  $ON$  पर तथा औसत उत्पादन को क्षैतिज अक्ष छट पर दर्शाया गया है। वक्र  $NMRU$  श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता सीमांत भौतिक उत्पादकता को दर्शाता है।  $NW$  संस्थानिक मजदूरी है जिस पर कि मजदूरों को इस क्षेत्र में लगाया जाता है। प्रथम अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिकों की मात्रा  $NM$  हैं और सीमांत उत्पादकता शून्य है जिसे चित्र के B भाग में  $NMRU$  वक्र के अंश  $NM$  द्वारा दर्शाया गया है अथवा चित्र के C भाग में कुल भौतिक उत्पादकता वक्र

के अंश CX द्वारा दर्शाया गया है। इस अतिरिक्त श्रम शक्ति छड जिसे चित्र भाग (A) के OM में दर्शाया गया है, उसे संस्थानिक मजदूरी  $OW = NW$  पर औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया गया है। द्वितीय अवस्था में सीमांत भौतिक उत्पादकता वक्र NMRU पर MK कृषि मजदूरों की सीमांत भौतिक उत्पादकता MR रेन्ज में धनात्मक है लेकिन यह संस्थानिक मजदूरी  $KR = N$  जो वे प्राप्त करते हैं, उससे कम है जैसा कि चित्र के B भाग में दर्शाया गया है।

अतः वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार हैं जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकता है परंतु इस द्वितीय अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी के बराबर नहीं होगी इसका कारण यह है कि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में रूपांतरण से कृषि उत्पादन कम होता है जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं का अभाव हो जाता है। फलतः औद्योगिक वस्तुओं की सापेक्षता में कृषि वस्तु की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार की शर्तें खराब हो जाती हैं जिसके कारण औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य मजदूरी में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है।

सामान्य मजदूरी OW से LH तथा KQ तक संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H तथा Q से ऊपर W1 तक जाते हुए भाग (A) में दर्शाया गया है, जब ML तक LK मजदूर धीरे-धीरे औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित हो जाते हैं। T से ऊपर की ओर श्रम के पूर्ति वक्र WTW1 पर गति ही लेविस का मोड़ बिंदु (Lewis Turning Point) है। जब तीसरी अवस्था (Third Phase) शुरू होती है तो कृषि मजदूरों का उत्पादन बढ़ कर संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है और अंततः उनका उत्पादन संस्थानिक मजदूरी से अधिक हो जाता है अर्थात् वे संस्थानिक मजदूरी से अधिक प्राप्त करते हैं। यह स्थिति आत्म स्फूर्ति का अंत है और आत्म जनक (Self-Generating) आर्थिक विकास का शुभारंभ है।

इस तथ्य को चित्र के B भाग में सीमांत भौतिक उत्पादकता वक्र के बढ़ रहे भाग RU से दर्शाया गया है जो कि संस्थानिक मजदूरी  $KR = NW$  से अधिक है परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र के भाग 1 में KQ से ऊपर बढ़ती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित कर दिया जाता है। KO श्रम जो कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम था जब उसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेज दिया जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि कृषि क्षेत्र में अब श्रम अतिरिक्त (Labour Surplus) नहीं है और कृषि का व्यावसायीकरण हो गया है। फाई और रेनिस के अनुसार इस अतिरिक्त श्रम की समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा एक बाजार तत्त्व (Market Phenomenon) के रूप में देखना चाहिए जिसे वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

फाई तथा रेनिस का मत है कि जब कृषि श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है तो कृषि वस्तुओं का अतिरिक्त प्रारंभ हो जाता है। इससे कृषि क्षेत्र में कुल कृषि अतिरिक्त (Total Agricultural Surplus or TAS) हो जाता है। संस्थानिक मजदूरी पर कृषि शक्ति का उपभोग आवश्यकता से अधिक कुल कृषि उत्पादन का अतिभाग कुल कृषि अतिरिक्त (TAS) कहा जाता है। कुल कृषि अतिरिक्त की मात्रा विकास प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र में भेजे गये श्रमिकों की संख्या का फलन है। कुल कृषि अतिरिक्त को चित्र 14.2 के भाग C में OX रेखा तथा कुल भौतिक उत्पादकता वक्र OCX के बीच की अनुलंब दूरी (Vertical Distance) से मापा गया है। प्रथम अवस्था में जब NM श्रम को स्थानांतरित किया जाता है तो BC के बराबर कुल कृषि

अतिरेक है। द्वितीय अवस्था में जब ML तथा LK के श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेजा जाता है तो कुल कृषि अतिरेक की DE तथा FG मात्रा उत्पन्न होती है। कुल कृषि अतिरेक को कृषि संसाधनों के रूप में देखना चाहिए, जिन्हें बाजार में कृषि मजदूरों के पुनः आवंटन द्वारा छोड़ा गया है। ऐसे संसाधनों को भूमिपति वर्ग की विनियोग क्रियाओं अथवा सरकार की कर नीति द्वारा एकत्रीकरण करके नयी औद्योगिक वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त औसत कृषि अतिरेक (AAS) का भी सृजन होता है। औसत कृषि श्रमिक (AAS) से तात्पर्य औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित प्रति श्रमिक को उपलब्ध कुल कृषि अतिरेक से है। इसको इस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है। जैसा कि प्रत्येक आवंटित श्रमिक अपने निर्वाह का भाग स्वयं उठाता है।

औसत कृषि श्रमिक वक्र को चित्र के B भाग को WASO वक्र द्वारा दर्शाया गया है। अवस्था I में औसत कृषि श्रमिक वक्र संस्थानिक मजदूरी के वक्र (WA) के साथ समरूप है। अवस्था II में जब (MK) श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है, तब औसत कृषि श्रमिक चित्र के भाग B में A से S तक गिरने लगता है, जबकि T कुल कृषि अतिरेक भाग (C) में BC से DE से FG तक बढ़ता जाता है। अवस्था III में औसत कृषि श्रमिक अधिक तेजी से भाग B में S से 0 तक होता है और भाग C में क्षेत्र FG से 0 तक संकुचन से कुल कृषि अतिरेक भी कम हो जाता है। औसत कृषि श्रमिक तथा कुल कृषि अतिरेक दोनों में कमी कृषि श्रमिकों को सीमांत भौतिक उत्पादकता संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ने के कारण है, जो कि अंततः बचे हुए अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाती है।

फाई तथा रेनिस ने अवस्था I तथा अवस्था II के बीच की सीमा को 'दुर्लभता बिंदु' (Shortage Point) कहा है। जब कृषि वस्तुओं की कमी प्रारंभ होती है तो औसत कृषि श्रमिक (WASO) वक्र का AS भाग न्यूनतम संस्थानिक मजदूरी (NW) से नीचे गिरता हुआ दर्शाया गया है। अवस्था II तथा अवस्था III के बीच की सीमा व्यावसायीकरण बिंदु (Commercialisation Point) है जो कि कृषि में संस्थानिक मजदूरी तथा सीमांत भौतिक उत्पादकता के बीच समानता के शुभारंभ को व्यक्त करती है।

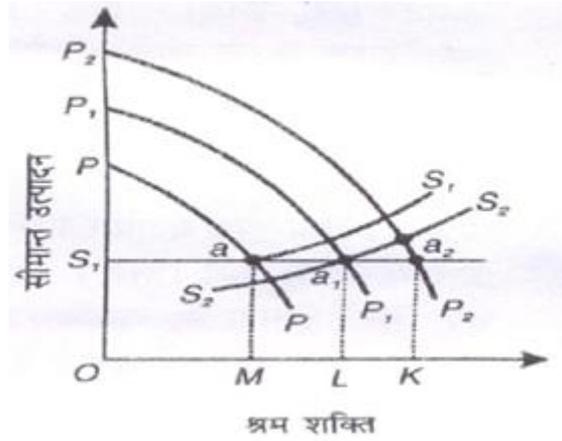
इस प्रकार लेविस का मोड़ बिंदु फाई तथा रेनिस के दुर्लभता बिंदु के समान होता है तथा औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि व्यावसायीकरण बिंदु पर तीव्र होती है। फाई तथा रेनिस यह प्रदर्शित करते हैं कि यदि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है तो दुर्लभता बिंदु और व्यावसायीकरण बिंदु आपस में मिल जाते हैं। इसका कारण यह है कि कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के कारण (MRP) में वृद्धि हो जाती है। (MRP) में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है।

चित्र 14.2 B में इसे (MRU) वक्र के ऊपर बायीं तरफ स्थानांतरित होते समझा जा सकता है। इसका तरफ कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ (AAS) भी बढ़ता है। जिसका अर्थ यह है कि चित्र 14.2 B में ASO वक्र दायीं ओर ऊपर स्थानांतरित हो जाता है। यदि उत्पादकता में वृद्धि पर्याप्त है, तो चित्र 14.2 B में MRU वक्र तथा ASO वक्र इस प्रकार ऊपर की ओर स्थानांतरित हो जायेंगे कि दुर्लभता बिंदु A और व्यावसायीकरण बिंदु R आपस में मिल जाएंगे और इस प्रकार द्वितीय अवस्था समाप्त हो जायेगी। जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिंदु के बाद यह औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी।

चित्र 14.2 B में इसे WTWI के नीचे दायीं ओर बिंदु T के नीचे दिखाया जा सकता है। फाई तथा रेनिस के अनुसार द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्त्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।

### 14.3.4 संतुलित विकास (Balanced Growth)

फाई तथा रेनिस के अनुसार उनका मॉडल आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। संतुलित विकास की अवस्था में कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में एक साथ विनियोग आवश्यक है। संतुलित विकास की अवस्था को चित्र 14.3 द्वारा दर्शाया गया है।



चित्र 14.3

चित्र 14.3 में PP श्रम का प्रारंभिक मांग वक्र तथा  $S_1S_1$  प्रारंभिक पूर्ति वक्र हैं। ये दोनों एक दूसरे को जिस बिंदु पर काटते हैं वहां औद्योगिक क्षेत्र में OM श्रम शक्ति काम में लगी है। रोजगार के इस स्तर पर औद्योगिक क्षेत्र  $S_1aP$  क्षेत्र के बराबर लाभ कमाता है। यह लाभ आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था का उपलब्ध कुल निवेश कोष है। कुल निवेश कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है और श्रम पूर्ति वक्र औद्योगिक क्षेत्र में नीचे दायीं ओर  $S_1S_1$  से स्थानांतरित होकर हो  $S_2S_2$  हो जाता है। कुल निवेश का शेष भाग औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जो औद्योगिक मांग वक्र को ऊपर दायीं ओर PP से स्थानांतरित करके  $P_1P_1$  कर देता है।

संतुलित विकास पथ  $S_1a_3$  पर स्थित बिंदु  $a_1$  पर वक्र  $S_2S_2$  तथा  $P_1P_1$  काटते हैं। कृषि क्षेत्र को निवेश कोष के आवंटन के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने से जो कृषि क्षेत्र द्वारा श्रम शक्ति ML छोड़ी गयी है वह  $a_1$  पर औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम में लगायी जाती है। चित्र 14.3 में दर्शायी गयी औद्योगिक क्षेत्र में लगायी हुई श्रम शक्ति ML चित्र 14.2 B में कृषि क्षेत्र से स्थानांतरित की गयी श्रम शक्ति ML के बिल्कुल बराबर है। इस प्रकार जब काल पर्यंत कुल विनियोग कोष को कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में निरंतर आवंटित किया जाते हैं तो अर्थव्यवस्था संतुलित विकास पथ पर चलती रहती है परंतु इस बात की भी संभावना रहती है कि वास्तविक विकास पथ संतुलित पथ से विचलित हो जाये। फिर भी ये विचलन इस प्रकार की संतुलन शक्तियों को जन्म देता है जो इसे पुनः संतुलित विकास पथ पर लाने की प्रवृत्ति रखती है। वस्तुतः यह पथ संतुलित विकास पथ के

आसपास घूमने की संभावना रखता है।

उदाहरण के लिए, यदि औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग की मात्रा अधिक हो जाने के कारण श्रम मांग वक्र स्थानांतरित हो कर  $P_2P_2$  हो जाता है और  $a_2$  पर श्रम पूर्ति वक्र  $S_2S_2$  को काटता है तो वास्तविक विकास पथ संतुलित विकास पथ से ऊपर होगा इससे कृषि वस्तुओं में कमी आयेगी तथा औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार शर्तों में गिरावट आयेगी और औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़ेगी। परिणामस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग हतोत्साहित होगा तथा कृषि क्षेत्र में विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके कारण वास्तविक विकास तथा संतुलित विकास पथ  $a_3$  के स्तर पर आ जायेगा।

### 14.3.5 सिद्धांत के गुण (Merits of the Theory)

फाई तथा रेनिस के मॉडल को लेविस के मॉडल पर एक सुधार माना गया है जिसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :

1. लेविस का मॉडल अपना ध्यान केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही केंद्रित करता है जिसके फलस्वरूप यह मॉडल कृषि क्षेत्र में विकास का संतोषजनक विश्लेषण कर पाने में असमर्थ रहा है।
2. फाई व रेनिस का मॉडल लेविस के मोड़ बिंदु (Lewis turning point) को अधिक वास्तविक ढंग से समझाता है।
3. फाई व रेनिस का यह मॉडल अर्द्धविकसित देशों में पूँजी के संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्त्व को प्रकट करता है।
4. यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों के कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का आत्मस्फूर्ति से आत्मजनक विकास तक व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण करता है।

### 14.3.6 सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of the Theory)

उपर्युक्त अनेक गुणों के होते हुए भी फाई व रेनिस के सिद्धांत की निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर आलोचनाएं की जाती हैं :

1. **स्थिर संस्थानिक मजदूरी (Fixed institutional wage) :** इस सिद्धांत की धारणा है कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने के बावजूद भी विकास की प्रथम और द्वितीय अवस्थाओं में संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक अनुभव से मेल नहीं खाती है क्योंकि सामान्यतया जैसे जैसे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है कृषि में मजदूरी भी बढ़ती जाती है।
2. **सीमांत भौतिक उत्पादकता का अधिक होना (High MPP) :** यह मॉडल इस धारणा पर आधारित है कि विकास प्रक्रिया की अवस्था I तथा II के दौरान संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है तथा सीमांत भौतिक उत्पादकता (MPP) से ऊंची होती है। इस मान्यता के पक्ष में कोई आनुभाविक प्रमाण नहीं है। वास्तव में श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों में कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी सीमांत भौतिक उत्पादकता से काफी कम होता है।
3. **शून्य सीमांत भौतिक उत्पादकता (Zero MPP) :** फाई तथा रेनिस की यह धारणा है कि भूमि की

स्थिर मात्रा के साथ जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा होता है जिसका उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता है अर्थात् उनकी सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य या नगण्य होती है। प्रो. शूलज इस मत से सहमत नहीं हैं कि श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्थाओं में सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य होती है क्योंकि यदि ऐसा होता तो संस्थानिक मजदूरी भी शून्य होती। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिलती है जो नकद रूप में या वस्तु के रूप में होती है। अतः यह कहना सर्वथा गलत है कि कृषि क्षेत्र में सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य होती है।

4. **कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialisation of agriculture) :** इस सिद्धांत के अनुसार जब कृषि क्षेत्र तीसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो उसका व्यावसायीकरण हो जाता है। परंतु अर्थव्यवस्था की आत्मजनक विकास की ओर जाने की संभावनाएं नहीं रहती क्योंकि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब अनेक श्रमिक कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो जाते हैं तो कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की कमी अनुभव होने लगती है। इसी दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिकों की डच्च के बराबर होती है तथा इस प्रकार कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है। ये सभी तत्त्व अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करते हैं।
5. **स्थिर भूमि की पूर्ति (Supply of fixed land) :** यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है परंतु यह धारणा सही नहीं है क्योंकि दीर्घकाल में फसल एकड़ उत्पत्ति का अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि भूमि की मात्रा स्थिर नहीं रहती है। उदाहरण के लिए, भारत में फसल क्षेत्र का निर्देशांक (आधार वर्ष 1881-82) 1870-71 में 96.3 था जो 2000-01 में बढ़ कर 102.0 हो गया।
6. **बंद अर्थव्यवस्था (Closed economy) :** यह मॉडल बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जिसमें विदेशी व्यापार नहीं होता। आलोचकों के अनुसार यह धारणा अवास्तविक है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका को नकारा गया है। वर्तमान जगत में कोई भी देश बाहरी विष्व की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकता है। विदेशी पूँजी, सहायता एवं सहयोग किसी भी अर्द्धविकसित देश के विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं। अतः वर्तमान अर्द्धविकसित देश बंद अर्थव्यवस्थाएं न हो कर खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं जहां कमी आने पर वस्तुओं को विदेशों से आयात किया जाता है।

#### 14.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'A theory of Economic Development' नामक लेख किसके द्वारा लिखा गया?
2. फाई-रेनिस का विश्लेषण ..... क्षेत्र मॉडल पर आधारित है।
3. फाई एवं रेनिस के अनुसार कृषि ..... क्षेत्र है।
4. फाई-रेनिस का सिद्धान्त ..... अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है।
5. फाई-रेनिस सिद्धान्त की क्या मान्यताएं हैं?
6. फाई-रेनिस सिद्धान्त के प्रमुख गुण बताइए।

7. फाई-रेनिस सिद्धान्त की आलोचना किन आधारों पर की गई है?
8. फाई-रेनिस के सिद्धान्त में मोड़ का बिन्दु (turning point) क्या है?
9. फाई एवं रेनिस के सिद्धान्त का सम्बन्ध किस प्रकार की अर्थव्यवस्था से है?
10. फाई एवं रेनिस के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी.....रहती है।

### बहुविकल्पीय प्रश्न

11. 'A theory of Economic Development' नामक लेख किसके द्वारा लिखा गया :

- |                   |                  |
|-------------------|------------------|
| अ) गुन्नार मिर्डल | ब) एच. मिन्ट     |
| स) जे. एच. बूके   | द) फाई एवं रेनिस |

12. फाई-रेनिस का विश्लेषण किस मॉडल पर आधारित है:

- |                     |                      |
|---------------------|----------------------|
| अ) दो क्षेत्र मॉडल  | ब) तीन क्षेत्र मॉडल  |
| स) चार क्षेत्र मॉडल | द) इनमें से कोई नहीं |

### सत्य / असत्य लिखिए:

13. फाई तथा रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की तीन अवस्थाएं प्रस्तुत की हैं।
14. फाई-रेनिस विकास मॉडल खुली अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है।
15. फाई-रेनिस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है।
16. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।

## 14.5 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप वास्तविकता से परे है तथा अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। किन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अर्द्धविकसित देश सामान्यतः जनसंख्या वृद्धि की समस्या का सामना कर रहे हैं और ऐसी दशा में अतिरेक श्रम एक वास्तविक समस्या है जिस पर फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप में प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार विकास का यह प्रारूप श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में अप्रासंगिक नहीं है तथा यह लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त पर एक सुधार है। लेविस का सिद्धान्त कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यान में रखते हुए केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है जबकि फाई- रेनिस मॉडल विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करने में कृषि एवं औद्योगिक दोनों क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को व्यक्त करता है। यद्यपि इस मॉडल की अनेक आलोचनाएं की गई हैं किन्तु इनसे इसका महत्व कम नहीं होता है। अतिरेक श्रम की समस्या को हल करने के लिए नीति निर्धारकों द्वारा फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप को कुछ संशोधनों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

## 14.6 शब्दावली

- **बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy)** – एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।
- **द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy)** – दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **बाह्य घटक (Exogenous Factor)** – एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)** – जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।
- **अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment)** – यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात् श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।
- **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity)** – जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात् यह किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।
- **आत्म-स्फूर्ति की अवस्था (Take-off Stage)** – आत्म-स्फूर्ति अविकसित अवस्था और विकास की चरम सीमा के बीच एक मध्यान्तर की अवस्था है। इसमें पुरानी बाधाओं तथा प्रतिरोधों पर परी तरह से काबू पा लिया जाता है। आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं। विकास एक सामान्य प्रक्रिया का रूप ले लेता है संचयी विकास समाज की आदतों एवं उसके संस्थानिक ढाँचे का अभिन्न अंग बन जाता है। प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकाल तक एक निश्चित दर से वृद्धि होती है तथा इसके लिए आवश्यक निवेश स्वतः होने लगता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour)** – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि। प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

## 14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फाई एवं रेनिस, 2. दो, 3. परम्परागत एवं गतिहीन 4. बन्द, 10. स्थिर 11. द) फाई एवं रेनिस 12. अ) दो क्षेत्र

मॉडल, 13. सत्य, 14. असत्य, 15. सत्य 16. सत्य

## 14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम. एल. : “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 1903
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार: “विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन” राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1908
- सिन्हा, वी. सी. : “आर्थिक संवृद्धि और विकास”, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907
- Agarwal, R. C. : “*Economics of Development and Planning*” Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 1907
- Taneja, M. L. & Myer R. M. : “*Economics of Development and Planning*” Vishal Publishing Co., Delhi, 1910

## 14.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Myrdal, G. : “*Economic Theory and Under-developed Regions*” 1957
- Myint, H. M. : “*Economic Theory and the Underdeveloped Countries*”
- Meier ,G.M.: “*Leading Issues in Economic Development*” , Oxford University Press, Delhi ,1989
- Lewis, W. Arthur : “*Economic Development with Unlimited Supplies of Labour*” (1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) -“The Economics of Underdevelopment” (1969)
- Meier and Baldwin : “*Economic Development*”
- Kindleberger C. P. : “*Economic Development*”
- Misra, S. K. & Puri, V. K. : “*Economic Development and Planning*”

## 14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फाई तथा रेनिस के दोहरी अर्थव्यवस्था के सिद्धांत की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। यह लेविस के असीमित पूर्ति सिद्धांत से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
2. फाई तथा रेनिस के सिद्धांत में मोड़ बिंदु क्या है ? क्या यह सिद्धांत लेविस के सिद्धांत का एक सुधरा हुआ रूप है? विवेचना करो।
3. फाई तथा रेनिस के विकास मॉडल की प्रासंगिकता का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

## इकाई 15 - एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत (Theory of H. Myint and Gunnar Myrdal)

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत
  - 15.3.1 वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत
    - 15.3.1.1 वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ
    - 15.3.1.2 वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाव
    - 15.3.1.3 वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव
  - 15.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत
    - 15.3.2.1 प्रादेशिक असमानताएं
    - 15.3.2.2 देशांतर, पूँजीगतियों तथा व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव
    - 15.3.2.3 अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं
    - 15.3.2.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन
    - 15.3.2.5 सिद्धांत के दोष
- 15.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 15.5 सारांश
- 15.6 शब्दावली
- 15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 15.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 15.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में प्रो. मिंट (Myint) का वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धान्त तथा गुन्नार मिर्डल का अल्पविकास विश्लेषण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धान्त में प्रो. मिंट ने एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में विद्यमान वित्तीय द्वैतवाद के उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की तथा उन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये हैं। जबकि मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धान्त राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है।

## 15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम निम्नलिखित बिन्दुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं:

- ✓ वित्तीय द्वैतवाद क्या है?
- ✓ वित्तीय द्वैतवाद के एक अल्पविकसित राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ते हैं?
- ✓ अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय द्वैतवाद के प्रभावों को कैसे कम किया जा सकता है?
- ✓ प्रो. मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धान्त क्या है?
- ✓ अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव क्या है?
- ✓ प्रादेशिक एवं अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं क्या हैं?
- ✓ मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धान्त के गुण एवं दोष क्या हैं?

## 15.3 एच. मिंट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धान्त

### 15.3.1 वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धान्त

#### 15.3.1.1 वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ (Meaning of Financial Dualism)

वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. एच. एम. मिंट द्वारा किया गया। वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।

मिंट के अनुसार संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें

कृषि सम्बन्धी वित्त निगम (भारत में नाबार्ड), औद्योगिक वित्त निगम (भारत में आई.एफ.सी.आई) बीमा कम्पनियां (भारत में एल.आई.सी.जी.आई.सी.इत्यादि) और विकास बैंक (भारतमें आई.डी.बी.आई,सिडबी इत्यादि) शामिल होते हैं। इसके विपरीत गैर-संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पेशेवर और गैर-पेशेवर व्यापारी, सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे-सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।

गैर संगठित-मुद्रा बाजार की विशेषताएं हैं:

- (i) साहूकारों और ऋणकर्ताओं के बीच निजी सम्बन्ध;
- (ii) साहूकारों द्वारा ऋणकर्ताओं में अनौपचारिक लेन-देन;
- (iii) ऋणों के लेन-देन में लचीलापन;
- (iv) ऋण देने की गतिविधियों में विविधता अर्थात् ऋण देने की सुविधा के साथ व्यापार जैसी अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी सहायक होना;
- (v) ब्याज-दरों की विविधता: ऋणी की आवश्यकता, ऋण की राशि, ऋण लौटाने का समय और प्रतिभूति के स्वरूप के अनुरूप ब्याज दरों में भिन्नता;
- (vi) खातों के रख-रखाव की दोषपूर्ण पद्धति-पुनः अदा किए गए मूलधन और उस पर लिये गये ब्याज के लिए प्राप्ति (रसीदें) जारी किया जाना; और
- (vii) ऋण देने की प्रक्रियाओं और खातों के रखरखाव में अत्यधिक गोपनीयता।

### 15.3.1.2 वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाव (Effects of Financial Dualism)

एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में इस प्रकार के वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

1. **विरोधी वित्त नीतियां (Inimical public policies):** अल्पविकसित राष्ट्रों में पारम्परिक क्षेत्र के पिछड़ने का कारण यह है कि सार्वजनिक सेवाओं पर किया जाने वाला व्यय ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों पर अधिक किया जाता है। परिवहन, संचार और विद्युत शक्ति जैसी सार्वजनिक सेवाएं पारम्परिक क्षेत्र की अपेक्षा आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में सरलता से और आसान शर्तों पर उपलब्ध हैं। कुछ अल्पविकसित राष्ट्रों की सरकारों ने कृषि बैंकों, सहकारी ऋण समितियों आदि की स्थापना करके और सूदखोरी कानूनों को समाप्त करके ऋण सुविधाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया है। परन्तु इससे सहकारी समितियों द्वारा अपने कुछ खास 'मॉडल गांवों' को रियायती दरों पर सीमित ऋण राशि उपलब्ध कराई जाती है। देखने में प्रभावी प्रतीत होने वाली इन प्रदर्शन सुविधाओं का शेष पारम्परिक क्षेत्र में प्रचलित उच्च ब्याज दर को कम करने में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है जिसके परिणामस्वरूप बैंक ऋणों का उपयोग भी कम हुआ है। मिंट के अनुसार साहूकारों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने तथा व्यापारिक बैंकों और सहकारी

समितियों के द्वारा पारम्परिक क्षेत्र में सस्ता ऋण सुलभ कराने के प्रयास निम्नलिखित कारणों से विफल हो गए हैं: (क) ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारिक बैंकों के अधिकारी एवं कर्मचारियों के वेतन-भत्ते एवं उपरिलागत का अधिक होना; (ख) उधार प्राप्त करने के कड़े नियमों के अनुसार छोटे उधारकर्ताओं के साथ लेनदेन में लालफीताशाही ; (ग) प्रधान कार्यालय और शाखाओं में समन्वय का अभाव; और (घ) ग्रामीण क्षेत्रों के अपने कुछ खास क्षेत्रों में सहकारी ऋण समितियों द्वारा रियायती दरों के ऋण की सीमित उपलब्धता।

2. **ब्याज दर में भिन्नता (Interest rate differences):** वित्तीय द्वैतवाद के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के संगठित और गैर संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरें प्रचलित रहती हैं। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। गैर-संस्थागत ऋण ऊंची ब्याज दरों पर उपलब्ध होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पारम्परिक क्षेत्र में बचतों की वस्तुतः कमी है, क्योंकि बचतों का बड़ा हिस्सा सोने और आभूषणों के रूप में जमा किया जाता है। यद्यपि इस गैर-संगठित मुद्रा बाजार की अपूर्णताओं के अन्य सहायक पहलू भी हैं। ग्रामीण दुकानदार, जमींदार, साहूकार और व्यापारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुकूल स्थान रखते हैं और किसानों पर एकाधिकार शक्तियां स्थापित कर लेते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि उक्त समुदाय ऋण के लेने-देने में लचीलापन और वस्तुओं की बिक्री जैसे क्रिया-कलापों को ऋण देने के साथ शामिल करके ऋण लेने वालों से निजी और अनौपचारिक सम्बन्ध बना लेते हैं। **मिंट** के अनुसार *“किसानों द्वारा अदा की जाने वाली ब्याज की ऊंची दरें न केवल औपचारिक ब्याज खर्चे ;बींतहमेद्ध हैं अपितु इसका बड़ा भाग वह छिपा हुआ भार है जो किसानों द्वारा खरीदी अथवा बेचे जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में हेरा-फेरी कर प्राप्त किया जाता है। छिपा हुआ भार स्थानीय दुकान से ऋण शर्तों पर वस्तुओं की ऊंची कीमतों के रूप में अथवा फसल कटाई के समय निर्धारित फसल की मात्रा सहित ऋण राशि जमींदार को अदा करने के रूप में हो सकता है।”*

दूसरी ओर अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित बाजार में ब्याज दरें कम और ऋण-सुविधाएं पर्याप्त होती हैं। संगठित मुद्रा बाजार में व्यावसायिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं होती हैं जो निर्यात उद्योगों में बड़े विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमियों, सरकार और बड़े पैमाने के आधुनिक वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्यमियों को कम ब्याज दर पर थोड़े समय के लिए ऋण प्रदान करते हैं।

3. **मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन दबाव (Inflation and balance of payment pressures):** अल्पविकसित राष्ट्रों को दीर्घकालिक घरेलू मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप पारम्परिक क्षेत्र के किसानों, छोटे व्यापारियों, हथकरघा उत्पादकों जैसे छोटे कारोबार वाली इकाइयों को न केवल ऊंची ब्याज दर अपितु विदेशी विनिमय और आयातों का अभाव भी झेलना पड़ता है। अल्पविकसित राष्ट्रों के अपने केन्द्रीय बैंकों की स्थापना से उन्हें मौद्रिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। अब इन राष्ट्रों में विदेशी मुद्रा नियन्त्रणों की शुरूआत हो गई है और विदेशी व्यावसायिक बैंकों द्वारा निधियों के हस्तांतरण और लाभ अपने यहां ले जाने की गतिविधियों पर

अंकुश लगा है। इसके फलस्वरूप अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित मुद्रा बाजारों का सम्बन्ध विश्व पूँजी बाजार से टूट सा गया है। उक्त नीतियों के साथ-साथ अल्पविकसित राष्ट्र सस्ती मुद्रा नीति को अपना रहे हैं। इससे विरोधाभास वाली ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें पूँजी दुर्लभ अल्पविकसित राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंक बहु-पूँजी विकसित राष्ट्रों में प्रचलित ब्याज दरों की तुलना में कम ब्याज दर रखे हुए हैं। इससे उनकी विनिमय दर का अधिमूल्यन (overvaluation) हो जाता है। अल्पविकसित राष्ट्रों को भय होता है कि मुद्रा के अवलमूल्यन से उनकी मुद्राओं का पुनः अवमूल्यन एवं स्फीति दबाव हो जायेंगे। इस प्रकार, अल्पविकसित राष्ट्रों को मुद्रा स्फीतिक दबावों, विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों में गिरावट और भुगतान संतुलन के दबावों जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः अधिमूल्यक मुद्रा दरों पर विदेशी मुद्रा की दीर्घकालीन अतिमांग पाई जाती है। इन समस्याओं पर नियन्त्रण पाने के लिए अल्पविकसित राष्ट्रों ने विदेशी मुद्रा और आयात नियन्त्रणों तथा मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों एवं प्रत्यक्ष नियन्त्रणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

**4. राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effects of fiscal and monetary policies):** वित्तीय द्वैतवाद के परिणामस्वरूप पारम्परिक क्षेत्र एवं आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के मध्य आर्थिक द्वैतवाद में वृद्धि हुई है। राजकोषीय और मौद्रिक नीतियां पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के पक्ष में अग्रसर हुई हैं। सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर बड़ी औद्योगिक इकाइयों को कृत्रिम रूप से कम ब्याज दर एवं अनुकूल शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया गया है। कम ब्याज दर से न केवल विदेशों से आने वाली पूँजी निधियों के प्रवाह और देश के भीतर होने वाली बचतों में कमी हुई है अपितु विभिन्न ऋणों के लिए मांग अधिक हुई है। इस प्रकार घरेलू बचतों का बड़ा भाग कम ब्याज दर पर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है। इससे पारम्परिक लघु उद्योगों और कृषि क्षेत्रों को पूँजी की आपूर्ति में कमी हुई है और उक्त क्षेत्रों को ऊंची ब्याज दरों पर पूँजी जुटानी पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक लेन-देनों की मात्रा में कमी हुई है और गैर-मौद्रिक लेन-देनों में निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।

**5. नियन्त्रणों के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effects of controls):** प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए विदेशी मुद्रा और आयातों पर नियन्त्रण लगाने से पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र को लाभ हुआ है। सामान्य तौर से उपलब्ध विदेशी मुद्रा का बड़ा भाग आधुनिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है और विनिर्माण उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे उत्पादन के अति पूँजी गहन तरीके अपनायें। इसका कारण यह है कि आयातित पूँजी-वस्तुएं अतिमूल्य विनिमय दरों पर सस्ते में प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार घरेलू श्रम की बजाय अपेक्षाकृत सस्ती आयातित पूँजी वस्तुओं को अपनाने की प्रबल प्रेरणा मिलती है।

कृषि और छोटे पैमाने के क्षेत्रों के विदेशी मुद्रा के अभाव और आयात नियन्त्रणों से ग्रसित होने के दो मुख्य कारण हैं: प्रथम, उन्हें आयातित उपभोक्ता वस्तुएं ऊंची कीमतों पर मिलती हैं और दूसरे, वे अल्प विकसित राष्ट्रों में लालफीताशाही और भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण विदेशी मुद्रा और आयात परमिट सरलता से नहीं प्राप्त कर पाते हैं। दुर्लभ पूँजी की आपूर्ति पर सरकारी नियन्त्रण से अल्पविकसित

राष्ट्रों में वित्तीय बिचौलियों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। इन नियन्त्रणों से बड़ी विनिर्माण इकाइयों और बैंकों को लाभ होता है। इसके अलावा वे उन छोटे उधारकर्ताओं और साहूकारों से भेदभाव करते हैं जो कि छोटे उधारकर्ताओं को ऋण प्रदान करते हैं। सरकार का मानना है कि केवल टिकाऊ पूँजीगत वस्तुओं और आधुनिक मशीनरी में निवेशित पूँजी निधियां ही उत्पादक हैं, जबकि कृषि और व्यापारिक गतिविधियों में निवेश किया गया धन गैर-उत्पादक होता है।

- 6. पूँजी बाजार के विकास का धीमा होना (Retardation of the growth of capital market):** वित्तीय द्वैतवाद से आधुनिक और पारम्परिक क्षेत्रों में संसाधनों का गलत आवंटन हुआ है और अल्पविकसित राष्ट्रों में एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। सरकारी नियन्त्रणों की विविधता से ऋण का मुक्त बाजार काला बाजार के रूप में विकसित हो गया है। अतिमूल्यक विनिमय दरों सहित घरेलू मुद्रा स्फीति के कारण आन्तरिक पूँजी का विदेशों में सट्टात्मक हस्तांतरण हुआ है। जिन अल्पविकसित राष्ट्रों ने ऐसी गतिविधियों को रोकने का प्रयास किया है, वहां पूँजी निधियों को स्वर्ण, आभूषण, वास्तविक सम्पदा और सट्टा गतिविधियों में लगाया गया है। इसका कारण यह है कि सस्ती मुद्रा नीति के अन्तर्गत निधियों के धारकों को निवेश करने पर कम ब्याज दर प्रदान की जाती है। इससे प्रभावी मुद्रा बाजार के विकास में बाधा आती है।

इसके अलावा, अल्पविकसित राष्ट्रों के एकीकृत पूँजी बाजार के विकास में व्यापारिक गतिविधियों के विरुद्ध ऋण भेदभाव भी रूकावट बन जाता है। पर्याप्त पूँजी-निधियों की अनुपलब्धता और धारक स्टाकों की ऊंची लागतों के कारण व्यापारियों को वस्तुओं का बहुत कम भण्डार और प्रचल पूँजी अपने पास रखनी पड़ती है। इसके परिणाम स्वरूप थोक और खुदरा कीमतों का अंतर बढ़ जाता है।

### 15.3.1.3 वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Financial Dualism)

अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

- 1. अधिक एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार का निर्माण (Creation of a more integrated domestic capital market):** प्रो. मिंट ने यह सुझाव दिया है कि अल्पविकसित राष्ट्रों में अधिक एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार का निर्माण किया जाए ताकि आधुनिक और पारम्परिक दोनों क्षेत्रों को पूँजी निधियां समान शर्तों पर एवं सरलता से उपलब्ध हो सकें। इससे दोनों क्षेत्रों में संसाधनों के गलत आवंटन में भी कमी होगी। सहकारिताओं और साहूकारों दोनों को समान शर्तों पर ऋण निधियों की असीमित आपूर्ति प्रदान करके पारम्परिक क्षेत्र में ब्याज दर कम की जाए ताकि वे छोटे उधारकर्ताओं से कम ब्याज दरें लेने के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकें।
- 2. संगठित और गैर-संगठित मुद्रा-बाजारों का एकीकरण (Integration of organised and unorganised money markets):** वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों का एकीकरण किया जाना चाहिए। इसके लिए व्यापारिक बैंकों को प्रेरित किया जाए कि वे

अपनी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोलें। भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अग्रणी बैंकों की स्थापना द्वारा ऐसा किया गया है।

3. **सहकारिता का सुदृढ़ीकरण (Strengthening of cooperatives):** सहकारी समितियों और सहकारी बैंकों को सुदृढ़ किया जाए ताकि ये साहूकारों और देशी बैंकों से अधिक प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा कर सकें।
4. **बहु-एजेन्सी दृष्टिकोण (Multi-agency approach):** गैर-संगठित ग्रामीण क्षेत्र में बहु-एजेन्सी दृष्टिकोण अपनाया जाए और ऐसे क्षेत्रों में ऋण, बीज, खाद, उपकरण, पशु इत्यादि उपलब्ध कराये जाएं तथा विपणन और व्यापार सुविधाएं भी प्रदान की जाएं।
5. **शासकीय ब्याज-दर में वृद्धि (Raising official interest rate):** प्रो. मिंट ने सुझाव दिया है कि ऐसे राष्ट्रों द्वारा अपनी मौजूदा पूँजी निधियों के अभाव को दर्शाने के लिए अपने संगठित ऋण बाजारों की शासकीय ब्याज दरों को काफी ऊंचा बढ़ाया जाए। इससे एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा और इस प्रक्रिया से देश के भीतर और विदेश से बचतों को प्रभावपूर्ण ढंग से आकर्षित किया जा सकता है। इससे साहूकारों द्वारा गैर-संगठित ऋण बाजार को पुनः उधार देने हेतु बचतों की उपलब्ध पूर्ति को ऋणों की मांग, जिसमें निधियों की मांग भी शामिल है, के बराबर करने में सहायता मिलेगी।

### 15.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत

नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक 'Economic Theory and Under-developed Regions' में अर्द्धविकसित देशों के अल्पविकास के कारणों की व्याख्या एक नये दृष्टिकोण से की। जिसके अनुसार **चक्रीय संचयी कार्यकारण** तथा **अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect)** के कारण अर्द्धविकसित और विकसित देशों के बीच एक दुश्चक्र (Vicious Circle) पैदा हो जाता है जो अर्द्धविकसित तथा विकसित देशों के बीच आय की असमानता के अंतराल को बढ़ाता रहता है।

**प्रो. मिर्डल** ने अपने चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के आधार पर स्पष्ट किया कि असमानताओं के सम्बन्ध में प्राचीन सैद्धांतिक स्थिर संतुलन की मान्यता सर्वथा गलत है। प्रो. गुन्नार मिर्डल का यह मत है कि वास्तविक जगत में इस प्रकार की स्थिति नहीं पायी जाती। यह आवश्यक नहीं है कि अर्थव्यवस्था में सदैव संतुलन स्थापित होता रहे। वास्तविकता यह है कि अर्थव्यवस्था में जब एक बार संतुलन भंग हो जाता है तो अर्थव्यवस्था निरंतर संतुलन से दूर हटती चली जाती है, क्योंकि असंतुलन का उदय करने वाले घटकों का संचयी प्रभाव होता है। विकास को प्रभावित करने वाले आकस्मिक घटकों में परस्पर संबंध एवं परस्पर निर्भरता होती है। ये घटक चक्राकार रूप में संचयी प्रवृत्ति लिये रहते हैं जिसके फलस्वरूप जब इनमें किसी एक घटक में कोई परिवर्तन होता है तो उसके प्रभावों से अन्य घटकों में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन का कारण एवं प्रभाव बन जाता है।

**प्रो. गुन्नार मिर्डल** ने अपने चक्राकार सिद्धांत तथा संचयी कारण एवं परिणाम के सिद्धांत को अमेरिका की नीग्रो समस्या की सहायता से स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया है कि गोरे लोगों द्वारा पक्षपात के कारण नीग्रो

लोगों के साथ अनेक विभेदात्मक नीतियों को विभिन्न क्षेत्रों में अपनाया जाता है। दूसरे नीग्रों लोगों का निम्न जीवन स्तर गोरे लोगों द्वारा अपनायी गयी विभेदात्मक नीतियों का ही परिणाम है फलतः नीग्रो लोगों में पायी जाने वाली गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञानता, शिष्ट व्यवहार का अभाव इत्यादि के कारण उनके प्रति गोरे घृणा का ही दृष्टिकोण रखते हैं। दोनों बातों में परस्पर धनात्मक सह-संबंध है। इस प्रकार गोरे लोगों का पक्षपात और नीग्रो लोगों की गरीबी दोनों एक-दूसरे के कारण हैं। इस अवस्था को हम किसी प्रकार स्थिर संतुलन की अवस्था नहीं कह सकते। इन परिस्थितियों में यदि उपयुक्त दो बातों में से किसी एक में बाह्य परिवर्तनों या अन्य कारणों से परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया धीरे-धीरे संचयी रूप प्राप्त कर लेती है ऐसी स्थिति में संपूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है।

अतः मिर्डल का यह मत है कि विकास की इस प्रक्रिया में आर्थिक तथा सामाजिक सभी शक्तियां क्रियाशील होती हैं जो असंतुलन को जन्म देती तथा बढ़ाती हैं।

### 15.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत

**मिर्डल** का विचार है कि आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो धारणाओं का उपयोग किया है:

(i) अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effects)

(ii) प्रसरण प्रभाव (Spread Effects)

**मिर्डल** ने **अतिनिर्यात प्रभाव** के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया है जो श्रम के देशांतरण, पूंजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं। आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र **प्रसरण प्रभावों** को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं। मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण अर्द्धविकसित देशों में प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव तथा दुर्बल प्रसरण प्रभाव रहे हैं।

#### 15.3.2.1 प्रादेशिक असमानताएं (Regional Inequalities)

**मिर्डल** के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार गैर- आर्थिक होता है। यह पूंजीवादी व्यवस्था से संबंध रखता है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित होती है। लाभ के उद्देश्य के कारण उन क्षेत्रों का विकास होता है जहां लाभों की प्रत्याशाएं अधिक होती हैं, जबकि अन्य क्षेत्र अर्द्धविकसित रह जाते हैं। बाजार शक्तियां प्रादेशिक असमानताओं को घटाने के बजाय बढ़ाती है। **मिर्डल** के शब्दों में, **“यदि बात बाजार शक्तियों पर ही छोड़ दी जाये और उन्हें किन्हीं नीति हस्तक्षेपों से न रोका जाय तो औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, बैंकिंग, बीमा, नौवहन और वास्तव में वे सभी आर्थिक क्रियाएं जो विकासशील अर्थव्यवस्था**

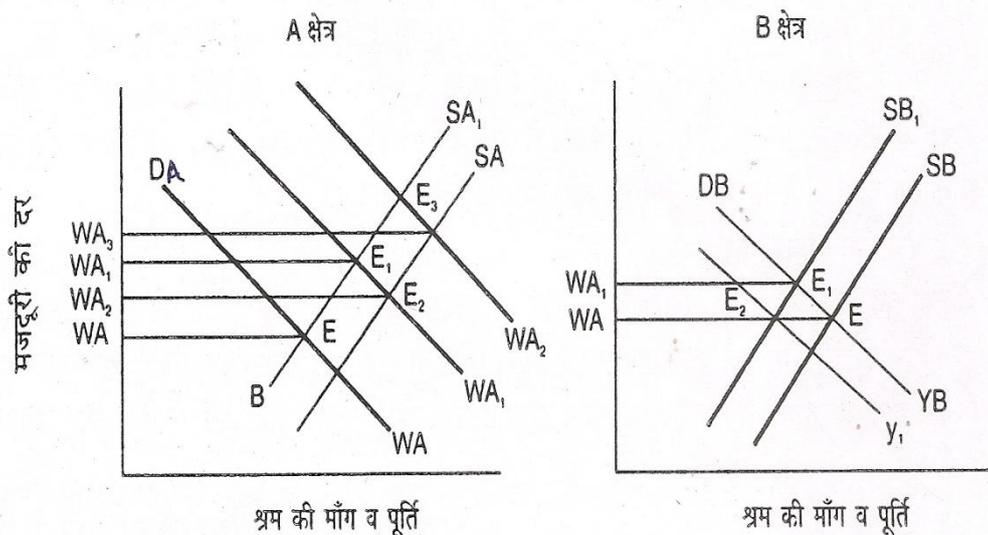
को औसत से अधिक प्रतिफल प्रदान करती हैं कुछ स्थानों तथा प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं और देश के शेष भागों को अनदेखा छोड़ देती हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक विषमता घटने के स्थान पर बढ़ती है।”

### 15.3.2.2 देशांतर, पूँजीगतियों तथा व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव (The Backwash Effects of Migration, Capital Movements and Trade)

मिर्डल के अनुसार श्रम देशांतर, पूँजी प्रभाव एवं अंतर्खेत्रीय व्यापार विकसित तथा अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानताओं को कम नहीं करते बल्कि बढ़ाते हैं। उन्होंने अपनी थीसिस में यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार श्रम का देशांतर, पूँजी प्रभाव व व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास में बाधा डालते हैं और साथ ही संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास को धीमा करते हैं।

मिर्डल के चक्रीय तथा संचयी प्रक्रिया के अतिनिर्यात तथा प्रसरण प्रभाव एवं विषमताओं में वृद्धि को एक सरल उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना A और B दो क्षेत्र हैं जो विकास की दृष्टि से बराबर हैं अर्थात् दोनों में प्रति व्यक्ति आय, श्रम की उत्पादकता और मजदूरी बराबर है। श्रम तथा पूँजी व उत्पादन के अन्य साधनों का आवागमन A और B क्षेत्र के बीच स्वतंत्र रूप से होता है। दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापार पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है और एक ही मुद्रा प्रचलित है।

माना A क्षेत्र में लोहा व कोयला मिल जाने के कारण B क्षेत्र की अपेक्षा विकास तीव्र गति से होता है। फलतः असंतुलन का जन्म होता है। मिर्डल के अनुसार जब एक बार इस तरह की असंतुलन की प्रक्रिया जन्म ले लेगी तो कुछ ऐसी आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियाँ क्रियाशील हो जायेंगी जो इस असंतुलन को और बल देंगी। फलतः लाभ प्राप्तकर्ता A क्षेत्र में संचयी विस्तार की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी जबकि B क्षेत्र जो अलाभकारी स्थिति में है निरंतर संचयी रूप से पिछड़ता जायेगा। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया दूसरे देश अर्थात् B क्षेत्र को क्षति पहुंचा कर ही होगी।



चित्र 15.1

मिर्डल के मतानुसार यह मानना सर्वथा गलत होगा जैसा कि स्थैतिक विश्लेषण में हम मानते हैं कि असंतुलन अस्थायी होता है और कालांतर में संतुलन स्थापित हो जाता है। मांग एवं पूर्ति की शक्तियां परस्पर इस प्रकार से क्रियाशील होंगी कि संतुलन पुनः स्थापित नहीं होगा बल्कि संचयी रूप से संतुलन दूर हटता जायेगा। मिर्डल के सिद्धान्त को रेखाचित्र 15.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में A क्षेत्र विकसित और B क्षेत्र पिछड़ा हुआ है।

प्रारंभ में A क्षेत्र में मजदूरों का मांग वक्र DA और पूर्ति वक्र SA है। दोनों वक्र एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं। अतः WA मजदूरी की दर है। B क्षेत्र में मजदूरों की मांग वक्र DB व पूर्ति वक्र SB है जो चित्र-15.1 एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं, अतः B क्षेत्र में मजदूरी WB है। शुरू में दोनों क्षेत्रों में मजदूरी की दर बराबर है। अर्थव्यवस्था में विनियोग बढ़ने के कारण A क्षेत्र में मजदूरों की मांग बढ़ जाती है। फलतः मांग वक्र विवर्तित होकर DA हो जाता है और वह पूर्ति वक्र SA को बिंदु E<sub>1</sub> पर काटता है जिससे A क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर WA<sub>1</sub> हो जाती है। A क्षेत्र में बढ़ी हुई मजदूरी WA<sub>1</sub> की लालच में B क्षेत्र से मजदूरों का देशांतर A क्षेत्र की ओर होने लगेगा और B क्षेत्र में मजदूरों की पूर्ति कम हो जाने के कारण पूर्ति वक्र SB<sub>1</sub> हो जायेगा। यह पूर्ति वक्र (SA<sub>1</sub>) मांग वक्र (DB) को E<sub>1</sub> बिंदु पर काटता है फलतः B क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर WB<sub>1</sub> हो जायेगी। दूसरी ओर A क्षेत्र में श्रम की पूर्ति बढ़ने से पूर्ति वक्र SA<sub>1</sub> हो जाता है जो मांग वक्र DA<sub>1</sub> को E<sub>2</sub> बिंदु पर काटता है। परिणामस्वरूप मजदूरी दर WA से कम होकर WB हो जायेगी।

स्थैतिक विश्लेषण की स्थिति में दोनों देशों में मांग व पूर्ति की शक्तियां परस्पर समायोजित हो जायेंगी और संतुलन की स्थिति पुनः WA = WB पर कायम हो जायेगी। परंतु मिर्डल की संचयी प्रक्रिया की धारणा के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन मांग को इस प्रकार तथा इस सीमा तक प्रभावित करेगी कि पुनः संतुलन की संभावना समाप्त हो जायेगी।

B क्षेत्र से श्रमिकों का A क्षेत्र में स्थानांतरण हो जाने से B क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की मांग कम होने लगती है जिससे मांग वक्र नीचे को सरक कर D हो जाता है जो पूर्ति वक्र SB<sub>1</sub> को E<sub>1</sub> बिंदु पर काटता है और श्रमिकों को सिर्फ न्यूनतम मजदूरी WA मिलने लगती है। अब A क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की मांग पहले से अधिक हो जाती है। फलतः इस क्षेत्र में कार्यरत उद्यमियों को नया उत्साह मिलता है। वस्तुओं की मांग बढ़ने से मांग वक्र DA से ऊपर सरक कर DA<sub>1</sub> हो जाता है। जो पूर्ति वक्र SB<sub>1</sub> को बिन्दु E<sub>2</sub> पर काटने से इस क्षेत्र में WA<sub>3</sub> के बराबर मजदूरी का निर्धारण होता है। उपर्युक्त पूरी प्रक्रिया A व B क्षेत्रों में संचयी रूप से चलती रहेगी और A क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी तथा B क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती जायेगी। इस प्रकार A क्षेत्र का आर्थिक विकास B क्षेत्र को हानि पहुंचाकर होगा और दोनों के बीच अंतराल बढ़ता जायेगा। अतः एक बार जब दोनों क्षेत्रों के बीच विकास संबंधी अंतर शुरू होगा तो विस्तार की संचयी प्रक्रिया लाभप्रद स्थिति वाले क्षेत्र (अर्थात् A क्षेत्र) के पक्ष में होती चली जायेगी और उसका दूसरे क्षेत्र के ऊपर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा उसे मिर्डल ने अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) कहा है और इसके कारण दोनों क्षेत्रों के बीच विषमता का अंतराल बढ़ता जायेगा।

इसी प्रकार पूँजी का प्रवाह भी संचयी प्रक्रिया को और बल देकर प्रादेशिक विषमता को बढ़ाता है क्योंकि

जो प्रदेश विकसित हो जाते हैं उनमें बढ़ी हुई मांग, विनियोग एवं पुनर्वियोग को प्रेरणा प्राप्त होती है तथा पूँजी की मांग भी बढ़ती है। ऐसी स्थिति में मांग एवं आय दोनों ही बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है तथा दूसरी ओर पिछड़े क्षेत्रों में पूँजी विनियोग की और कमी आ जाती है। फलतः पिछड़े क्षेत्र और पिछड़ जाते हैं।

इसी प्रकार व्यापार भी पिछड़े क्षेत्रों की तुलना में विकसित क्षेत्रों को अधिक लाभ पहुंचाता है तथा पिछड़े क्षेत्रों में केवल पिछड़ा कृषि क्षेत्र रह जाता है जबकि विकसित क्षेत्र में पूँजी, उद्योग, सेवा तीनों क्षेत्रों का तेजी से विकास होता है। मिर्डल के अनुसार, **“व्यापार निर्धन देशों के सामने स्फीतिकारी अंतराल एवं दबाव, गरीबी में वृद्धि, भुगतान संतुलन की कठिनाई, उपभोक्ता वस्तुओं की कमी तथा गुणक प्रभाव के अभाव जैसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं तथा पहले से विद्यमान छोटे-मोटे उद्योगों का गला छोटे देते हैं।”**

मिर्डल के अनुसार प्रसरण प्रभाव आर्थिक विस्तार के केन्द्रों के निकट के क्षेत्रों में फैल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। जिसके निम्नलिखित अनुकूल प्रभाव पड़ते हैं:

- (i) उस क्षेत्र के औद्योगिक विस्तार से कच्चे मालों व कृषि उपजों की मांग में वृद्धि होती है।
- (ii) पिछड़े क्षेत्रों से प्रवाहित श्रम शक्ति को विकसित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त होती है जिसका कुछ भाग पिछड़े क्षेत्रों को भेज दिया जाता है।
- (iii) तकनीकी ज्ञान का विस्तार भी पिछड़े क्षेत्रों की ओर होने लगता है। मिर्डल का मानना है कि उपर्युक्त प्रसरण प्रभाव अर्द्धविकसित देशों में कमजोर होते हैं और उनमें अतिनिर्यात प्रभावों का प्रतिरोध करने की क्षमता कम रहती है।

अतः अर्द्धविकसित देशों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण दुर्बल व कमजोर प्रसरण प्रभाव तथा प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव रहे हैं जिससे संचयी प्रक्रिया में **“निर्धनता स्वयं अपना कारण बन जाती है।”**

**राज्य की भूमिका :** मिर्डल ने निर्धनता के इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए राज्य की भूमिका को महत्व दिया है। उनके अनुसार अर्द्धविकसित देशों की सरकारों को चाहिए कि वे ऐसी समतावादी नीतियां अपनाएं जो अतिनिर्यात प्रभावों को दुर्बल बनाये और प्रसरण प्रभावों को शक्ति दे ताकि प्रादेशिक असमानताएं दूर हों और सतत् आर्थिक प्रगति की आधारशिलाएं मजबूत हों।

### 15.3.2.3 अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं (International Inequalities)

मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के भी अतिनिर्यात प्रभाव होते हैं। मिर्डल ने कहा है कि **“व्यापार धनवान एवं प्रगतिशील क्षेत्रों के पक्ष में तथा कम विकसित देशों के विपक्ष में कार्य करता है।”** विकसित तथा अर्द्धविकसित देशों के बीच स्वतंत्र व्यापार पहले प्रकार के देशों को मजबूत बनायेगा तथा दूसरे प्रकार के देशों को गरीब बनायेगा। क्योंकि धनी देशों में प्रबल प्रसरण प्रभावों वाले निर्माणी उद्योगों का विस्तृत आधार होता है। औद्योगिक देशों का निर्यात माल सस्ता होने के कारण दस्तकारी देशों के निर्यातों को प्रतियोगिता में पीछे धकेल देंगे। ऐसी स्थिति में अर्द्धविकसित देश केवल प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक बन कर रह जाते हैं क्योंकि निर्यात बाजार में प्राथमिक वस्तुओं की मांगें लोचरहित होती हैं। अर्द्धविकसित देश विश्व बाजार

कीमतों के उतार-चढ़ावों का लाभ भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

अर्द्धविकसित देशों में पूँजी प्रवाह भी अंतर्राष्ट्रीय असमानताओं को रोकने में असफल रहता है। अर्द्धविकसित देशों में संरचनात्मक ढांचे की कमी, असुरक्षा एवं लाभ की अनिश्चितता के कारण निवेशकर्ताओं में भी प्रेरणा की कमी रहती है जबकि पूँजीवादी एवं विकसित देशों में लाभ एवं सुरक्षा के कारण निवेशकर्ता प्रोत्साहित होते हैं राष्ट्रवाद के बढ़ते हुए वर्तमान युग में पूँजी का अंतरण भी कठिन सा होता जा रहा है।

**श्रम देशांतर (Labour migration) :** अर्द्धविकसित देशों में श्रम का देशांतर भी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सामंजस्यों की प्राप्ति के क्षेत्र में कोई सफलतम उपाय नहीं रहा है क्योंकि श्रम का देशांतर राष्ट्रवाद एवं राजनैतिक कारणों से दिनोदिन कठिन होता जा रहा है। वस्तुतः जिन घटकों ने विकसित देशों को उन्नत बनाया था वे ही घटक आज अर्द्धविकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभावों का सृजन कर रहे हैं।

वर्तमान में प्रत्येक देश में आंतरिक दुर्बलताएं भी प्रसरण प्रभावों को प्रबल नहीं होने दे रही हैं। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां, बड़े घराने, आयात अनिवार्यता तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार प्रसरण प्रभावों के मार्ग में बहुत बड़े गतिरोधक हैं।

**प्रो. मिर्डल** ने अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त मजबूत अतिनिर्यात प्रभावों का कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को माना है ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धांत की अवधारणा पर भी पुनः विचार की आवश्यकता है। मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में व्यापारिक नीति विकसित देशों की व्यापारिक नीतियों से भिन्न होनी चाहिए। अर्द्धविकसित देशों को निर्यात में सहायतायुक्त स्वतंत्र व्यापारी एवं आयातों में प्रतिबंधवादी बनना चाहिए।

#### 15.3.2.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत अल्प-विकास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रथम, आर्थिक विकास संबंधी विस्तृत, क्रमबद्ध और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के गहन अध्ययन तथा विश्लेषण पर आधारित है। दूसरे, यह स्पष्ट करता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से किस प्रकार विकसित देश विकासशील देशों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। तीसरे, इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि अर्द्धविकसित देशों में प्रसरण प्रभाव किस प्रकार अतिनिर्यात प्रभावों के दुष्प्रभावों से मंद हो जाते हैं। चौथे, इससे इस तथ्य का भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि किस प्रकार एक देश की असमानता दूसरे देश को प्रभावित कर रही है।

#### 15.3.2.5 सिद्धांत के दोष

उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएं की जाती हैं :

- (i) इस सिद्धांत में केवल पूँजी प्रवास एवं व्यापार को ही असमानता का आधार बनाया है जबकि असमानता के लिए अन्य तत्व भी उत्तरदायी हैं।
- (ii) मिर्डल ने आंतरिक एवं बाह्य असमानताओं के अनुपात का समावेश नहीं किया कि कितनी मात्रा में इनका प्रभाव पड़ता है।

(iii) यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था में हासमान प्रतिफल नियम की उपस्थिति को ध्यान में नहीं रखता है।

## 15.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'वित्तीय द्वैतवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?
2. केन्द्रीय बैंक किस मुद्रा बाजार का अंग है?
3. मिर्डल के अनुसार अल्प विकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभाव ..... होता है।
4. मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार ..... होता है।
5. 'एशियन ड्रामा' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं।
6. प्रसरण प्रभाव से क्या अभिप्राय है?
7. अतिनिर्यात प्रभाव से क्या आशय है?
8. संगठित मुद्रा बाजार से आप क्या समझते हैं?
9. गैर-संगठित मुद्रा बाजार से क्या आशय है?

### बहुविकल्पीय प्रश्न:

10. "Economic Theory and the Underdeveloped Countries" नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं :  
 अ) गुन्नार मिर्डल  
 ब) एच. मिन्ट  
 स) जे. एच. बूके  
 द) इनमें से कोई नहीं
11. 'Economic Theory and Under-developed Regions' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं  
 अ) गुन्नार मिर्डल  
 ब) एच. मिन्ट  
 स) जे. एच. बूके  
 द) इनमें से कोई नहीं

### सत्य / असत्य लिखिए:

12. 'वित्तीय द्वैतवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल द्वारा किया गया था?
13. वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व।
14. चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल ने किया था?

## 15.5 सारांश

प्रो. मिंट तथा गुन्नार मिर्डल के अल्पविकास के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है अल्प-विकास के सिद्धांतों में वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत तथा गुन्नार मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रो. मिंट ने वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत में एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की तथा इन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये। मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है। अनेक गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की आलोचनाएं भी की जाती है।

## 15.6 शब्दावली

- **वित्तीय द्वैतवाद** : वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सह-अस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।
- **मुद्रा बाजार** : मुद्रा बाजार वह बाजार अथवा क्षेत्र है जहाँ अल्पकालीन ऋणों का लेनदेन होता है। मुद्रा बाजार संगठित या असंगठित हो सकता है।
- **संगठित मुद्रा बाजार** : संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम, औद्योगिक वित्त निगम, बीमा कम्पनियां और विकास बैंक शामिल होते हैं।
- **गैर-संगठित मुद्रा बाजार** : गैर-संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पैशेवर और गैर-पेशेवर व्यापारी, सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे-सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।
- **काला बाजार (Black Market)** : जब सरकारी हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप किसी वस्तु की कीमत उसके साम्य स्तर से काफी नीचे तय की जाती है तथा विक्रेताओं को निर्धारित कीमत पर ही बेचने के लिये विवश किया जाता है तो पूर्ति की अपेक्षा मांग के आधिक्य के कारण अनधिकृत रूप से वह वस्तु काले बाजार में काफी ऊँची कीमत पर बिकनी प्रारंभ हो जाती है। ऐसी दशा में विक्रेता वस्तु को निर्धारित कीमत पर न बेचकर काले बाजार में बेचकर भारी लाभ कमाते हैं।
- **काली मुद्रा (Black Money)** : ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण (Capital Formation)** : कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने हेतु लगाया जाता है।
- **पूँजी बाजार (Capital Market)** : पूँजी बाजार में शेयरों, ऋण-पत्रों तथा अन्य प्रकार की वित्तीय प्रतिभूतियों का कय-विक्रय किया जाता है। इसमें व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के

अतिरिक्त विदेशी निवेशकों तथा बैंकों की सहभागिता होती है। नये शेयरों का निर्गम भी प्रायः मर्चेट बैंकों द्वारा पूँजी बाजार के माध्यम से ही किया जाता है।

- **अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) :** अतिनिर्यात प्रभाव के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो श्रम के देशांतरण, पूँजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं।
- **प्रसरण प्रभाव (Spread Effects) :** आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र प्रसरण प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं।

### 15.7 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

उत्तर 1. एच. मिन्ट 2. संगठित मुद्रा बाजार 3. प्रबल 4. गैर आर्थिक 5. गुन्नार मिर्डल 10. ब) एच.मिन्ट 11. अ) गुन्नार मिर्डल 12. असत्य 13. सत्य 14. सत्य

### 15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम. एल. : *“विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”*, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 1903
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार: *“विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन”* राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1908
- सिन्हा, वी. सी. : *“आर्थिक संवृद्धि और विकास”*, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907
- Agarwal, R. C. : *“Economics of Development and Planning”* Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 1907
- Taneja, M. L. & Myer R. M. : *“Economics of Development and Planning”* Vishal Publishing Co., Delhi, 1910

### 15.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Myrdal, G. : *“Economic Theory and Under-developed Regions”* 1957
- Myint, H. M. : *“Economic Theory and the Underdeveloped Countries”*
- Meier, G.M.: *“Leading Issues in Economic Development”*, Oxford University Press, Delhi, 1989
- Lewis, W. Arthur : *“Economic Development with Unlimited Supplies of Labour”*

(1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) -“The Economics of Underdevelopment” (1969)

- Meier and Baldwin : “*Economic Development*”
- Kindleberger C. P. : “*Economic Development*”
- Misra, S. K. & Puri, V. K. : “*Economic Development and Planning*”

---

### 15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. वित्तीय द्वैतवाद से आप क्या समझते हैं? वित्तीय द्वैतवाद के एक विकासशील अर्थव्यवस्था पर कौन-से कुप्रभाव पड़ते हैं? उनकी व्याख्या कीजिए और दूर करने के उपाय सुझाए।
2. मिंग के वित्तीय द्वैतवाद सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. मिर्डल द्वारा प्रतिपादित अतिनिर्यात एवं प्रसरण प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
5. चक्रीय कार्यकारण के सम्बन्ध में मिर्डल के विचारों की व्याख्या कीजिए।
6. मिर्डल के मॉडल का सविस्तार वर्णन कीजिए।